भगवान श्री रजनीश
अस्वीकृति में उठा हाथ

अस्वीकृति में उठा हाथ

भारत, गांधी और मेरी चिन्ता
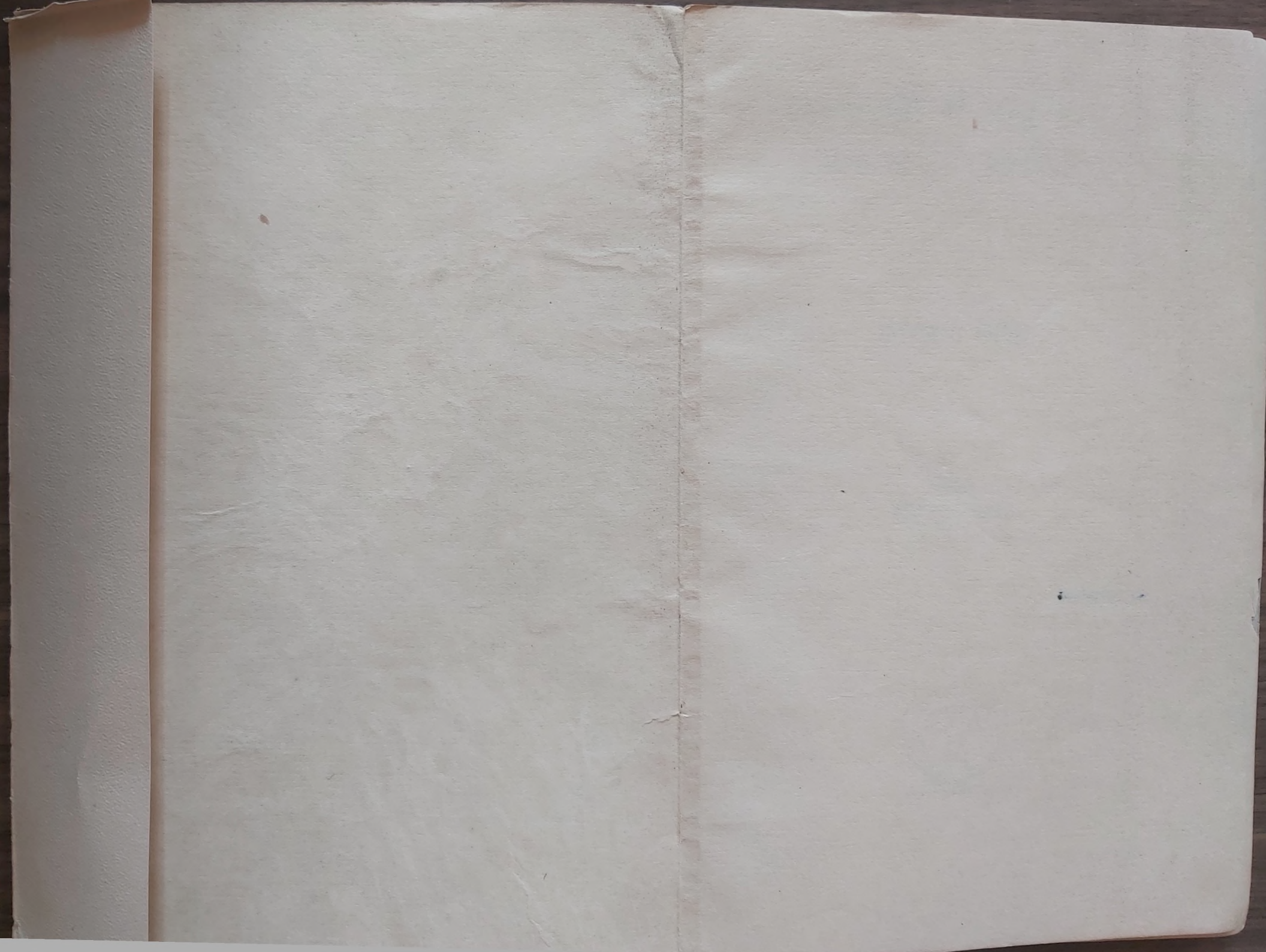
भगवान्श्री रजनीश

अस्वीकृति में उठा हाथ

भारत, गांधी और मेरी चिन्ता

भगवान्‌श्री रजनीश

संकलन
डॉ० रतन प्रकाश
एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रकाशक :

ईश्वरलाल नाराणजी शाह
मंत्री, जीवन-जागृति-केन्द्र,
३१, इज़रायल, मोहल्ला,
भगवान भवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बम्बई—९

संस्करण : पहला
प्रतियाँ : ५०००, नवम्बर १९६९
प्रतियाँ : ३०००, अक्टूबर, १९७२
द्वितीय आवृत्ति:

मुद्रक :
अमरनाथ मल्लिक,
इंडिया पब्लिशिंग हाऊस,
२५१, कामदार चेंबर्स,
सायन (पूर्व), बम्बई-२२.

अस्वीकृति में उठा हाथ

भारत, गांधी और मेरी चिन्ता

क्रास मैदान, बंबई में दिये गये प्रवचन

अन्तर्वस्तु
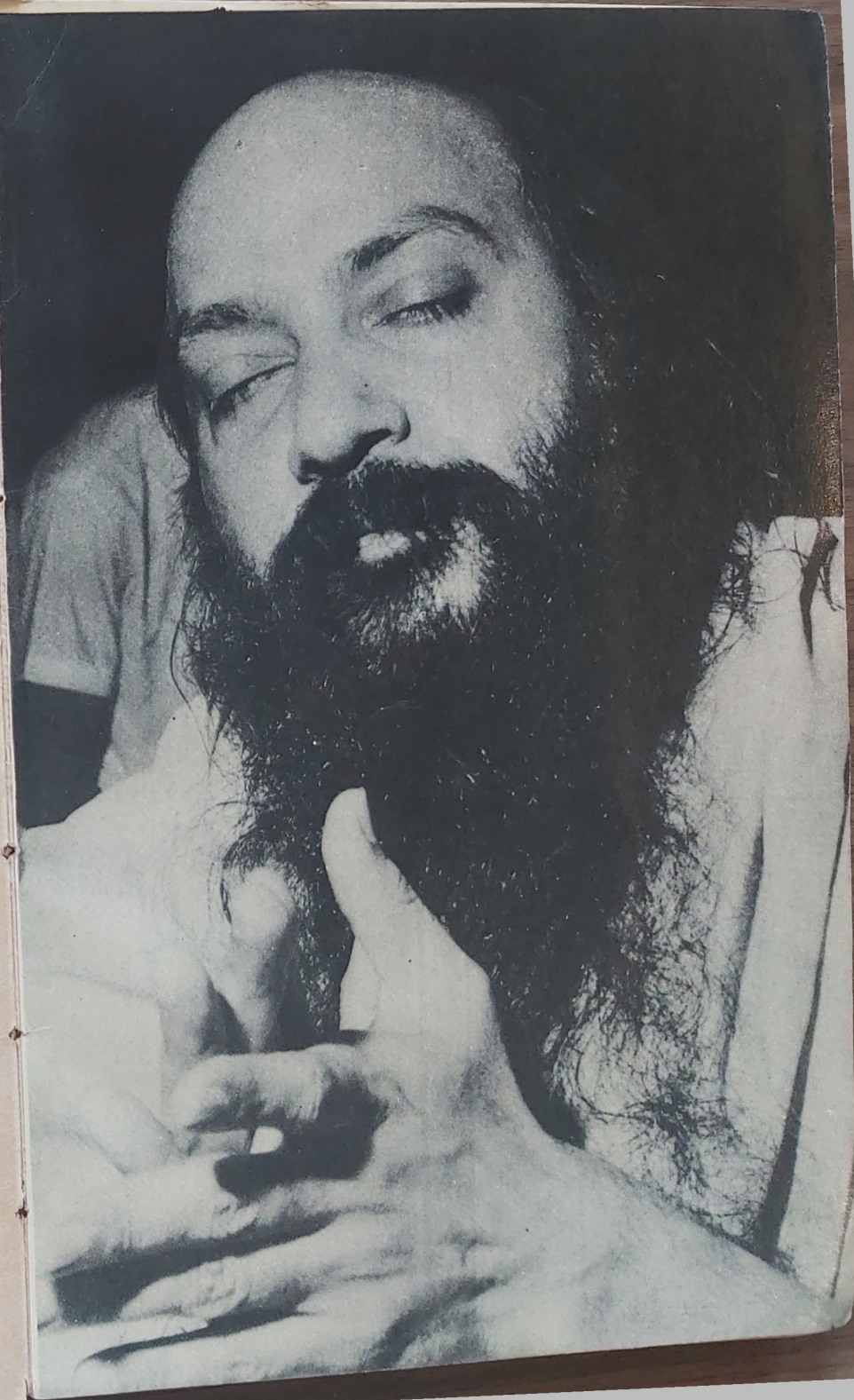
प्रकाशकीय

भगवान श्री रजनीश की यह कृति गांधी-शताब्दी-वर्ष में प्रकाशित हो रही है। इस समय सारे विश्व में गांधीजी की जन्म शताब्दी मनायी जा रही है। वे भारत के 'राष्ट्रपिता' माने जाते हैं और उन्होंने भारत को जो गति और चेतना दी, उससे सब परि-चित हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि गांधीजी अद्‌भुत पुरुष थे और पिछले हजारों वर्षों में ऐसे दो-चार नर-पुंगवों में उनकी गणना होती है। भगवान श्री भी इसे स्वीकार करते हैं, किंतु उनका कहना है कि जब हम किसी पुरुष को आराध्य मानकर उसकी केवल पूजा करने लगते हैं तो यह हमारे विकास के लिए बाधक परिस्थिति बन जाती है। भगवानश्री ने गांधीजी की नहीं, बल्कि उनके विचारों के नाम पर पोषित गांधीवाद की छानबीन की है, आलोचना की है और भारतीय जन-मानस को एक नया दृष्टिकोण गांधीजी के वैचारिक व्यक्तित्व को समझने का प्रस्तुत किया है।

भगवानश्री के ये साहसपूर्ण, निर्भीक विचार अवश्य ही हमें सोचने का नया क्षितिज देते हैं।

आशा है, भगवान श्री के विचारों का एक नया क्षितिज, जैसा कि इस कृति में व्यक्त हुआ है, पाठकों को प्रेरक प्रतीत होगा।

●

पहला प्रवचन

एक मृत महापुरुष का जन्म

पोप अमरीका गया हुआ था। हवाई जहाज से उतरने के पहले उसके मित्रों ने उससे कहा, "एक बात ध्यान रखना, उतरते ही हवाई अड्डे पर पत्रकार कुछ पूछें तो थोड़ा सोच-समझकर उत्तर देना। 'हाँ' और 'ना' में तो उत्तर देना ही नहीं। जहाँ तक बन सके, उत्तर देने से बचने का प्रयत्न करना; अन्यथा अमरीका में आते ही परेशानी शुरू हो जायेगी।" पोप जैसे ही हवाई अड्डे पर उतरा, वैसे ही पत्रकारों ने उसे घेर लिया और एक पत्रकार ने उससे पूछा—"वुड यू लाइक टु विजिट एनी न्युडिस्ट कैम्प, व्हाइल इन न्यूयार्क ?" (—क्या तुम कोई दिगम्बर क्लब, कोई नग्न रहनेवाले लोगों के क्लब में न्यूयार्क में रहते समय जाना पसन्द करोगे ?) पोप ने सोचा, हाँ और ना में उत्तर देना खतरनाक हो सकता है। 'हाँ' कहने का मतलब होगा कि मैं जाना चाहता हूँ देखने। 'ना' कहने का मतलब होगा जाने से डरता हूँ। उत्तर देने से बचने के लिए उसने उल्टा प्रश्न पूछा। उसने पूछा, "इज देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क ?" (— न्यूयार्क में नंगे लोगों का कोई क्लब है ?) फिर बात दूसरी चल पड़ी। उसने सोचा कि छुटकारा हुआ। लेकिन दूसरे दिन सुबह अखबारों में पहले ही पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में खबर छपी थी। खबर थी कि महामहिम परमपूज्य पोप ने हवाई अड्डे पर उतरते ही पत्रकारों से पहली बात यह पूछी, "इज देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क ?" (—नंगे लोगों का कोई क्लब है न्यूयार्क में ?)। उतरते ही यह पहली बात पत्रकारों से महामहिम पोप ने पूछी।

कुछ ऐसा ही मामला मेरे और पत्रकारों के बीच भी हो गया। लेकिन मेरे संबंध में और पत्रकारों के बीच में और पोप और पत्रकारों के बीच हुई बात में थोड़ा फर्क है। एक तो फर्क यह है कि मैंने 'हाँ' और 'ना' में उत्तर दिये। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूँ कि उत्तर देने से बचने की कोशिश करूँ। घुमाव-फिराव से मुझे कोई नाता और सम्बन्ध नहीं है। जो बात मुझे ठीक लगे और जैसी लगे वैसी ही कह देने को मैं कर्तव्य समझता हूँ। मेरे उत्तर तक तो ठीक था, लेकिन उन उत्तरों को इस तरह बिगाड़ करके, विकृत करके अधूरे प्रसंग के बाहर उपस्थित किया गया। मैं तो यहाँ नहीं था, पंजाब में था। लौटा तो यहाँ देखकर बहुत हैरानी

मालूम पड़ी और आश्चर्य मालूम पड़ा कि चीजें इस रंग में भी पेश की जा सकती हैं। लेकिन मित्र तो घबराये हुए थे। मैं प्रसन्न हुआ। मैंने कहा, इसमें घबराने की बात नहीं। एक लिहाज से पत्रकारों ने बड़ी कृपा की है और भविष्य में भी ऐसी ही कृपा करते रहेंगे तो अच्छा होगा। बहुत लोगों तक खबर पहुँच गयी, बात पहुँच गयी। कोई फिक्र नहीं कि गलत ढंग से पहुँची। लेकिन वह मुझे सुनने आ सकेंगे तो उन्हें ठीक बात का बोध हो सकेगा। कई बार कुछ लोग जिन बातों को सोचते हैं कि अभिशाप बन जायेंगी, वे ही बातें वरदान भी बन सकती हैं। मैं राजकोट गया, वहीं से लौटा आज। वहाँ मित्र बहुत घबराये हुए थे। लेकिन परिणाम यह हुआ कि जहाँ दस हजार लोग मुझे सुनते थे, वहाँ बीस हजार लोगों ने मुझे सुना। वह समझते गये और आश्चर्य करते गये कि चीजों को यह रंग और यह रूप भी दिया जा सकता है।

मेरी दृष्टि में भारत के दुर्भाग्यों में से एक दुर्भाग्य यह रहा है कि हम अपने महापुरुषों की आलोचना करने में आज तक भी समर्थ नहीं हो पाये और जो जाति अपने महापुरुषों की आलोचना करने में समर्थ नहीं हो पाती, उसके सम्बन्ध में दो ही बातें कही जा सकती हैं। एक तो यह कि वह अपने महापुरुषों को इस योग्य नहीं समझती कि उनकी आलोचना की जा सके या अपने महापुरुषों को इतना कमजोर और साधारण समझती है कि आलोचना में वे टिक नहीं सकेंगे। मैं गांधी के सम्बन्ध में ये दोनों ही बातें मानने को तैयार नहीं हूँ। मेरी समझ में गांधी कोई कागजी महापुरुष नहीं हैं कि आलोचना की वर्षा आयेगी और उनका रंग-रोगन बह जायेगा। कुछ कागजी महापुरुष होते हैं, उन्हें आलोचना से बचाया जाना चाहिए, क्योंकि वे आलोचना में खड़े नहीं रह सकते। लेकिन गांधी को मैं कागजी महापुरुष नहीं मानता। वह कोई कागज की, कच्चे रंग में रँगी हुई प्रतिमा नहीं हैं कि वर्षा आयेगी आलोचना की और सब नष्ट हो जायेगा। गांधी को मैं दुनिया के उन थोड़े-से महापुरुषों में से एक मानता हूँ, जो पत्थर की प्रतिमाओं की तरह हैं जिन पर वर्षा होती है और धूल बह जाती है, प्रतिमा और निखर कर प्रकट होती है।

गांधी कोई कच्चे महापुरुष नहीं हैं। लेकिन गांधी के पीछे अनुयायियों का जो वर्ग है, वह शायद स्वयं कच्चा है। इसलिए गांधी को भी कच्चा मान लेता है। खुद के भय ही हम अपने महापुरुषों पर आरोपित कर देते हैं। हमारी अपनी ही कमजोरियाँ हम अपने महापुरुषों पर भी थोप देते हैं। गांधी की आलोचना निश्चित ही की जानी चाहिए। क्योंकि गांधी की आलोचना से गांधी का तो कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है, हमारा जरूर कुछ हित हो सकता है। यह बात अत्यंत अप्रौढ़ और

तर्कशून्य प्रतीत होती है कि हम अपने महापुरुषों की सिर्फ पूजा करें और कभी कोई सृजनात्मक आलोचना न करें। यह भी कुछ भय मालूम होता है पीछे कि कहीं हमारे महापुरुष की किसी त्रुटि का स्मरण न आ जाय। स्मरण रखना चाहिए कि पृथ्वी पर ऐसा कोई मनुष्य कभी नहीं हुआ है जिससे भूलें न होती हों। एक बात का अंतर होता है—छोटे लोग छोटी भूलें करते हैं, महापुरुष बड़ी भूलें करते हैं। महापुरुष छोटी भूलें नहीं करते। लेकिन पृथ्वी पर कोई मनुष्य कभी नहीं होता जिससे भूल न होती हो। जिससे भूल नहीं होती है उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। उसे पृथ्वी पर आने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती है। लेकिन हमारे मन में यह घबराहट रहती है कि हमारे महापुरुष की कोई भूल, कोई त्रुटि ध्यान में न आ जाय। इसलिए पूजा करो, प्रार्थना करो, उपासना करो, लेकिन विचार कभी मत करना। क्योंकि ध्यान रहे, जैसे ही विचार शुरू होगा, आलोचना प्रारम्भ होती है। बिना आलोचना के विचार कभी होता ही नही है। पूजा हो सकती है, स्तुति हो सकती है, प्रशंसा हो सकती है। लेकिन वह विचार नहीं है। और जो कौम अपने महापुरुषों पर विचार नहीं करती, उसके महापुरुषों का जीवन व्यर्थ हो जाता है, उसके काम में ही नहीं आ पाता है।

हम तीन-चार हजार वर्षों से यही कर रहे हैं। महावीर हैं, बुद्ध हैं, कृष्ण हैं, राम हैं। हमें उनकी पूजा करनी है, विचार उन पर कभी नहीं करना है। ध्यान रहे, जिन पर हम विचार नहीं करते हैं उनका हमारे जीवन पर कोई संस्पर्श, हमारे जीवन का परिवर्तन करने वाला कोई भी प्रभाव कभी नहीं पड़ता है। पूजा से हम रूपांतरित नहीं होते हैं, विचार से हम रूपांतरित होते हैं। और पूजा, हो सकता है सिर्फ हमारी तरकीब हो महापुरुष से बच जाने की। और मुझे तो ऐसा ही लगता है कि जिससे हम बचना चाहते हैं, उसीको भगवान् बनाकर मंदिर में बिठा देते हैं। फिर हमारी झंझट समाप्त हो जाती है। कभी दो फूल चढ़ा आते हैं, कभी माला पहना आते हैं, कभी स्तुति कर लेते हैं, कभी जन्म-दिन मना लेते हैं और हमसे उसका फिर कोई संबंध नहीं रह जाता। जिस महापुरुष को हमें व्यर्थ करना हो, उसकी हमने तरकीब निकाल ली है कि हम उसकी पूजा करेंगे, स्तुति करेंगे, लेकिन उस पर विचार नहीं करेंगे। क्योंकि विचार करने का परिणाम एक ही हो सकता है कि विचार करने से वह हमें इस योग्य मालूम पड़ें कि हम अपने जीवन को बदलें। लेकिन हम बहुत होशियार हैं, यह देश बहुत होशियार है, अपने-आपको धोखा देने में। यह देश सोचता है कि हम महावीर की पूजा करते हैं तो हम बड़ा भारी काम कर रहे हैं, कि हम बुद्ध की पूजा करते हैं तो शायद बुद्ध पर कोई उपकार कर रहे हैं या गांधी की

पूजा शुरू की है तो गांधी पर हमारा कोई अनुग्रह हो रहा है। इस भ्रांति में रहने की जरूरत नहीं है।

महापुरुष पूजा के लिए नहीं पैदा होते हैं, न उनकी पूजा की कोई लालसा है और जिसके मन में पूजा की लालसा हो, वह और कुछ भी हो, महापुरुष नहीं हो सकता है। महापुरुष का उपयोग यह है कि वह हमारे जीवन में, हमारे खून में, हमारे विचार में, हमारी प्रतिभा में प्रविष्ट हो सके और हमारी प्रतिभा में किसीको द्वार तभी मिलता है जब हम विचार करते हैं, आलोचना करते हैं, खोजबीन करते हैं, अन्वेषण करते हैं--तब प्रवेश मिलता है हमारी प्रतिभा के भीतर। हमारे सारे महापुरुष भारत की प्रतिभा के बाहर खड़े हुए हैं, मंदिरों में बन्द। भारत के प्राणों में उनका कोई प्रवेश नहीं हो सका है। मैं नहीं चाहता हूँ कि पुराने महापुरुषों की तरह गांधी-जैसा अद्‌भुत व्यक्ति भी व्यर्थ हो जाय। इसलिए मैं चाहता हूँ कि गांधी पर जितनी सतेज आलोचना और विचार हो सके उतना ही सौभाग्य मानना चाहिए। लेकिन वह जो गांधी के पीछे चलनेवाले गांधीवादियों का तबका है, वह इस बात से बहुत घबराता है। वह क्यों घबराता है? वह इसलिए घबराता है कि उसे डर है कि गांधी की आलोचना अंततः गांधीवाद की आलोचना बन सकती है। उसका भय यह नहीं है कि गांधी की आलोचना से उसको कोई परेशानी होने वाली है। उसका भय यह है कि गांधी की आड़ में वह खुद छिपा हुआ है और गांधी की आलोचना कहीं उसकी आलोचना न बन जाय। इसलिए वह गांधी की आलोचना और विचार करने से बचना चाहता है। वह कहता है पूजा के थाल चढ़ाओ और गांधी को भगवान् बना लो। मैं भगवान् से एक ही प्रार्थना करता हूँ, कृपा करना, गांधी को भगवान् मत बनने देना। क्योंकि जितने लोग हमारे पहले भगवान् बन गये हैं, वह भगवान् बनते ही व्यर्थ हो गये। समाज और देश के लिए उनका कोई उपयोग नहीं रह गया।

गांधी एक अद्‌भुत व्यक्ति हैं। शायद पृथ्वी पर इस सदी में दो-चार लोग ही उस कोटि के पैदा हुए हैं। लेकिन पीछे चलनेवाले लोग हमेशा महापुरुष की हत्या करने की कोशिश करते हैं। वह हत्या उनको भगवान् बनाकर की जाती है। जिस आदमी को भी भगवान् बना दिया, उसकी आदमी की तरह हत्या हो गयी। भगवान् की तरह स्थापना हो गयी, आदमी की तरह हत्या हो गयी। और हम आदमी से ही प्रभावित हो सकते हैं और आदमियों के साथ ही हम जी सकते हैं और आगे चल सकते हैं। गांधी के साथ फिर वही शरारत शुरू हो गयी है जो हमने राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर के साथ की थी। लेकिन

हम अतीत की भूलों से कुछ सीखते भी मालूम नहीं पड़ते। मैं चाहता हूँ कि गांधी को हम मनुष्य ही बनाये रखें, ताकि वे हमारी मनुष्यता के काम आ सकें। हम उन पर निरंतर विचार कर सकें, सोच सकें और आगे बढ़ सकें। इस ख्याल से मैंने उनकी कुछ आलोचना की थी। मेरे पास अनेक पत्र पहुँचे कि जो व्यक्ति मर चुका है उसकी आलोचना हमें नहीं करनी चाहिए। मैंने उन पत्रों के उत्तर में लिखा कि शायद तुम्हें पता नहीं है कि गांधी उन लोगों में से नहीं हैं जो इतनी आसानी से मर जायँ। गोडसे ने जो भूल की थी वही भूल गांधीवादी भी करते हैं। गोडसे ने भूल की थी कि गोली मार देंगे, इस आदमी का शरीर मर जायेगा तो यह गांधी मर जायेगा। गांधीवादी भी समझते हैं कि शरीर गिर गया गांधी का तो गांधी मर गये। अब उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए। यह बात ठीक है छोटे-मोटे लोगों के बाबत कि जब वे मर जायँ तो हमें उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिए, क्योंकि मरे हुए आदमी की क्या आलोचना करनी है! एक बुरा आदमी भी गाँव में मर जाता है तो उसकी कब्र पर लोग कहते हैं कि बड़ा अच्छा आदमी था। छोटे आदमियों के साथ यह ठीक है कि उन बेचारों के पास क्या है जो उनके मरने के बाद बच रहेगा! लेकिन गांधी जैसे महापुरुषों के साथ यह अन्याय है कि हम समझें कि वह मर गये। मैं गांधी को, उनके प्रभाव को, अभी जिन्दा मानता हूँ और उनके साथ एक जिन्दा आदमी का व्यवहार करना चाहता हूँ, एक मरे आदमी का नहीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि वह मर गये। अब उनकी बात नहीं करनी चाहिए।

शायद आपने सुना हो, सुकरात की जिस दिन मौत हुई, उसे जहर दिया गया। जहर देने के पहले उसके मित्र उसके पास गये और उसके एक शिष्य क्रेटो ने उससे पूछा कि सांझ आपको जहर दिया जायेगा तो आप हमें बता दें कि हम दफनायेंगे किस तरह आपको, किस विधि से, किस मार्ग से, गाड़ें, जलाएँ या क्या करें। आप रास्ता बता दें, वैसा हम करें। सुनकर सुकरात हँसने लगा और उसने क्रेटो से कहा, "पागल जो मेरे दुश्मन समझते हैं कि मुझे जहर देकर मार डालेंगे वही तुम समझते हो कि शरीर के मरने से मैं मर जाऊँगा और तुम मेरे दफनाने का विचार करने लगे हो। मैं तुम्हें कहता हूँ क्रेटो कि तुम सब मर जाओगे, तुम सब दफना दिये जाओगे, तब भी मैं जिन्दा रहूँगा।" आज ढाई हजार साल हो गये, सुकरात अभी जिन्दा है। क्रेटो का नाम सिर्फ हमें इसलिए याद है कि सुकरात ने वह नाम लिया था। क्रेटो कभी का मर चुका है। वे साथी मर चुके, जिन्होंने सोचा होगा कि सुकरात को दफना रहे हैं, लेकिन सुकरात जिन्दा है।

महान् व्यक्ति का एक ही अर्थ होता है कि वह शरीर के पार उठ गया। अब शरीर के मिटने से उसके मिटने की कोई संभावना नहीं है।

मैं गांधी को एक जिन्दा आदमी मानकर व्यवहार करना चाहता हूँ और मुझे लगता है कि अभी गांधी को गांधीवादी दफनाने की बात न करें तो बहुत अच्छा है। इतना जल्दी मरा हुआ मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन वे भयभीत हैं कि कोई आलोचना न की जाय और मैंने आलोचना क्या की है? मेरी आलोचना गांधी के विरोध में नहीं है, लेकिन गांधीवाद के विरोध में है और मेरी दृष्टि है कि सच बात तो यह है कि गांधीवाद जैसी कोई चीज गांधी की कल्पना में थी ही नहीं। गांधी नहीं मानते थे कि उनका कोई वाद है। मानते थे कि जो उनकी अंतर्दृष्टि को ठीक मालूम पड़ता है, वह प्रयोग करते चले जाते हैं। उनका कोई रेखाबद्ध वाद नहीं है, लेकिन गांधी के पीछे जो गिरोह इकट्ठा हुआ, उसने 'गांधीवाद' खड़ा कर रखा है। दुनिया में हमेशा अनुयायी पंथ, संप्रदाय और वाद खड़ा करते हैं और पंथ, सम्प्रदाय और वाद जितने मजबूत होते जाते हैं, उतना ही हमारे और हमारे महापुरुषों के बीच एक पत्थर की दीवाल खड़ी हो जाती है जिसको पार करना मुश्किल हो जाता है। गांधी का कोई वाद नहीं है इन अर्थों में, लेकिन गांधी ने जीवन भर जो किया है, जो सोचा है, जो विचारा है वह है और उस पर हमें बहुत स्पष्ट निर्णय लेना जरूरी है, क्योंकि उसी निर्णय के आधार पर इस देश के भविष्य को बनाने का हम विचार करेंगे।

गांधीवादी कहते हैं कि उस पर विचार नहीं करना है। जो उन्होंने कहा है उसे वैसे ही मान लेना है। यह बात इतनी अंधी और खतरनाक है कि अगर इन सारी बातों को इसी तरह मान लिया गया तो गांधी की आत्मा भी आकाश में कहीं होगी तो रोयेगी, क्योंकि गांधी खुद अपनी जिन्दगी में हर वर्ष अपनी भूलों को स्वीकार करते रहे और मानते रहे कि जो भूलें हो गयीं उन्हें छोड़ देना है। अगर गांधी जिन्दा होते तो इन बीस वर्षों में उन्होंने बहुत-सी भूलें स्वीकार की होतीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि अब कोई भूल पर ध्यान नहीं देना है। जो कहा गया है उसे चुपचाप मान लेना है। यह अंधापन बहुत महँगा साबित होगा। बुद्ध और महावीर को अंधा मान लेने से, अंधापन मान लेने से उतना नुकसान नहीं हो सकता है, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने व्यक्तिगत मनुष्य की आत्मोत्कर्ष की बात की है। हिन्दुस्तान में गांधी एक पहले ही व्यक्ति थे, जिन्होंने सामाजिक उत्कर्ष का भी विचार किया है। बुद्ध और महावीर को मान लेने से एक-एक व्यक्ति भटक सकता है, गांधी को अंधेपन से मान लेने से पूरे समाज का

भविष्य भटक सकता है, पूरा देश भटक सकता है, इसलिए गांधी पर विचार कर लेना बहुत जरूरी है।

गांधी एक अर्थ में अनूठे हैं भारत के इतिहास में। भारत के विचारशील व्यक्ति ने कभी भी समाज, राजनीति और जीवन के संबंध में सीधी कोई रुचि नहीं ली है। भारत का महापुरुष सदा से पलायनवादी रहा है। उसने पीठ कर ली है समाज की तरफ। उसने मोक्ष की खोज की है, समाधि की खोज की है, सत्य की खोज की है, लेकिन समाज और इस जीवन का भी कोई मूल्य है यह उसने कभी स्वीकार नहीं किया। गांधी पहले हिम्मतवर आदमी थे जिन्होंने समाज की तरफ से मुँह नहीं मोड़ा। वह समाज के बीच में खड़े रहे और जिंदगी के साथ और जिन्दगी को उठाने की उन्होंने कोशिश की। यह पहला आदमी था जो जीवन-विरोधी नहीं था, जिसका जीवन के प्रति स्वीकार का भाव था। स्वभावतः किसी भी दिशा में आदमी से बड़ी भूलें होना संभव है। पायोनियर हमेशा भूलें करता है। वह पहले आदमी थे, एक नयी दिशा में प्रयोग कर रहे थे और अगर हम उनको अंधे होकर मान लेंगे तो हम बहुत खतरनाक रास्ते पर जा सकते हैं।

मेरी दृष्टि में भारत की बहुत प्राचीन समय से कुछ-कुछ बुनियादी भूलों में से एक भूल यह रही है कि हमने दरिद्रता को एक तरह की महिमा, एक तरह का गौरव प्रदान किया है। हम दरिद्रता को एक तरह का सम्मान देते रहे हैं। दरिद्रता का दर्शन विकसित किया है, जिसको 'फिलासफी ऑफ पावर्टी' कहा जा सकता है। पाँच हजार वर्षों से हमने यह स्वीकार किया हुआ है कि दरिद्र होना भी कोई बड़े गौरव की बात है और उसके साथ ही धन-संपदा, समृद्धि की एक निन्दा, इनका एक बहिष्कार भी हमारे मन में रहा है। परिग्रह का एक विरोध, अपरिग्रह की एक स्थापना। समृद्धि-विस्तार का विरोध, संकोच-दरिद्रता की स्वीकृति हमारे खून में प्रविष्ट हो गयी है। मैं कहना चाहता हूँ कि यह इसी 'दरिद्र दर्शन' का परिणाम है। भारत पाँच हजार वर्षों की लंबी सभ्यता के बाद भी दरिद्र है और समृद्ध नहीं हो पाया है। इस विचार का यह अंतिम परिणाम है। गांधी ने जाने-अनजाने पुनः इसी दरिद्रता के दर्शन को फिर से सहारा दे दिया है। गांधी ने फिर दरिद्र को दरिद्रनारायण कह दिया। दरिद्र नारायण नहीं है, दरिद्रता पाप है, दरिद्रता रोग है। उससे घृणा करनी है, उसे नष्ट करना है। दरिद्र को अगर हम पवित्र और भगवान् कहेंगे—इस तरह की बातें करेंगे और दरिद्रता को महिमामंडित करेंगे तो हम दरिद्रता को नष्ट नहीं कर सकते हैं, हम दरिद्रता को बनाये ही रखेंगे। हम दरिद्रता पर दया कर सकेंगे, सेवा कर

सकेंगे दरिद्र की, लेकिन दरिद्र को मिटा नहीं सकेंगे। दरिद्र की सेवा की जरूरत नहीं है, दरिद्र के गुणगान की जरूरत नहीं है, दरिद्र की दया की जरूरत नहीं है। दरिद्र को पृथ्वी से समाप्त करना है, दरिद्र को नष्ट करना है, दरिद्र को नहीं बचने देना है। दरिद्रता के साथ एक महामारी का व्यवहार करना है। प्लेग, हैजा और मलेरिया के साथ हम जो व्यवहार करते हैं, वही व्यवहार दरिद्रता के साथ करना है। लेकिन हिन्दुस्तान की जो परम्परा है दरिद्रता की और त्याग की, गांधी के मन पर उसका प्रभाव है, सारे मुल्क के मन पर उसका प्रभाव है। हमारे जाने-अनजाने हमारे अचेतन में, अनकांसेस तक यह बात प्रविष्ट हो गयी है कि दरिद्रता को कुछ गौरव है। यह बहुत ही खतरनाक दृष्टि है, यह बहुत ही आत्मघाती दृष्टि है; क्योंकि जब हम दरिद्रता को इस भाँति स्वीकार करते हैं, सम्मान देते हैं और दरिद्रता में संतोष कर लेने को एक धार्मिक गुण मानते हैं, तो फिर समाज समृद्ध कैसे होगा, समाज संपत्ति पैदा कैसे करेगा ? हम भी इसी पृथ्वी पर हैं, दूसरे देश भी इसी पृथ्वी पर हैं। हम पीछे इतिहास में उनसे कहीं ज्यादा समृद्ध थे जो आज हमें भीख दे रहे हैं। हम कहीं ज्यादा खुशहाल थे। आज हमें भीख माँगनी पड़ रही है और शायद आगे भी हमें भीख माँगते रहना पड़े। अगर हमने अपने आज तक के जीवन को, जीने के दर्शन को और व्यवस्था को रूपांतरित नहीं किया तो हम आगे भी यही करते चले जायेंगे, जो हमने पीछे किया है।

संपत्ति आसमान से पैदा नहीं होती है, संपत्ति श्रम से पैदा होती है। श्रम आकस्मिक नहीं होता। श्रम विचार से जन्म लेता है और अगर हमारे विचार में संपदा का विरोध है तो हम न श्रम करेंगे, न संपदा पैदा करेंगे। यह जो भारत एकदम श्रमशून्य मालूम पड़ता है—सुस्त, काहिल, अलाल मालूम पड़ता है, लेजी मालूम पड़ता है, यह लेजीनेस, यह सुस्ती, यह काम न करने की प्रकृति, यह प्रवृत्ति उस विचार से पैदा होती है जो दरिद्रता की, संतोष मानने की शिक्षा देता है और यह भी ध्यान रहे कि इसी कारण बुद्ध और महावीर जैसे लोग राजघरों को छोड़कर दरिद्र हो गये। हिन्दुस्तान में जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के थे। बुद्ध राजा के लड़के थे, राम और कृष्ण राजाओं के लड़के थे। हिंदुस्तान के सारे तीर्थंकर और अवतार राजपुत्र थे। ये सारे तीर्थंकर और बुद्ध राजमहलों को छोड़कर दरिद्र हो गये और इनके दरिद्र होने से हमारे दरिद्रता के दर्शन को और सहारा मिला।

एक बात ध्यान रहे, अमीर आदमी का दरिद्र होना यह बात ही दूसरी है और दरिद्र का दरिद्रता में संतुष्ट हो जाना अलग बात है। इन दोनों बातों में बुनियादी फर्क है। अमीर आदमी जब दरिद्र होता है तब वह अमीरी को जानकर

दरिद्र होता है। अमीरी व्यर्थ हो गयी, इसलिए दरिद्र होता है। उसकी दरिद्रता और उस आदमी की दरिद्रता जिसने कभी अमीरी नहीं जानी, भर पेट भोजन नहीं जाना, कपड़े नहीं जाने, इन दोनों की दरिद्रता में कोई भी संबंध नहीं है। सच बात तो यह है कि अमीर जब दरिद्र होता है तो दरिद्रता भी एक आनंद मालूम होती है, क्योंकि दरिद्रता भी एक स्वतंत्रता मालूम होती है। गरीब आदमी जब दरिद्रता से संतोष कर लेता है तो वह संतोष सिर्फ दुःख को छिपाने का और सांत्वना का एक उपाय होता है। हिन्दुस्तान के सारे बड़े शिक्षक राजघरानों से आये। वे राजघराने से ऊब गये थे। वे संपत्ति से ऊब गये थे, परेशान हो गये थे। संपत्ति की अपनी परेशानियाँ हैं, दरिद्रता की अपनी परेशानी है, भिखमंगे की अपनी परेशानी है, राजघर की अपनी परेशानी है। वे अपनी परेशानियों से पीड़ित हो गये थे, वे स्त्रियों और सुख के बीच ऊब गये थे, उन्हें बदलाहट चाहिए थी। उन्होंने वह सब छोड़ दिया और सड़क पर नग्न खड़े हो गये। उन्हें उस नग्नता में बहुत स्वतंत्रता मालूम हुई होगी, उन्हें उस नग्नता में एक अद्भुत मुक्ति मालूम हुई होगी। वह मालूम हो सकती है, लेकिन वह हमेशा तभी मालूम होती है, जब कोई समृद्धि को लात मार कर दरिद्र बनता है। वह दरिद्रता समृद्धि के आगे का कदम है, समृद्धि के पहले का कदम नहीं है। वह दरिद्रता भी एक अर्थ में समृद्धि का वैभव है, वह दरिद्रता भी समृद्धि का अंतिम विलास है। उसको भी लात मारने का मजा है। वह सुख गरीब आदमी नहीं उठा सकता। लेकिन हिन्दुस्तान के बड़े शिक्षक जब दरिद्र हुए, उन्होंने धन छोड़ा तो दरिद्र को लगा कि जिस चीज को छोड़ ही देना पड़ता है उसे पाने की जरूरत क्या है। और उसे पता नहीं कि वह दरिद्र महावीर की दरिद्रता का मजा नहीं लूट पायेगा। महावीर की दरिद्रता बुनियादी रूप से गुणात्मक रूप से भिन्न है।

मैं अमृतसर में था। एक संन्यासी मित्र एक घटना सुना रहे थे कि अमृतसर से एक ट्रेन जा रही थी हरिद्वार की तरफ। मेला है हरिद्वार में। हजारों लोग ट्रेन में भर रहे हैं। हरएक आदमी अमृतसर स्टेशन पर यही चिल्लाता है कि चलो गाड़ी के अन्दर, भीतर बैठो, जल्दी भीतर चलो, सामान रखो। एक आदमी के पास भीड़ इकट्ठी है और वह आदमी यह कह रहा है कि मैं गाड़ी में बैठूँ तो जरूर, लेकिन अमृतसर में बैठता हूँ, हरिद्वार में उतरना पड़ेगा न ? वह आदमी यह दलील दे रहा है कि जब उतरना ही पड़ेगा, तब फिर गाड़ी में बैठे ही क्यों ? जब उतरना है तो उतरे ही रहें। मित्रों ने जबरदस्ती धक्का दिया और कहा, 'यह तर्क समझाने का समय नहीं है। अन्दर बैठ जाओ, फिर तुम्हें समझायेंगे। गाड़ी जाने के करीब है।' जबरदस्ती उस आदमी को भीतर ले गये, लेकिन वह

आदमी यही चिल्लाता रहा कि जब उतरना ही है तो बैठने की जरूरत क्या है। फिर हरिद्वार आ गया, फिर सारी गाड़ी में दूसरी आवाज आने लगी कि उतरो, सामान उतारो, नीचे उतरो, जल्दी उतरो, कहीं गाड़ी न छूट जाय। वह मित्र उसको फिर समझा रहे हैं कि नीचे उतरो। वह कहता है कि जब चढ़ ही गये तब उतरना क्या। पहले ही मैंने कहा था चढ़ो मत, अगर उतरना हो। अब जब चढ़ ही गये तो चढ़ ही गये, उतरना क्या। उसे जबरदस्ती नीचे उतारा।

वह व्यक्ति तर्क तो मजे का दे रहा है। यह बात सच है कि अमृतसर से जाना है हरिद्वार तो गाड़ी पर चढ़ना भी होगा और उतरना भी होगा और जो सोचता है जब उतरना ही है कभी जाकर तो चढ़ना ही क्या, वह फिर अमृतसर पर ही रह जायेगा, हरिद्वार नहीं पहुँच सकता। और अगर हरिद्वार पर पहुँचकर उसने यह जिद् की कि जब चढ़ ही गये तब उतरना ही क्या, तब भी वह हरिद्वार नहीं पहुँच पायेगा। दोनों हालत में हरिद्वार चूक जायेगा।

मेरी अपनी दृष्टि यह है कि समृद्धि की एक यात्रा है जीवन में। निश्चित ही एक दिन समृद्धि छोड़ देने जैसी अवस्था आ जाती है, लेकिन वह समृद्धि की यात्रा से ही आती है और दरिद्र आदमी अगर यह सोचे कि जब महावीर-बुद्ध जैसे लोग छोड़कर आ रहे हैं तो फिर मुझे परेशान होने की जरूरत क्या है, तो ध्यान रखें, उसकी दरिद्रता अमृतसर की दरिद्रता होगी, हरिद्वार की नहीं। हिन्दुस्तान के इन धनी शिक्षकों के कारण यह बड़ी अजीब पैरोडॉक्सिकल बात भी हममें घर कर गयी है। धनी शिक्षकों के कारण हिन्दुस्तान ने दरिद्रताके दर्शन को विकसित कर लिया है और दरिद्र ने अपनी दरिद्रता स्वीकार कर ली। जब उसने देखा कि राजमहलों को लोग छोड़कर आ रहे हैं तो फिर ठीक है मुझे, और राजमहलों की तरफ जाने का सवाल क्या है। और जब एक बार दरिद्रता स्वीकृत हो जाती है तो सम्पत्ति के उत्पादन का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। यह देश इसीलिए गरीब है।

काउंट केसरलिंग हिन्दुस्तान से लौटा तो उसने अपनी डायरी में एक वाक्य लिखा। मैं पढ़ रहा था तो बहुत हैरान हुआ। मुझे लगा कि छापेखाने की भूल होनी चाहिए। उसने एक वाक्य लिखा--"मैं हिन्दुस्तान गया, वहाँ से लौटा हूँ तो एक अजीब नतीजा लेकर आया हूँ, नतीजा यह है कि 'इंडिया इज ए रिच लैंड व्हेयर पुअर पिपुल लिव'--हिन्दुस्तान एक धनी देश है जहाँ गरीब लोग रहते हैं। मैं बहुत हैरान हुआ कि यह वाक्य कैसा हुआ! अगर धनी देश है तो गरीब लोग कैसे रहते होंगे और गरीब लोग रहते हैं, तो धनी देश कैसे है? कोई छापे की भूल है, लेकिन आगे पढ़ने पर मुझे पता चला कि वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि देश तो बहुत धनी है, लेकिन रहनेवाले मूढ़ हैं, वे गरीब बने हुए हैं। देश तो बहुत धन पैदा कर सकता है, लेकिन रहनेवालों की जीवन-दृष्टि दरिद्र रहने की है, इसलिए वे संपत्ति पैदा नहीं कर पाते। हिंदुस्तान की दरिद्रता नहीं मिटेगी, जब तक हम संपत्ति के प्रति भी एक स्वस्थ रुख लेने को राजी न हों। हमारा संपत्ति के प्रति अत्यंत रुग्ण रुख है। एक तरफ तो यह है कि हम संपत्ति का विरोध करते हैं और दूसरी तरफ भीतर संपत्ति की लालसा भी करते हैं, क्योंकि दरिद्रता के भीतर यह असंभव है कि आप सच में संतुष्ट हो जायँ। कैसे संतुष्ट हो सकते हैं? जबरदस्ती थोप कर अपने ऊपर संतोष के कपड़े पहन लेंगे, लेकिन संतुष्ट हो कैसे सकते हैं? भीतर असंतोष की आग जलती ही रहेगी, इसलिए ऊपर से कहेंगे, कि कुछ मतलब नहीं है हमें, और भीतर लालसा, ईर्ष्या और लोभ सब काम करते रहेंगे।

मैं एक संन्यासी के पास यहीं बंबई में कोई पाँच-सात साल पहले मिलने गया। एक मुनि हैं। बहुत उनके शिष्य हैं, बहुत लोग वहाँ इकट्ठे हो गये, मैं मिलने आया हूँ, कुछ बात होगी। उन मुनि ने मुझे एक गीत सुनाया गुजराती में। उसका अर्थ मुझे समझाया। सुननेवाले बैठकर सिर हिलाने लगे और कहने लगे, वाह वाह! मैं बहुत हैरान हुआ, क्योंकि उस गीत का मतलब यह था कि तुम अपने राजमहल में खुश हो, रहो, हम अपनी धूल में भी आनंद में हैं। तुम स्वर्ण के सिंहासन पर बैठे हो, बैठो, हमें तुम्हारे स्वर्ण के सिंहासन से कोई मतलब नहीं, हम लात मारते हैं स्वर्ण के सिंहासन पर, हम तो अपनी धूल में ही मस्त हैं, हम तो हैं फकीर। इस तरह का भाव था। पूरा गीत कहकर वह मुझसे कहने लगे, 'कैसा लगा?' मैंने कहा कि 'मैं बहुत हैरान हुआ। मैं इसलिए हैरान हुआ कि अगर आपको राजमहलों से कोई मतलब नहीं, अगर आपको स्वर्ण सिंहासनों-से कोई मतलब नहीं तो उनकी याद क्यों आती हैं, उनके गीत क्यों लिखते हैं। मैंने किसी सम्राट् को कभी ऐसा गीत लिखते नहीं देखा, नहीं सुना कि उसने कहा हो कि हम अपने स्वर्ण-सिंहासन पर ही ठीक हैं, हमें तुम्हारी धूल से कुछ भी नहीं लेना-देना। तुम रहो मजे में, हम उपेक्षा करते हैं, हमें कोई फिक्र नहीं।' कोई सम्राट् ऐसा नहीं कहता, लेकिन ये फकीर निरंतर ऐसी बातें कहते हैं कि हमें स्वर्ण-सिंहासन से कोई मतलब नहीं। मतलब नहीं है तो यह गीत क्या बताते हैं? ये मतलब बताते हैं कि मतलब बहुत गहरा है और भीतर है। स्वर्ण-सिंहासन मन को खींचता है, संतोष से मन को रोका हुआ है। संतोष से जो मन को रोकता है और स्वर्ण-सिंहासन की भीतर लालसा है, वह स्वर्ण-सिंहासन को गाली देना शुरू कर देगा ताकि संतोष करने में सुविधा मिले।

हिन्दुस्तान, पूरा का पूरा हिन्दुस्तान भौतिकवाद को गाली देता है। 'वह

आदमी भौतिकवादी है,' बस, इतना कहते ही किसीकी पर्याप्त निंदा हो जाती है। इसीलिए नपुंसक क्रोध में हम पश्चिम को मैटरियलिस्ट कहते नहीं अघाते हैं! लेकिन जितना तुम भौतिकवाद को गाली देते हो, उतना तुम खबर लाते हो कि तुम्हारे प्राणों में भौतिकवाद की आकांक्षा है। मन के नियम बहुत अजीब हैं। एक आदमी अगर अपनी स्त्री को छोड़कर जंगल में भाग जाय और संन्यासी हो जाय और उसका मन स्त्री से मुक्त न हुआ हो तो वह घूम-फिरकर यही कहता रहेगा कि कामिनी-कांचन से सावधान, स्त्री से बचना है, स्त्री नर्क का द्वार है। वह किसी और से नहीं कह रहा है, जोर-जोर से अपने से ही कह रहा है। वह भीतर स्त्री खींच रही है, आमंत्रण दे रही है, वह कह रही है आओ। स्त्री भीतर रूप बन रही है, स्त्री भीतर प्राणों को कस रही है, वह उससे बचने के लिए कह रही है। कामिनी-कांचन पाप है, स्त्री नर्क का द्वार है, स्त्री से सावधान। दूसरे को समझा रहा है। दूसरे के बहाने वह अपनी ही वाणी को जोर से सुनने की कोशिश कर रहा है, ताकि भीतर हिम्मत बनी रहे कि स्त्री नर्क का द्वार है, बचो, सावधान रहो। जो आदमी वासना से मुक्त हो जायगा उसे स्त्री नर्क का द्वार कैसे दिखायी पड़ेगी? जिस आदमी का मन सेक्स से मुक्त हो गया हो, उस आदमी को क्या स्त्री और पुरुष में भेद दिखायी पड़ेगा?

बुद्ध एक जंगल में बैठे थे एक पहाड़ के पास। कुछ लोग शहर से आये थे एक वेश्या को लेकर पिकनिक के लिए, आमोद-प्रमोद के लिए। वे तो सब नशे में चूर हो गये, वेश्या ने देखा कि वे बेहोश हो गये हैं नशे में, तो वह भाग खड़ी हुई। उसके सारे वस्त्र उन्होंने छीन रखे थे। वह नग्न थी। जब वह भाग गयी तो और उन्हें कुछ होश आया तो वे उसे खोजने जंगल में निकले। रास्ते पर बुद्ध को बैठे देखा तो उसके पास जाकर कहा कि भंते, यही एक रास्ता है, जरूर यहाँ से एक स्त्री को आपने भागते देखा होगा। स्त्री नग्न थी, वेश्या थी, आपको पता है वह कहाँ गयी? यहीं से रास्ते बँट जाते हैं। हम उसे खोजने कहाँ जायें? बुद्ध ने कहा, कोई निकला जरूर था, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह पहचानना बहुत मुश्किल है, यह मुझे याद नहीं। क्योंकि जबसे मेरे भीतर से वासना उठ गयी तब से मेरे भीतर का पुरुष मर गया। जब से मेरा पुरुष मर गया, तब से बाहर की स्त्री उस तरह नहीं दिखायी पड़ती, जैसे पहले दिखायी पड़ती थी।

यह बुद्ध-जैसा आदमी स्त्री को नर्क का द्वार कैसे कहेगा? नहीं, जो स्त्री को नर्क का द्वार कह रहा है, उसके भीतर स्त्री का आकर्षण तेज है? जो संपत्ति को गाली दे रहा है, उसके भीतर संपत्ति का आकर्षण तेज है। जो कह रहा है कि सोना मिट्टी है, वह अपने को समझा रहा है कि सोना अभी पूरी तरह सोना है और प्राणों

को खींच रहा है। भारत ने एक तरफ दरिद्रता की बातें सीख लीं और दूसरी तरफ लोभ, ईर्ष्या और धन की वासना तीव्र से तीव्रतर होती चली गयी। यह एक अद्भुत घटना घट गयी। ऊपर से हम दरिद्र हैं। दरिद्रता में संतोष की बात भी करते हैं, लेकिन हमसे ज्यादा लोभी आदमी जमीन पर खोजना मुश्किल है।

मैं एक घर में ठहरा था। उस घर के ऊपर कुछ पश्चिम के लोग--दो परिवार रहते थे। उस घर में जब भी मैं ठहरा तो उस घर के लोगों ने मुझसे कहा कि पश्चिम के लोग बड़े भौतिकवादी हैं। सिवाय खाने-पीने के, सिवाय नाच-गाने के इन्हें कुछ भी मालूम नहीं, एकदम भौतिकवादी हैं। जब भी मैं गया, मुझे वे यही कहते थे। रात बारह बजे तक नाचते रहते हैं। बस, खाना और पीना और नाचना-यही जिन्दगी है। फिर एक बार उनके घर में ठहरा। ऊपर शांति थी, तो मैंने पूछा कि क्या वे लोग चले गये? घर की गृहिणी ने कहा, हाँ वे चले गये। पर अजीब लोग थे, अपने सारे सामान बाँट गये। जो नौकरानी बर्तन मलती थी, स्टील के बर्तन थे सब—वह स्त्री कहने लगी—असली स्टील के बर्तन थे। वह सब नौकरानी को ही दे गये। रेडियो था, रेडियोग्राम था, वह सब बाँट गये। बड़े अजीब लोग थे। मैंने उस स्त्री से पूछा कि तू तो निरंतर कहती थी कि ये बड़े भौतिकवादी लोग हैं, नाचते-गाते हैं, खाते-पीते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं, बहुत मटीरियलिस्ट हैं, लेकिन ये सारी चीजें बाँटकर चले गये। तू भी इस तरह सारी चीजें बाँट सकती है? उसने कहा, मैं? कैसे बाँट सकती हूँ, मेरे मन में तो यही लगा रहा कि कुछ हमें भी दे जायँ तो अच्छा है। मैंने पूछा, वे तुझे कुछ दे गये? उसने कहा, मुझे दे नहीं गये क्योंकि उन्होंने सोचा होगा, इनके पास तो सब है, शायद ये लेने से इनकार कर दें। तो तेरे पास कोई निशानी नहीं है? उसने कहा, एक निशानी है, वह एक रस्सी बँधी हुई छोड़ गये थे, वह मैं खोल लायी हूँ कपड़े टाँगने की रस्सी थी, लेकिन रस्सी प्लास्टिक की है और बहुत अच्छी है, वह भर मैं खोल लायी हूँ, वह भर निशानी रह गयी है।

यह स्त्री रोज मंदिर जाती है, रोज सुबह उठकर भक्ताम्बर-स्तोत्र पढ़ती है, यह बड़ी धार्मिक है, उपवास भी करती है और सोचती है कि मैं भौतिकवादी नहीं हूँ और वे लोग जो नाचते थे, और गीत गाते थे, वे इसे भौतिकवादी मालूम पड़ते थे। वे इसे भौतिकवादी क्यों मालूम पड़ते थे? इसके भीतर भी नाचने का गीत गाने का और संपत्ति का मोह है। वह इसे खींचता है कि काश, यह सब उसके पास भी होता, यह सब वह भी करती, लेकिन नहीं-नहीं, संतोष रखना है। इन सब बातों में नहीं पड़ना है, ये बातें बहुत बुरी हैं, इसलिए गाली देती है, निन्दा करती है,

कंडम करती है, अपने मन को समझा लेती है और पीछे से एक रस्सी भी खोलकर ले आती है। अध्यात्मवादी हैं हम !

एक अमरीकन यात्री की मैं किताब पढ़ रहा था। वह दिल्ली के स्टेशन पर उतरा और एक सरदार ने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया है और कहा है कि मैं आपका भविष्य बताऊँगा। उसने कहा, लेकिन मुझे भविष्य पूछना नहीं है। हम अपना भविष्य खुद बनाते हैं। भविष्य कहीं है यह हम मानते नहीं। पर सरदार-जी ने तो बताना ही शुरू कर दिया। वह तो हाथ जोर से पकड़े हुए हैं। अब वह आदमी बेचारा शिष्टाचार में सिर्फ हाथ पकड़ाये हुए है, छोड़ नहीं रहा है। ठीक है, वह कह रहा है कि मुझे पूछना नहीं है, मुझे कुछ जानना नहीं है, लेकिन सरदार जी ने तो बताना शुरू कर दिया है कि यह होगा, यह होगा। फिर उस आदमी ने कहा, मुझे जाने दीजिये। तो सरदारजी ने कहा, मेरी फीस ? मेरे दो रुपये फीस के हो गये। उस आदमी ने कहा, ठीक है। हालां कि मैं मना कर रहा था और आपने जबरदस्ती बताया है, लेकिन फिर भी आपने इतना श्रम किया है, ये दो रुपये आप ले लें। लेकिन दो रुपये लेकर सरदार जी ने हाथ छोड़ा नहीं है। वह और बताने लगे हैं। उसने कहा, देखिये, अब हाथ छोड़ दीजिये, क्योंकि फिर आपकी फीस हो जायगी। लेकिन सरदार जी बताये चले जा रहे हैं। तो उसने कहा, मुझे जाना है। जबरदस्ती हाथ छुड़ाया तो सरदार जी ने कहा कि दो रुपये मेरी फीस और हो गयी। उस आदमी ने कहा, अब मैं दो रुपये नहीं दूंगा। यह तो जबरदस्ती की बात है। तो सरदार जी ने क्या कहा ? सरदार जी ने कहा, "यू मैटीरियलिस्ट"—दो रुपये के लिए मरे जाते हो, भौतिकवादी हो, दो रुपये में जान निकली जाती है !

उस आदमी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं तो दंग रह गया। भौतिकवादी कौन था ? मैं था भौतिकवादी ?

सारी पृथ्वी पर हमसे ज्यादा भौतिकवादी लोग खोजने मुश्किल हैं, क्योंकि दरिद्र आदमी कभी भी भौतिकवाद से ऊपर नहीं उठ सकता है। समृद्ध आदमी ही भौतिकवाद से ऊपर उठ सकता है, क्योंकि समृद्धि को पाकर उसे पता चलता है कि कुछ भी नहीं है समृद्धि में। धन पाकर दिखायी पड़ता है कि धन में कुछ भी नहीं हैं और जिस दिन धन निस्सार दिखायी पड़ता है, असार दिखायी पड़ता है, उस दिन भौतिकवाद से आदमी ऊपर उठता है। संपत्ति का एक ही बड़े-से-बड़ा मूल्य है कि संपत्ति से आदमी मुक्त हो जाता है। धन का एक ही आध्यात्मिक मूल्य है कि धन के उपलब्ध होने से आदमी धन से मुक्त हो सकता है। निर्धन आदमी धन से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। धनी आदमी धन से मुक्त हो सकता है। यह देश

दरिद्रता को स्वीकार करने के कारण धनी नहीं हो पाया। धनी नहीं हो पाने के कारण धन से मुक्त नहीं हो पाया; लेकिन हम थोथी बातें अपने ऊपर थोपे चले जाते हैं और बिल्कुल ही जीवन और मन के विपरीत काम किये चले जाते हैं। ऊपर से कुछ, और भीतर से कुछ हुए चले जाते हैं। सारा व्यक्तित्व पाखंड हो गया है, सारा व्यक्तित्व धोखा हो गया है। और मैंने इसलिए कहा कि गांधी की दरिद्रता की शिक्षा फिर खतरनाक है, फिर वह हमारी पुरानी शिक्षा का ही फल है। फिर वह पुरानी शिक्षा का फिर से पुनरुक्तिकरण है।

नहीं, गांधी बहुत प्यारे आदमी हैं, गांधी बहुत अद्‌भुत आदमी हैं; लेकिन उनके दरिद्रता के दर्शन को अगर भारत ने स्वीकार किया तो भारत कभी समृद्ध नहीं हो सकेगा भारत कभी धार्मिक भी नहीं हो सकता है। मेरी दृष्टि में धार्मिक होने के लिए देश का समृद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। दरिद्र आदमी कैसे धार्मिक हो सकता है ? जिसकी रोटी की जरूरतें पूरी नहीं होतीं वह परमात्मा की जरूरत पैदा ही कैसे कर सकता है ? परमात्मा मनुष्य की अंतिम जरूरत है, लास्ट नेसेसिटी है। जब जीवन की सारी प्राथमिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तो अंतिम जरूरत का खयाल आता है और हम इस देश में गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षाएँ दिये चले जाते हैं। गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षा देना अन्याय है और गरीब आदमी अगर परमात्मा की बातें सुनने भी आता है और परमात्मा के मंदिर में प्रार्थना भी करने जाता है, तो आप यह मत सोचना कि वह परमात्मा के पास जा रहा है। जब वह परमात्मा के सामने हाथ जोड़कर खड़ा होता है, तब भी उसके मन में यही प्रार्थना होती है कि कल मुझे रोटी मिल सकेगी न ? मेरा बच्चा बीमार है, वह ठीक हो सकेगा न ? मेरा काम छूट गया है, मुझे काम मिल सकेगा न ? वह परमात्मा के पास भी रोजी-रोटी के लिए ही पहुँ-चता है, परमात्मा के लिए नहीं पहुँच सकता है। वह परमात्मा के पास जाता है तो बुनियादी कारण उसका भौतिक होता है, आध्यात्मिक नहीं हो सकता है। आध्यात्मिक जीवन की जरूरत, जीवन की सामान्य स्थिति, सुविधा उपलब्ध होने पर ही पैदा हो सकती है।

जब भारत थोड़ा समृद्ध था तो भारत धार्मिक था। इधर दो हजार वर्ष से वह निरंतर दरिद्र और दरिद्र होता चला गया है। आज वह दरिद्रता के गड्ढे में खड़ा है। वह धार्मिक नहीं हो सकता है। उसके धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है। इस बात की संभावना है कि आने वाले पचास वर्ष में अमरीका धार्मिक हो सके, रूस धार्मिक हो सके, लेकिन भारत के धार्मिक होने की कोई संभावना नहीं। अमरीका को धार्मिक होना पड़ेगा, रूस को धार्मिक होना पड़ेगा, क्योंकि जैसे ही

जिन्दगी की सामान्य जरूरतें पूरी हो जाती हैं, जैसे ही शरीर की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, पहली बार आदमी की आँखें उस तरफ उठती हैं जो शरीर के ऊपर हैं। शरीर की झंझट जैसे ही छूट जाती है, शरीर से आदमी आत्मा की तरफ उन्मुख होता है। शायद आपने कभी ख्याल भी न किया होगा। पैर में एक छोटा-सा काँटा गड़ जाय तो सारे प्राण उसी काँटे के आसपास घूमने लगते हैं। सिर में थोड़ा-सा दर्द हो तो आत्मा वगैरह सब भूल जाती है, सिर का दर्द ही रह जाता है। जहाँ पीड़ा होती है, प्राण वहीं अटक जाते हैं। भूखे पेट के प्राण पेट के आसपास ही अटके रहते हैं, उसके ऊपर नहीं उठ सकते। लेकिन हम एक बहुत मूढ़तापूर्ण, बहुत एब्सर्ड जीवन-दर्शन को पकड़े हुए बैठे हैं। मैं मानता हूँ कि समृद्ध आदमी किसी दिन दरिद्र हो सकता है, स्वेच्छा से, वालंटरी, लेकिन स्वेच्छा से दरिद्रता की बात ही दूसरी है। वह बात वैसी ही है—

मैं एक आश्रम में गया। उस आश्रम में वे उपवास कराते हैं महीने-महीने, दो-दो महीने, तीन-तीन महीने और एक-एक महीने के उपवास करने के पाँच-पाँच सौ रुपये महीने का खर्च पड़ जाता है। पाँच सौ रुपये महीने का खर्च एक महीने उपवास करने का! मैंने कहा, उपवास बड़ा महँगा है। इससे तो पेट भरना भी सस्ता पड़ता है। फिर वहाँ जो लोग उपवास करने वाले थे, वे बड़े ही आनंद से कहते थे कि बीस दिन कर लिये, पच्चीस दिन कर लिये, तीस दिन हो गये, मेरे चालीस दिन हो गये। मैं बहुत हैरान हुआ। मैं बिहार भी गया था। वहाँ अकाल में भूखे मरते हुए लोग थे, किसीको चार दिन से रोटी नहीं मिली थी। उसका चेहरा भी मैंने देखा और चालीस दिन इसने उपवास किया था इसका चेहरा भी मैंने देखा। इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ा। वह चार दिन भूखा रहा था, वह कितना दीनहीन मालूम हो रहा था! यह जिसने चालीस दिन उपवास किया था, एक निराली आध्यात्मिक गरिमा से भरा हुआ था। बड़ी अजीब बात है। फिर क्या हुआ? यह उपवास है, वह भूख है। यह उपवास वे लोग करते हैं जो ज्यादा खा गये हैं और ज्यादा खा रहे हैं। भूखे आदमी को कभी खाने को नहीं मिला। भूख और उपवास में फर्क है। महावीर की दरिद्रता में और सड़क पर भीख माँगने वाले की दरिद्रता में भी उतना ही फर्क है। ज्यादा खानेवाले के लिए उपवास भी एक आनंद हो सकता है, भूख से मरनेवाले के लिए उपवास कैसे आनंद हो सकता है? क्वालिटीटिव फर्क है, गुणात्मक फर्क है और हिन्दुस्तान पांच हजार वर्ष से इस गलत जीवन-दृष्टिकोण के नीचे जी रहा है कि हमें दरिद्रता में संतोष कर लेना है।

गांधी भी फिर पुनः उसी बात को दोहराते हैं और उसी बात को दोहराने के

कारण उन्होंने जो उपकरण बताये हैं चर्खा, तकली, वे उपकरण भारत को दरिद्र रखने के उपकरण सिद्ध होंगे। वे भारत को समृद्ध नहीं बना सकते। समृद्धि पैदा होती है टेक्नॉलॉजी से, समृद्धि पैदा होती है विज्ञान से, तकनीक से। समृद्धि पैदा होती है यंत्र से। चर्खा और तकली से समृद्धि कैसे पैदा हो सकती है? चर्खा और तकली कोई दस हजार वर्ष के पुराने साधन हैं। अगर दुनिया को दस हजार वर्ष पुरानी दरिद्रता में ले जाना है, दुख में ले जाना है तो चर्खा-तकली को प्रतीक बनाओ, अन्यथा चर्खा-तकली से मुक्त होने की जरूरत है। मैं यह नहीं कहता कि गाँव में जिन्हें कुछ भी काम नहीं मिल रहा है, वे चर्खा न कातें। मैं यह भी नहीं कहता कि जिन्हें खादी पहनने का शौक हो वे खादी न पहनें। मैं कहता हूँ यह कि यह भारत के विकास के प्रतीक न बन जायें, यह हमारे जीवन के देखने के, दृष्टिकोण के सिम्बल्स न हों। गांधी ने उन्हें सिम्बल बना दिया है। हमें ऐसा लगने लगा है कि बड़े तकनीक की कोई जरूरत नहीं है, बड़ी टेक्नॉलॉजी की कोई जरूरत नहीं है, बड़े यंत्रों की कोई जरूरत नहीं है। सेंट्रलाइजेशन, केन्द्रीकरण की कोई जरूरत नहीं है; औद्योगीकरण की, इंडस्ट्रियलाइजेशन की कोई जरूरत नहीं है। हमें ऐसा लगने लगा है कि एक-एक आदमी अपना साबुन बना ले, अपना कपड़ा बना ले, अपनी खेती में काम कर ले, स्वावलंबी हो जाय——बस इसकी जरूरत है। ये खतरनाक बातें हैं। अगर आदमी को हमने इस ढांचे पर ले जाने की कोशिश की है तो आदमी का जीवन-स्तर पशु के स्तर पर गिर जाने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं होगा। आदमी का जो इतना जीवन-स्तर ऊपर उठा है, वह तकनीक का परिणाम है और जिस दिन सारी मनुष्य-जाति का जीवन-स्तर इतना ऊँचा उठ जायगा जितना जीवन-स्तर बुद्ध और महावीर का ऊँचा रहा होगा, तो मैं आपसे कहता हूँ कि पृथ्वी पर करोड़ों बुद्ध और महावीर एक साथ पैदा हो सकते हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि राजघराने से इतने बड़े संन्यासी पैदा हुए। इतने बड़े संन्यासी राज-घरानों से ही पैदा हो सकते हैं, क्योंकि राजघराने में ही संपत्ति की और शरीर की व्यर्थता का पहला अनुभव होता है और आँखें उस तरफ उठती हैं जहाँ जीवन की और गहरी सचाइयाँ हैं, जहाँ और 'बियॉण्ड' और दूर और अतीत और ऊपर के शिखर हैं उन तक आँख तभी उठती है, जब जीवन की पृथ्वी नीचे से शांत, सुविधापूर्ण हो जाती है। तो मैं मानता हूँ कि चर्खा और तकली को अगर हम प्रतीक मान लेते हैं और अपनी आर्थिक जीवन-व्यवस्था का केन्द्र बना लेते हैं और अगर हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि विकेन्द्रीकरण करना है, बड़े उद्योग से बचना है, बड़ी टेक्नॉलॉजी और बड़ी साइंस को नहीं आने देना है तो हम बहुत घातक स्थिति में पहुँच जा सकते हैं। हम दरिद्र हैं हमेशा से, हम और भी दरिद्र हो सकते हैं। सारी

दुनिया समृद्ध होती चली जायगी, उसके किनारे हम एक दरिद्रता का हिस्सा बन जायेंगे। आज भी हमारी हालत वैसी है जैसे किसी करोड़पति के भवन के सामने कोई भिखमंगा खड़ा हो। आज भी हमारी हालत दुनिया के राष्ट्रों के मुकाबले एक भिखमंगे राष्ट्र की है। यह हालत रोज-रोज बदतर होती चली जायेगी। एक तरफ टेकनीक का उपयोग मत करना, केन्द्रीकरण की भावना को रोकना, तोड़ना, दूसरी तरफ हाथ से चलने वाले साधन जो आदिम हैं उनका उपयोग करना और तीसरी तरफ बच्चों को पैदा करते चले जाना! बीस-पच्चीस वर्ष में यह मुल्क अपने हाथ से अपनी आत्महत्या कर लेगा। गांधी कहते हैं कि संतति-नियमन के इस पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं कि बर्थ कंट्रोल के पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं ब्रह्मचर्य से नियमन होना चाहिए। ब्रह्मचर्य से कितने लोगों ने कब नियमन किया है? कितने लोग नियमन कर सकते हैं? कितने लोग करेंगे और हम प्रतीक्षा कब तक करेंगे? लेकिन गांधी कहते हैं कि नहीं, कृत्रिम उपाय का हमको उपयोग नहीं करना है। बर्थ-कंट्रोल के साधन कृत्रिम हैं, आर्टीफिशियल हैं, उनका उपयोग नहीं करना है। गांधी की ये बातें अवैज्ञानिक हैं।

गांधी भले आदमी हैं, इसका यह मतलब नहीं होता कि गांधी जो भी कहेंगे वह वैज्ञानिक होगा। कई बार बड़े गलत आदमी बड़ी ठीक बातें कहते हैं, कई बार बड़े ठीक आदमी बड़ी गलत बातें कहते हैं और सच तो यह है कि गलत बातें हम तभी स्वीकार करते हैं जब बहुत भले आदमी उनको कहते हैं। चर्खा और खादी की बात किसी और ने कही होती गांधी के अलावा, तो हिन्दुस्तान कभी मानने की फिक्र नहीं करता। वह गांधी इतने अद्भुत आदमी हैं कि वह कुछ भी कहेंगे तो हमें लगता है कि इतना बड़ा व्यक्ति, इतना महिमावान् व्यक्ति, इतना ओजस्वी, वह जो भी कहता है, ठीक कहता होगा। अगर हम मार्क्स की व्यक्तिगत जिंदगी को देखें तो मार्क्स की व्यक्तिगत जिंदगी में कुछ भी नहीं है--जिसको उदात्त कहा जा सके, ऊंचा कहा जा सके। सुबह से सांझ तक सिगरेट पी रहा है, शराब पी रहा है। जिन्दगी में कुछ ऐसी ऊंची बात नहीं है, जिन्दगी में कोई ऐसा बड़ा भारी प्रभाव नहीं है। नौकरानी से गलत सम्बन्ध है, नाजायज लड़का पैदा हो गया है, मार्क्स को। मार्क्स की जिन्दगी में कुछ भी नहीं है। छोटी-सी बात में क्रोध से भर जाता है। बहुत इगोइस्ट है, बहुत ईर्ष्यालु है। लेकिन मार्क्स ने समाज के लिए जो विश्लेषण दिया है वह सत्य है। गांधी बहुत अच्छे आदमी हैं, न सिगरेट पीते हैं, न किसी नौकरानी से कोई गलत संबंध है, न कोई नाजायज बच्चा पैदा हुआ है। जीवन एकदम पवित्र कथा है। जीवन एक शुभ्र कथा है, लेकिन गांधी ने

जो विश्लेषण दिया है समाज का वह अ-वैज्ञानिक है और गलत है। गांधी जैसे आदमी चाहिए, लेकिन समाज मार्क्स जैसा चाहिए। गांधी का समाज का विश्लेषण अवैज्ञानिक है। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि मैं इस पर बात ही न करूँ। वे कहते हैं, इस पर बात ही मत करिये। इस पर बात न करने का मतलब है कि देश में आग लग रही हो, हम बैठकर देखते रहें। गांधीवादी मुझे कहते हैं आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप क्यों इन बातों में पड़ते हैं? एक धार्मिक आदमी निकलता है और एक मकान में आग लगी हो और चिल्ला कर कह दे कि मकान में आग लगी है, पानी ले आओ तो उससे आप कहेंगे कि आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप इस झंझट में कहाँ पड़ते हैं। लगने दें आग। आप अपना भजन-कीर्तन करें। श्री मोरारजी भाई ने मेरे सम्बन्ध में बात करते हुए राजकोट में परसों कहा कि पहले तो राजनीतिक और आर्थिक लोग गांधीजी की आलोचना करते थे। अब आध्यात्मिक लोग भी उनकी आलोचना करने लगे! जैसे कि आध्यात्मिक आदमी का गांधी की आलोचना करना अनिवार्य रूपेण कोई अपराध हो। मैं श्री मोरारजी भाई को कहना चाहता हूँ गांधीजी को राजनीतिक और आर्थिक लोग तो समझ ही नहीं सकते, आलोचना क्या करेंगे। गांधी को तो आध्यात्मिक लोग ही समझ सकते हैं और विचार कर सकते हैं, क्योंकि गांधी मूलतः राजनीतिक नहीं हैं, न आर्थिक विचारक हैं। गांधी मूलतः एक नैतिक संत हैं। गांधी के आस पास जो राजनीतिज्ञ इकट्ठे हो गये हैं, उन्होंने ही गांधी को बरबाद किया है। और गांधी के पास जो राजनीति का जाल खड़ा हो गया है, उस जाल में ही गांधी की प्रतिमा को वह जितना सुन्दर हो सकती थी, जितनी पवित्र हो सकती थी उसकी पवित्रता और सुन्दरता में भी कमी की। गांधी मूलतः एक नैतिक व्यक्ति हैं। राजनीति से उनका कोई बुनियादी सम्बन्ध नहीं है। राजनीति एक आपद् धर्म थी, एक मजबूरी थी। मुल्क में एक आग थी, गुलामी थी। उसे दूर करने को उन्हें कूद पड़ना पड़ा। लेकिन मूलतः वे सत्य की खोज में जानेवाले एक नैतिक साधक हैं और उन पर आध्यात्मिक लोग विचार न करें, ऐसा अगर श्री मोरारजी भाई सोचते हों तो बहुत गलत सोचते हैं। गांधी पर हिन्दुस्तान के आध्यात्मिक चिन्तकों को बार-बार विचार करना पड़ेगा, क्योंकि गांधी ने आध्यात्मिक जीवन और सामान्य जीवन के बीच एक सेतु निर्मित करने का प्रयास किया है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गांधी नैतिक व्यक्ति हैं, इसलिए जो भी कहेंगे वह सत्य होगा। हमारी पुरानी धारणा यह है, हम समझते हैं कि महावीर को चूंकि आत्म-ज्ञान मिला, परमात्मा का अनुभव हुआ, इसलिए महावीर जो भी कहेंगे वह सच होगा, यह गलत बात है। महावीर का सब कहा हुआ सच नहीं

हो सकता। बुद्ध का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। गांधी का सब कहा हुआ भी सच नहीं हो सकता, बल्कि यह भी हो सकता है कि गांधी से बहुत कम हैसियत का कोई विचारक किसी दिशा में जो बात कहे--चाहे उसके पास व्यक्तित्व हो चाहे न हो, वह भी सच हो सकता है। यह मैंने कहा कि गांधी के मुकाबले कोई व्यक्तित्व नहीं है मार्क्स का। लेकिन मार्क्स का समाज का जो विश्लेषण है वह गांधी से श्रेष्ठ है, सही है, सच्चा है, वैज्ञानिक है। इसलिए मैं मानता हूँ कि गांधी जैसे पृथ्वी पर जितने लोग बढ़ जायेंगे पृथ्वी उतनी अच्छी होगी, लेकिन गांधी की जो समाज-रचना की कल्पना है वह कल्पना अवैज्ञानिक है। आदिम है प्रिमिटिव, पिछड़ी हुई है और उसके आधार पर चलकर इस देश के सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता है। मैं मानता हूँ कि यह आलोचना और विचार किया जाना जरूरी है। नहीं, मैं यह नहीं कहता हूँ कि मैं जो कहता हूँ वह सही होना ही चाहिए। यह मैं कभी भी नहीं कहता हूँ। यह मैं नहीं कहता हूँ कि मैंने जो कहा वह सत्य है। वह मैं कभी नहीं कहता हूँ। यह भी मैं नहीं कहता कि मेरी बात आपको मान लेनी चाहिए। मैं इतना ही कहता हूँ कि मैं जो कहता हूँ यह विचारणीय है, उस पर विचार किया जाना जरूरी है। हो सकता है मेरी बातें गलत हों। तब विचार कर उनको फेंक देना चाहिए। हो सकता है उसमें से कोई बात आपके विवेक को सच मालूम पड़े, तब वह मेरी नहीं रह जाती। वह आपकी अपनी हो जाती है। लेकिन जो पंथवादी होते हैं वे कहते हैं विचार ही नहीं करना है, वे विचार की हत्या करना चाहते हैं।

मैं गुजरात गया तो वहाँ मुझे लोगों ने कहा कि श्री इंदुलाल याज्ञिक ने कहा है मेरा बहिष्कार करेंगे गुजरात में। नहीं आने देंगे। मैंने कहा, अगर गुजरात पागल होगा तो श्री इंदुलालजी की बात मानेगा। गुजरात पागल नहीं है। आह! कैसा मजा है! वे बहिष्कार करेंगे मेरा! अगर मैं गांधी के ऊपर कुछ विचार करूँगा तो मेरा बहिष्कार किया जायेगा। तो गांधी की आत्मा कहीं भी होगी तो श्री इंदुलालजी को देखकर रो रही होगी कि ये मेरे गांधीवादी हैं! इन्हीं लोगों के लिए मैंने लड़ाइयां लड़ी हैं, इन्हींके लिए जीवन कुर्बान किया है, इन्हींके लिए बरबाद हुआ। गांधीवादी को अगर थोड़ी भी समझ हो तो मुझे तो उसे गाँव-गाँव बुलाकर ले जाना चाहिए कि मैं गांधी के बाबत बात करूँ और गांधी के बाबत विचार को पैदा करूँ। लेकिन वह कहता है कि नहीं किसीको मेरी खबर नहीं पहुंचनी चाहिए। मेरी सभा नहीं होनी चाहिए। राजकोट में जितने मैदान गांधीवादियों के हाथ में थे उन्होंने कहा कि नहीं यहां हम सभा नहीं होने देंगे। स्कूल उनके हाथ में है। सभा नहीं होने देंगे। उनके हाथ में तो सभी कुछ है।

लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है? इससे क्या सभा नहीं होगी? लेकिन इस भाँति रोककर वे क्या बताते हैं? वे बताते हैं कि इतना समझे गांधी की अहिंसा को कितना समझे गांधी की नैतिकता को, कितना समझे गांधी के विचार को, यही समझे? दिल्ली में बोला। दूसरे दिन ही मुझे एक पत्र आया। किसी गांधीवादी ने पत्र लिखा और मुझे लिखा कि महाशय आपको फौरन सेण्ट्रल जेल भेज दिया जाना चाहिए। मैंने आंख बन्द करके गांधी को धन्यवाद दिया और कहा कि मेरी उम्र कम थी, इसलिए आपके सत्संग का मौका नहीं मिला, नहीं तो आपके सत्संग में जेल जाना ही पड़ता। लेकिन आश्चर्य, आप मर गये। फिर भी प्रभाव आपका काफी है। जरा आपसे दोस्ती दिखायी, आपकी बात की कि जेल जाने की बात होने लगी। गांधी अगर जिन्दा होते तो इस बात के सौ में से सौ मौके हैं कि गांधीवादियों के जेल में उनको सड़ना पड़ता। ये गांधीवादी उनको जेल में जरूर भेजते। गांधी बुनियादी रूप से एक विद्रोही थे। वह मुल्क को नर्क में ले जाते अपने शिष्यों को नहीं देख सकते थे। वे यह नहीं सोचते थे कि ये शिष्य मेरे हैं, इसलिए इनसे बगावत कैसे करूं। बगावत की कहानी शुरू हो गयी थी। गांधी के हाथ से जैसे ही सत्ता उनके अनुयायियों को मिल गयी, वैसे ही गांधी को लगने लगा कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा कोई चलन नहीं रहा। मेरी कोई सुनता नहीं। गांधी के शिष्यों को भी लगता था कि इस बुड्ढे से अब छुटकारा हो जाय तो अच्छा है। क्योंकि यह झंझटें खड़ी करेगा और गोडसे ने मालूम होता है गांधी को इन्हीं की प्रार्थनाएँ सुनकर गोली मार दी। गोडसे ने गांधीवादियों का ही जैसे काम कर दिया। गांधीवादी से ज्यादा गांधी का शत्रु और कोई नहीं है। वाद में बांधते ही गांधी की मृत्यु है। मैं गांधी को वाद से मुक्त रखना चाहता हूं, ताकि वे सदा जीवित रहें और जीवन्त रहें। वाद की कब्र में उन्हें कैद नहीं करना है। निरंतर निष्पक्ष विचार से ही यह हो सकता है। विचार इसलिए सतेज रखना है। यही मेरा निवेदन है।

●

दूसरा प्रवचन

एक और असहमति

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं और नहीं मैंने अपने किसी पिछले जन्म में ऐसे कोई अपराध किये हैं कि मुझे राजनीतिज्ञ होना पड़े। इसलिए राजनीतिज्ञ मुझसे परेशान न हों और न ही चिन्तित हों। उन्हें भयभीत होने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं उनका प्रतिद्वंद्वी नहीं हूं, इसलिए अकारण मुझ पर रोष भी प्रकट न करें। लेकिन एक बात जरूर कह देना चाहता हूं। हजारों वर्ष तक, भारत के नैतिक व्यक्ति ने जीवन के प्रति एक उपेक्षा का भाव ग्रहण किया था। गांधी ने भारत की नैतिक परंपरा में उस उपेक्षा के भाव का आमूल तोड़ दिया है। गांधी के बाद भारत का नैतिक या धार्मिक व्यक्ति जीवन के और उसके पहलुओं के प्रति उपेक्षा नहीं कर सकता है। गांधी के पहले तो यह कल्पना ठीक थी कि कोई धार्मिक व्यक्ति जीवन की समस्या पर चाहे वह राजनीति हो, चाहे वह अर्थ हो, चाहे परिवार हो, चाहे सेक्स हो––इन सारी चीजों पर कोई स्पष्ट दृष्टिकोण न रखे। धार्मिक आदमी का काम था सदा से जीवन जीना सिखाना नहीं, जीवन से मुक्त होने का रास्ता बताना। धार्मिक आदमी का स्पष्ट कार्य था लोगों को मुक्ति की दिशा में गतिमान करना। लोग किस भांति आवागमन से मुक्त हो सकें, यही धार्मिक दृष्टि की उपदेशणा थी। इस उपदेश का घातक परिणाम भारत को झेलना पड़ा। मोक्ष है, इस जीवन के बाद और जीवन भी है और यह जीवन आने वाले जीवनों से जुड़ी हुई अनिवार्य कड़ी है। जो इस जीवन की उपेक्षा करता है, वह आने वाले जीवन के लिए नींव नहीं रखता। वह आने वाले जीवन को भी नष्ट करने का प्रारंभ करता है। इस जीवन के प्रति उपेक्षा नहीं चाहिए। धर्म ने अब तक उपेक्षा की थी, अब धर्म उपेक्षा नहीं कर सकता है, क्योंकि धर्म की उपेक्षा का यह परिणाम हुआ कि सारी पृथ्वी अधार्मिक हो गयी। इस सारी पृथ्वी के अधार्मिक हो जाने में अधार्मिक लोगों का हाथ नहीं है, इसमें इन धार्मिक लोगों की उपेक्षा है जो जीवन के प्रति पीठ करके खड़े हो गये। अब आने वाले भविष्य में धार्मिक व्यक्ति अगर जीवन के प्रति पीठ करता है, तो उस व्यक्ति को हम पूरे अर्थ में धार्मिक नहीं कह पायेंगे।

गांधी के बाद भारत में एक नया युग प्रारंभ होता है और वह नया युग यह है

कि धर्म जीवन के प्रति भी रस लेगा, जीवन के समस्त पहलुओं पर धर्म भी अपना निर्णय देगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति दिल्ली की यात्रा करे, इसका यह अर्थ भी नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति सक्रिय राजनीति में खड़ा हो जाय। लेकिन इसका अर्थ यह जरूर है कि धार्मिक व्यक्ति राजनीति के प्रति उपेक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, क्योंकि राजनीति पूरे जीवन को प्रभावित करती है। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं लेकिन आँखें रहते देश को रोज अंधकार में जाते हुए देखना भी असंभव है। धार्मिक आदमी की उतनी कठोरता और जड़ता मैं नहीं जुटा पाता हूं। देश रोज-रोज, प्रति दिन नीचे उतर रहा है। उसकी सारी नैतिकता खो रही है, उसके जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुन्दर है, जो भी सत्य है, वह सभी कलुपित हुआ जा रहा है। इसके पीछे जानना और समझना जरूरी है कि कौनसी घटना काम कर रही है और चूंकि मैंने कहा कि गांधी के बाद एक नया युग प्रारम्भ होता है, इसलिए गांधी से ही विचार करना जरूरी है। गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे लेकिन गांधी के आसपास जो लोग इकट्ठे हुए थे वे धार्मिक नहीं थे और इससे हिन्दुस्तान के भाग्य के लिए एक खतरा पैदा हो गया। गांधी राजनीतिज्ञ नहीं थे। गांधी के लिए राजनीति आपद् धर्म थी, तत्काल आवश्यकता थी। गांधी का मूल व्यक्तित्व नैतिक था। विवशता थी कि वे राजनीति में खड़े थे, लेकिन उस राजनीति में भी उनके प्राणों को वह राजनीति कहीं भी स्पर्श नहीं कर सकी थी। उससे वैसे ही दूर थी जैसा कमल पानी से दूर होता है। लेकिन उनके आसपास जो लोग इकट्ठे थे वे राजनीतिज्ञ थे, वे नैतिक लोग नहीं थे। राजनीति उनका प्राण थी। गांधी के साथ रहने की वजह से धर्म और नीति उनका आपद्-धर्म बन गयी थी। नैतिकता उनके लिए मजबूरी थी। गांधी के साथ चलना था तो नैतिकता की विवशता उन्हें उठानी पड़ी। गांधी के लिए राजनीति लाचारी थी। उनके अनुयायियों के लिए स्थिति उल्टी थी। उनके लिए नैतिकता मजबूरी थी। गांधी के लिए राजनीति बाहर बाहर थी। अंतर में नीति थी। उनके अनुयायियों के लिए राजनीति भीतर थी। नीति बाहर बाहर थी। फिर जैसे ही सत्ता आयी, एक क्रांतिकारी उलटफेर हो गया। सत्ता आते ही गांधी का जो आपद् धर्म था––राजनीति––वह विलीन हो गया। गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गये और उनके अनुयायियों का जो आपद् धर्म था, नीति, वह विलीन हो गयी, वे शुद्ध राजनीतिज्ञ हो गये। सत्ता के आते ही गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गये और उनके अनुयायी शुद्ध राजनीतिक व्यक्ति हो गये और उन दोनों के बीच जमीन-आसमान का अंतर हो गया। एक इतनी बड़ी खाई हो गयी जो आजादी के पहले कभी भी नहीं थी। झूठी आजादी के पहले गांधी और गांधी के अनुयायी के बीच दूरी बहुत कम थी।

ही सही, लेकिन अनुयायी के आसपास नैतिकता की एक पर्त थी और झूठी ही सही, गांधी के आसपास राजनीति का एक आवरण था। इस कारण बीच में एक सेतु था, एक सम्बन्ध था। सत्ता आने पर यह सेतु टूट गया और इस सेतु का टूट जाना गांधी को भी दिखायी पड़ गया। और गांधी ने कहा, अब कांग्रेस की कोई भी जरूरत नहीं। उसे लोक सेवक दल में परिवर्तित हो जाना चाहिए। क्योंकि गांधी की पैनी आंखों से यह दिखायी पड़ना कठिन नहीं हुआ कि अब यह जो राजनीतिक संस्था खड़ी रह जाएगी, तो यह राष्ट्र को नर्क की यात्रा करा देगी। बीस साल में उसने नर्क की यात्रा करा ही दी है। गांधी, जिसकी आवाज हम चालीस वर्षों से सुनते थे, अचानक सत्ता रूपान्तरित हो जाने पर, सत्ता हस्तान्तरित हो जाने पर अनुभव करने लगे कि मेरी कोई आवाज नहीं सुनता है। मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा अब चलन नहीं रहा। गांधी ने यह कहा कि पहले मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीना चाहता था, लेकिन अब मेरी इच्छा वह भी नहीं रह गयी। यह थोड़ा विचारणीय है, गांधीवादी के ऊपर इससे बड़ा और कोई आरोप नहीं हो सकता, और कोई बड़ा अपराध नहीं हो सकता है। गोडसे के ऊपर गांधी के मारने का अपराध छोटा है, इस अपराध के मुकाबले। गांधी जिनके साथ लड़े और जिनके लिए लड़े, जीत हो जाने पर गांधी को यह कहना पड़े कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी अब कोई सुनता नहीं, अब मुझे ज्यादा जीने की इच्छा नहीं होती--क्या यह गोडसे से भी बड़ी हत्या नहीं है? गोडसे ने जो गोली मारी वह तो परमात्मा की इच्छा के बिना गोडसे नहीं मार सकता था। और शायद गांधी को इससे सुन्दर मृत्यु मिल भी नहीं सकती थी। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाले लोगों ने गांधी को जिस बुरी तरह से निराश और हताश किया, वह अति आश्चर्यजनक है। और वे ही सारे लोग गांधी के मर जाने के बाद बीस वर्षों से गांधी का जय जय गान और गांधी का गुणगान कर रहे हैं। वे ही कहते हैं कि गांधी पर विचार नहीं करना है, सिर्फ प्रशंसा करनी है।

वे ऐसा क्यों कहते हैं?

वे भलीभाँति जानते हैं कि गांधी की आलोचना शीघ्र ही गांधीवादियों की आलोचना बन जायेगी। इसलिए गांधी की आलोचना मत करो, ताकि पीछे छिपे हुए गांधीवादी की आलोचना सम्भव न हो सके। गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है। इस खेल को गांधी की आलोचना और विचार के बिना नहीं तोड़ा जा सकता और इसीलिए गांधीवादी एकदम भयभीत हो उठा। मैंने थोड़ी-सी बातें कहीं और महीने भर से मैं इधर लौटा हूँ। मुझे पता चला है कि महीने भर से सिवाय इसके कोई और बात नहीं है पत्रों में, चर्चाओं में, घर में, गाँवों में। एक

ही बात है। इतनी आतुरता से उसने उत्सुकता क्यों ली है? वह इतनी तीव्रता से मेरे ऊपर क्यों टूट पड़ा? उसका कारण स्पष्ट है। गांधी की आलोचना अन्ततः गांधीवादी की आलोचना बन जायेगी। और गांधी तो आलोचना के बाद और निखरकर निकल आयेंगे, जैसे सोना आग से निकल आता है। लेकिन गांधीवादी के प्राण निकल जानेवाले हैं। वह नहीं बच सकता है। उसके प्राण को खतरा है, गांधी को कोई खतरा नहीं है। गांधी को क्या खतरा हो सकता है? गांधी जैसे सच्चे आदमी को खतरे का कोई सवाल नहीं। आलोचना से खतरा सदा झूठे आदमियों को होता है और उन झूठे आदमियों की कतार गांधी के नाम पर खड़ी हो गयी है। हमेशा जहां सत्ता होती है, जहां पद होता है वहां बेईमान और चोरों की कतार इकट्ठी हो जाती है। यह हो ही जायेगी। गांधी के साथ जो लोग थे आजादी की लड़ाई में, वह धीरे-धीरे बिखरकर अलग होते चले गये। नयी शकलें पीछे से आनी शुरू हो गयीं। ये जो नये लोग आये थे उन नये लोगों को सत्ता से प्रेम था। वे सत्ता के लिए आये थे और देश में राजनीति के नाम पर सिवाय सत्ता की होड़ के और कुछ भी नहीं हो रहा है। उनमें से किसीको इस बात की चिन्ता नहीं कि देश कहां जा रहा है और कहां जायेगा। उनको एक ही बात की चिन्ता है कि उनकी सत्ता, उनका पद, उनका सम्मान, उनकी शक्ति किस तरह बनी रहे। वे इसी विचार में चिन्तित, लीन, और परेशान हैं। सारे देश का क्या हो रहा है, इससे कोई मतलब नहीं है। बड़ा सवाल अपने-अपने पद को बचा रखने का है। गांधी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि जिस सेना को उन्होंने खड़ा किया था वह इस तरह की धोखेबाज साबित हो सकती है। लेकिन वह धोखेबाज साबित हो गयी। और उसमें एक भूल गांधी की भी थी और वह भूल समझ लेना जरूरी है, अन्यथा हम उस भूल को आगे भी दोहरा सकते हैं।

वह भूल यह थी कि गांधी ने कभी इस बात की चिन्ता न की कि ये जो लोग हमारे आसपास इकट्ठे हैं, इनके जीवन में कोई धार्मिक किरण उतरी है। इनके जीवन में कोई परमात्मा का स्पर्श है, इनके जीवन में सत्य की भी कोई गहरी आकांक्षा पैदा हो रही है, इनके जीवन में कोई ध्यान है, कोई समाधि है, इनके जीवन में आत्मा से जुड़ने का कोई मार्ग, कोई द्वार खुल गया है। नहीं, इसकी उन्होंने चिन्ता नहीं की। वे केवल सत्य और अहिंसा की वैचारिक बातें करते रहे। उनके आसपास का आदमी सत्य और अहिंसा को विचारपूर्वक स्वीकार करता रहा, लेकिन जो विचारपूर्वक स्वीकार होता है, वह जरूरी रूप से आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो जाता है। विचार बाहर ही रह जाते हैं, भीतर नहीं आते। भीतर तो निर्विचार जाता है। विचार भीतर नहीं जाता। विचार तो बाहर रह जाता है। गांधी समझाने

की कोशिश करते रहे सत्य अच्छा है, अहिंसा अच्छी है, अपरिग्रह अच्छा है। वह सब समझाते रहे। जो उन्हें अच्छा दिखायी पड़ता था उन्होंने लोगों को समझाया और जिन्होंने समझा उन्होंने सुना। ठीक समझ में आया और उन्होंने थोड़ा-बहुत उस तरह का आचरण करने का प्रयास भी किया; लेकिन ध्यान रहे एक आचरण आत्मा से पैदा होता है, एक आचरण बाहर से थोपा जाता है। जो आचरण बाहर से थोपा जाता है वह आचरण जब तक हाथ में शक्ति न हो तब तक टिक सकता है। शक्ति के आते ही नष्ट हो जाता है। जो आचरण हम ऊपर से थोपते हैं, वह आरोपित जो होता है। वैसा व्यक्तित्व, अभिनय जो होता है, वह ऊपर से थोपा हुआ होता है। वह प्राणों तक गहरा तो नहीं होता, कपड़ों की तरह बाहर होता है। यह तभी तक हमारे साथ रह सकता है, जब तक इसको टूटने का प्रतिकूल अवसर न मिल जाय। और जैसे ही प्रतिकूल अवसर मिलेगा, यह कचरा बह जायेगा, ये कपड़े बह जायेंगे और भीतर का नंगा आदमी साफ हो जायेगा। नैतिक आदमी, जो धार्मिक नहीं है सिर्फ नैतिक है, उसके हाथ में सत्ता जाना हमेशा खतरनाक है। सत्ता में जाते ही नीति बह जायेगी और अनैतिक आदमी प्रकट हो जायेगा। लेकिन गांधी स्वयं भी नैतिक व्यक्ति ही थे। वे निरंतर धार्मिक होने के प्रयास में रत थे। लेकिन वह हो नहीं पाया। उनका प्रयास अथक् था। लेकिन धार्मिक होना मात्र प्रयास की बात नहीं है। वह तो दर्शन, अनुभूति और समाधि का परिणाम है। अंततः तो वह प्रज्ञा का विस्फोट है, आचरण का अभ्यास नहीं। लेकिन गांधी जिनसे प्रभावित थे--रस्किन, थोरो, टालस्टॉय या राजचन्द्र--वे सभी आचरणवादी थे। शायद जीवन के अंतिम काल में गांधी के तांत्रिक प्रयोगों से ऐसा लगता है कि जीवन भर की दमनवादी नैतिकता की व्यर्थता का बोध उन्हें भी हो गया था। लेकिन तब तक बहुत देर हो गयी थी और फिर अपनी ही नैतिकता के जाल से ऊपर उठना आसान नहीं है। फिर भी गांधी की नैतिकता में एक सचाई थी। वह उनकी स्वेच्छा से की गयी यात्रा थी। किंतु उनके शिष्यों के संबंध में तो यह भी नहीं कहा जा सकता है। अनुयायी तो सदा अंधे होते हैं। असल में जो अंधा नहीं होना चाहता है, वह अनुयायी भी नहीं होता है। अनुयायियों ने तो सिर्फ अनुकरण ही किया था। उन्होंने तो बस उधार वस्त्र ही पहन लिये थे। गांधी की आचरण-वादिता का भी मैं समर्थक नहीं हूं। मैं तो सदा अंतस् की क्रांति से उत्पन्न सहज आचार का ही समर्थक हूं। असहज और अभ्यासजन्य का मैं विरोधी हूं। क्योंकि वह परमात्मा तक नहीं, बस एक पवित्र अहंकार तक ही ले जा सकता है। लेकिन फिर भी गांधी का आचरण स्वेच्छा से तो था ही। वह गलत था फिर भी किसी और के द्वारा थोपा हुआ नहीं था। पर उनके अनुयायियों की स्थिति तो और भी

बुरी थी। और अंततः देश उनके ही हाथ में पड़ गया। उनकी अहिंसा दमन थी, उनका सत्य दमन था। और इसलिए सत्ता ने सब बहा दिया। अहिंसा सहज हो तो उसे पालन करने की कोई जरूरत ही न हो। पालन हमें उसे ही करना पड़ता है जिसके विपरीत हमारे भीतर मौजूद होता है। जिस आदमी को ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है, उसके भीतर काम-वासना मौजूद होती है, अन्यथा पालन किस चीज का करेंगे? जिस आदमी को सत्य का पालन करना पड़ता है, उसके भीतर झूठ की लहर उठती रहती है। संयमी आदमी जिसे हम कहते हैं, नैतिक आदमी, वह ऊपर कुछ होता है, भीतर ठीक उल्टा होता है। और अगर प्रतिकूल स्थिति आ जाय तो जो भीतर है वही सच्चा साबित होगा। जो बाहर है वह सच्चा साबित होनेवाला नहीं है। बाहर बहुत कमजोर चीजें हैं, भीतर असली प्राण है। धार्मिक मनुष्य भीतर से रूपान्तरित होता है, नैतिक मनुष्य बाहर से। इसलिए नैतिक मनुष्य के हाथ में सत्ता पहुंच जाना हमेशा खतरनाक है।

गांधी और गांधीवादी नैतिक हैं। और इस रहस्य को नहीं समझ पाने के कारण देश अनिवार्यरूपेण एक ऐसी त्रुटि में पड़ गया, जिससे छुटकारा होने में बहुत समय लग सकता है। इस देश को, इस देश के प्राणों को आगे विकसित करने के लिए नीति और धर्म का बुनियानी फासला हमें समझ लेना चाहिए, अन्यथा कल हम जिसे फिर शक्ति देंगे, फिर सत्ता देंगे, फिर हम नैतिक आदमियों को सत्ता दे सकते हैं। सत्ता में पहुंचने से हर तरह का नैतिक आदमी चाहे वह किसी पार्टी का हो, इसी तरह का सिद्ध होगा जिस तरह गांधी का आदमी सिद्ध हुआ है। इसमें अंतर नहीं पड़ेगा। चाहे वह समाजवादी हो, चाहे वह साम्यवादी हो। अगर उसका ारा आचरण ऊपर से थोपा हुआ है और उसके प्राणों से कोई सचाई नहीं उठी , तो वह सत्ता में पहुंचकर एकदम रूपान्तरित हो जायेगा। महल के बाहर वह आदमी बहुत सेवक मालूम पड़ता था, महल के भीतर जाकर वह शासक हो जायेगा। महल के बाहर वह कहता था, मैं विनम्र हूं, आपके चरणों का दास हूं। महल के भीतर पहुंचकर वह आपको पहचान नहीं सकेगा कि आप कौन हैं और भीतर कैसे आ गये हैं। तो यह होगा। अगर भारत को सच में ही सत्य का, समता का, स्वतन्त्रता का एक समाज और एक देश निर्मित करना है तो हमें यह जान लेना जरूरी है कि भारत में जिनके हाथ में सत्ता जानी हो उन लोगों के आमूल व्यक्तित्व के रूपान्तरण की दिशा में कुछ काम होना जरूरी है। गांधी वह काम कर सकते थे। शायद गांधी को ख्याल नहीं आ सका। उन्होंने केवल नैतिक शिक्षा दी। साथ में अगर उन्होंने योग की शिक्षा की भी चिन्ता की होती, समाधि और ध्यान की भी चिन्ता की होती, अगर उन्होंने सिर्फ रामधुन न करवायी होती, साथ में

समाधि और ध्यान के भी गहरे प्रयोग चालीस वर्ष किये होते, तो इस भारत का भाग्य एक स्वर्ण-भाग्य बन सकता था। लेकिन वह नहीं हो सका। और आज भी वह नहीं हो रहा है।

मैं देख रहा हूं कि इस देश को ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, एक ऐसे बड़े आन्दोलन की जरूरत है, जो आन्दोलन ध्यान और समाधि के मार्ग से सत्ता के द्वार तक पहुंचता हो। तो हम इस देश को सुन्दर बना सकेंगे, नहीं तो नहीं बना सकेंगे। भारत की कल्पना बहुत पुरानी है। बहुत बार यूनान में भी प्लेटो ने यह कल्पना की थी कि कब ऐसा समय होगा कि दार्शनिक राज्य कर सकेंगे। गांधी के साथ आशा बंधी थी कि शायद दुनिया में पहली बार दार्शनिकों का राज्य भारत में आ जायेगा। लेकिन गांधी के पीछे आनवाले लोगों ने सारी आशा पर पानी फेर दिया। नहीं, दार्शनिकों का राज्य नहीं बन सका। न बनने का कारण यह है कि हम दार्शनिक ही बनाने में समर्थ न हो पाये--ऐसे लोग जिनके पास अन्तर्दृष्टि हो। अब फिर सत्ता की होड़ चल रही है और सत्ता के बाजार में जितने लोग हैं, उनके पास, किसीके पास कोई अन्तर्दृष्टि नहीं है। उनके पास कोई प्रभु की तरफ जाने वाला मार्ग नहीं है। उनके पास प्रकाश की कोई भीतरी किरण नहीं है। बस वह सोच-विचार और सत्ता की होड़ में लगे हैं। और तब आप हैरान हो जायेंगे यह बात जानकर कि आप एक को बदलेंगे दूसरे से और आप बदल भी नहीं पायेंगे और दूसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा, तीसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा।

मैं सुनता था, कोई मुझे कहता था कि अमेरिका में कुछ मनोवैज्ञानिकों ने एक अध्ययन किया। उन्होने अध्ययन किया कि एक पति यदि अपने जीवन में आठ स्त्री को तलाक दे देता है या एक पत्नी अपने जीवन में आठ पतियों को तलाक देकर बदलती है तो हर बार उसे पहले से बेहतर पति या पत्नी मिलता है या नहीं। और अध्ययन से एक अजीब नतीजे पर पहुंचे। वह इस नतीजे पर पहुंचे कि जो पति पहली पत्नी को खोज कर लाता है, दो साल बाद उसे तलाक देता है, दूसरी स्त्री को खोजकर लाता है, महीने दो महीने में पाता है कि उसने फिर पहली जैसी स्त्री ही वापस खोज ली। पत्नी बदलती है पति को जिन्दगी में आठ बार, लेकिन हर बार यह अनुभव होता है कि हर आदमी पुराना जैसा ही पति सिद्ध होता है। थोड़े दिन तक नयी रौनक रहती है, फिर पुराना आदमी उसके भीतर से प्रकट हो जाता है। तो मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे।

यह प्रश्न व्यक्तियों के बदलने का नहीं है। जब तक एक पत्नी अपने मन को नहीं बदल लेती तो जिस मन से उसने पहले पति को चुना था, उसी मन से वह दूसरे पति को चुनेगी और तब इस बात की सम्भावना है कि दूसरा पति भी उन्नीस-बीस

पहले पति जैसा ही सिद्ध होगा। क्योंकि चुनाव करने वाला मन वहीं का वहीं है। वह आठ पति चुन ले तो हर बार वह करीब-करीब उन्नीस-बीस एक जैसे पति चुन लेगी। पति तो बदल जायेंगे, लेकिन चुनाव करने वाला मन, चुनाव करने वाला मस्तिष्क तो वही है। अगर भारत के समाज को नयी दृष्टि और नया मार्ग देना हो, तो हिन्दुस्तान में जो लोग सत्ताधिकारियों को चुनते हैं, उनके मन का बदल जाना जरूरी है, अन्यथा हम रोज पुराने जैसे लोग चुन लेंगे। फिर नये कपड़े होंगे, नयी शक्लें होंगी, नया झंडा होगा, नये नारे होंगे, लेकिन फिर वही आदमी चुन लेंगे जैसे हमने पहले चुने थे। और जैसे ही सत्ता में वे लोग जायेंगे, वे फिर पुराने आदमी साबित होंगे। उनमें कोई अंतर नहीं पड़ने वाला है।

गांधी का नैतिक आंदोलन सफल नहीं हो सका। आजादी मिली, लेकिन आजादी जिस कामना से मांगी गयी थी, वह कामना असफल हो गयी। स्वतंत्रता उपलब्ध हुई, लेकिन स्वतंत्रता से जो हमने चाहा था, जो सपना देखा था, वह सपना पूरा नहीं हो पाया। हां, कुछ लोगों का सपना पूरा हुआ। बृहत्तर भारत का सपना पूरा नहीं हुआ। अंग्रेज पूंजीपति के हाथ से सत्ता भारतीय पूंजीपति के हाथ में चली गयी। भारतीय पूंजीपति का सपना जरूर पूरा हुआ। लेकिन भारतीय पूंजीपति भारत नहीं है। दूसरे पूंजीपति पछताते होंगे कि जब गांधी जिन्दा थे तो हमने भी सेवा क्यों नहीं कर ली। उनके एक शिष्य पूंजीपति के पास, भारत जब आजाद हुआ तो मैंने सुना, सम्पत्ति तीस करोड़ की थी। बीस साल आजादी के बाद उनके पास सम्पत्ति तीन सौ तीस करोड़ की है। बीस वर्षों में तीन सौ करोड़? शास्त्रों में लिखा है सत्संग का फल होता है। इससे सिद्ध होता है कि सत्संग का फल होता है। मुझे पहले शक होता था कि सत्संग से फल होता है कि नहीं। अब शक नहीं होता। तीस करोड़ रुपये से तीस सौ करोड़ बीस वर्षों में! सम्भवतः दुनिया के इतिहास में किसी एक परिवार ने इतने थोड़े समय में इतना धन संग्रह नहीं किया है। प्रत्येक वर्ष पन्द्रह करोड़ रुपये! प्रत्येक महीने सवा करोड़ रुपये! प्रत्येक दिन चार और पांच लाख रुपये! पूरे बीस वर्ष! लेकिन बृहत्तर भारत गरीब-से-गरीब होता चला गया। एक तरफ सम्पत्ति इकट्ठी होती चली गयी है, दूसरी तरफ दीनता और हीनता बढ़ती चली गयी है। हिन्दुस्तान के गांव में गरीब से पूछो, वह कहता है कुछ फर्क नहीं पड़ा। इससे तो ब्रिटिश राज्य अच्छा था। कोई भी नहीं कहना चाहता यह कि गुलामी अच्छी थी, लेकिन जब कोई गरीब कहता है कि इससे तो गुलामी अच्छी थी तो उसकी पीड़ा हम समझ सकते हैं। गरीब भी स्वतन्त्र होना चाहता है। लेकिन स्वतंत्रता उसके लिए कुछ भी नहीं लायी। उसने भी सपने बांधे थे, उसने भी कल्पनाएं की थीं, उसने भी गोली खायी

थी, वह भी जेल गया था, लेकिन उसे पता नहीं था कि यह स्वतंत्रता एक तरह के पूंजीपति के हाथ से दूसरी तरह के पूंजीपति के हाथ में हस्तान्तरित हो जायेगी ।

गांधी को भी यह कल्पना नहीं थी । गांधी भी सोचते थे कि पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन हो जायेगा । अच्छे आदमी हमेशा अच्छी बातें सोचते हैं, लेकिन सभी अच्छी बातें सही सिद्ध नहीं होतीं । गांधी भले आदमी थे । भले आदमी को कोई बुरा आदमी नहीं दिखाई पड़ता है, लेकिन ध्यान रहे बुरे आदमी को कोई भला आदमी नहीं दिखायी पड़ता है। बुरे आदमी को सब बुरे आदमी दिखायी पड़ते हैं, भले आदमी को सब भले आदमी दिखायी पड़ते हैं। लेकिन इन दोनों की दृष्टियां अधूरी हैं और त्रुटिपूर्ण हैं । दोनों सब्जेक्टिव दृष्टियां हैं, आब्जेक्टिव नहीं हैं । जो है उसको नहीं देखते । जो हम देख सकते हैं उसको देखते हैं । गांधी को ख्याल था कि हृदय-परिवर्तन हो जायेगा और गांधीवादी अभी भी कहे चले जाते हैं कि हृदय-परिवर्तन हो जायेगा । लेकिन जरा देखें तो, चालीस वर्ष की मेहनत के बाद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाया । और अगर खुद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाये तो गांधीवादी कितने हजार वर्षों में कर पायेंगे ? इसका सोच जरूरी है, इसका विचार जरूरी है । गांधी नहीं कर पाये, गांधी जैसा महिमावान् व्यक्ति पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाया, बल्कि पूंजीपति ने उसकी आड़ से भी फायदा उठाने की कोशिश की है । तो यह गांधीवादी कैसे हृदय-परिवर्तन कर पायेंगे ? नहीं, यह हृदय-परिवर्तन की बात के पीछे शोषण के तंत्र को चलाये रखने का आयोजन चल रहा है । हृदय-परिवर्तन नहीं होगा । फिर हम चोरों का हृदय-परिवर्तन करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं करते । हम नहीं कहते कि पुलिस नहीं रखेंगे । चोर के लिए दण्ड नहीं देंगे । हम चोर का हृदय-परिवर्तन करेंगे । नहीं, चोर के हृदय-परिवर्तन की फिक्र हम नहीं करते । हम कहते हैं कि कोई चोरी करेगा तो दण्ड पायेगा, लेकिन शोषक के हृदय-परिवर्तन की फिक्र हम करते हैं । हम कहते हैं कि शोषक को दण्ड नहीं देना है, उसका हृदय-परिवर्तन करना है । और बड़े मजे की बात यह है कि चोर बहुत छोटा चोर है, शोषक बहुत बड़ा चोर है ।

मैंने सुना है कि चीन में एक अद्भुत् विचारक हुआ और एक बार वह राज्य का कानून-मंत्री हो गया । कानून-मंत्री होते ही पहले दिन अदालत में बैठा तो एक चोर का मुकदमा आया । एक आदमी ने चोरी की थी । चोरी पकड़ गयी, सामान पकड़ गया । उस आदमी ने स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी की है । साहूकार भी खड़ा था और कहता था कि इसे दण्ड दें, इसने चोरी की है । उस विचारक ने कहा दण्ड जरूर दूंगा और उसने फैसला लिखा, उसने कहा कि ६ महीने चोर

को सजा और ६ महीने साहूकार को सजा । साहूकार ने कहा, तुम पागल हो गये हो ? दुनिया में कभी साहूकार को सजा हुई है ? जिनकी चोरी हुई है उनको सजा दोगे ? यह कौनसा कानून है, यह कहां का न्याय है । उस विचारक ने कहा, जब तक सिर्फ चोरों को सजा मिलती रहेगी, तब तक दुनिया में चोरी बन्द नहीं हो सकती, क्योंकि तुमने गांव की सारी सम्पत्ति एक कोने में इकट्ठी कर ली है । अब गांव में चोरी नहीं होगी तो और क्या होगा । एक आदमी के पास गांव की सारी सम्पत्ति इकट्ठी हो जाय तो गांव के आदमी कितने दिन तक धर्मात्मा रह सकेंगे ? चोरी होगी । चोरी उनकी मजबूरी हो जायेगी । तो मैं तो ६ महीने की सजा चोर को दूंगा और ६ महीने की सजा तुम्हें भी । क्योंकि चोर पीछे पैदा हुआ है, शोषण पहले है । तब पीछे चोरी है । पूरा हिन्दुस्तान चोर होता चला जा रहा है और सारे नेता चिल्लाते हैं कि चोरी नहीं होनी चाहिए, बेइमानी नहीं होनी चाहिए, भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए । भ्रष्टाचार होगा, चोरी होगी, बेईमानी होगी, बढ़ेगी, क्योंकि सबसे बड़ी चोरी और बेईमानी शोषण की जारी है और देश गरीब होता चला जा रहा है। नहीं, गरीब देश चोरी से नहीं बच सकता, बेईमानी से नहीं बच सकता, भ्रष्टाचार से नहीं बच सकता, रिश्वत से नहीं बच सकता ।

जब सम्पत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाती है तो सम्पत्तिहीन कितने दिन नैतिक हो सकता है और कितने दिन तक धार्मिक हो सकता है ? प्राण बचाने को भी उसे अनैतिक होना पड़ता है । और नेता भी भलीभांति जानते हैं कि न चोरी रुकेगी, न बेईमानी रुकेगी । बीस वर्षों में वह रोज बढ़ती चली गयी है। बीस वर्ष में हमारे व्यक्तित्व का सारा महत्त्वपूर्ण हिस्सा नीचे गिरता चला गया है और हमारा नंगापन प्रकट होता चला गया । लेकिन हम कहे चले जाते हैं कि नीति की शिक्षा दो स्कूलों में और कालेजों में, धर्म की शिक्षा दो, गीता पढ़ाओ, राम राम जपाओ । लेकिन सब बेईमानी की बातें हैं । गीता पढ़ाने से, राम राम जपाने से कोई चोरी बन्द नहीं होगी, भ्रष्टाचार बन्द नहीं होगा, अनीति बन्द नहीं होगी । इस देश में अनीति उस दिन बन्द होगी, जिस दिन इस देश में शोषण का तंत्र टूटेगा । उसके पहले अनीति बन्द नहीं हो सकती है ।

लेकिन शोषण के तंत्र को तोड़ने की बात करें तो वह गांधी की दोहाई देते हैं । वे कहते हैं कि गांधी कहते थे हृदय-परिवर्तन करना होगा, वे कहते हैं कि हम गांधी के प्रतिकूल नहीं जा सकते । गांधी कहते हैं हृदय-परिवर्तन करना होगा । गांधी भले आदमी थे । वह सोचते थे कि हृदय-परिवर्तन हो जाना चाहिए। वह सोचते थे, जैसा उनका हृदय था वैसा सबका हृदय होगा । वैसा सबका हृदय नहीं है । हृदय-परिवर्तन नहीं होगा । हृदय-परिवर्तन करना पड़ेगा, होगा नहीं । और करना

पड़ने का मतलब यह है कि देश के तंत्र को, देश की व्यवस्था को एक निर्णय लेना होगा कि शोषण हमें समाप्त करना है और किसी भी मूल्य पर समाप्त करना है। जैसे हम चोरी समाप्त करते हैं, बेईमानी को तोड़ने की कोशिश करते हैं, हत्यारे की कोशिश करते हैं रोकने की, उसी तरह हमें शोषण को भी रोकना पड़ेगा। तभी यह बन्द होगा।

कल ही मैं किसीसे बात कर रहा था तो उन्होंने कहा कि आपके भी बहुत से पूंजीपति मित्र हैं, उनमें से किसीको आपने बदला अब तक ? मैंने उनसे कहा कि मैं तो मानता नहीं कि बदला जा सकता है। इसलिए बदलने का सवाल नहीं। फिर मैं यह भी नहीं मानता कि पूंजीपति को बदलना है। पूंजीपति को नहीं बदलना है, पूंजीवाद को बदलना है। पूंजीपति को बदलने से क्या होगा, कुछ भी नहीं हो सकता। बड़ा तंत्र है पूंजीवाद का। पूंजीपति, कसूर भी नहीं है उसका। कोई मजदूर भी शिकार है इस तंत्र का, पूंजीपति भी शिकार है इस तंत्र का। वह दोनों ही इसके शिकार हैं। इस बड़े तंत्र के जो पूंजीवाद है। इस बड़ तंत्र के, पूंजीवाद के तंत्र से पूंजीपति भी उतना ही परेशान और पीड़ित है हिस्सा है, जितना कि मजदूर और दलित पीड़ित हिस्सा है। एक दलित और पीड़ित है। सम्पत्ति के न होने से, एक पीड़ित और परेशान है सम्पत्ति के होने से और चारों तरफ निर्धन की कतार जुड़ी होने से। एक आदमी अगर एक गांव में स्वस्थ हो, और सारा गांव बीमार हो तो सारा गांव बीमारी से परेशान रहेगा और वह आदमी जो अकेला स्वस्थ रह गया है, स्वास्थ्य से परेशान रहेगा कि अब बीमार न पड़ जाऊं, अब बीमार न पड़ जाऊं। चारों तरफ बीमारी ही बीमारी है और यह बीमारी सब मिलकर मुझे बीमार न कर दें। वह स्वास्थ्य का सुख नहीं ले पायेगा, जहां चारों तरफ टी० बी०, कैंसर और घाव भरे लोग घूम रहे हों। एक गांव के सारे लोग सड़क पर सो रहे हों और एक आदमी महल बना ले तो महल में आराम से सो सकेगा ? कैसे सो सकेगा ? द्वार पर पहरेदार रखना पड़ेगा। पहरेदार के उपर पहरेदार रखना पड़ेगा, क्योंकि पहरेदार भी रात को घुस सकता है महल में और छुरा भोंक सकता है। कैसे सो सकेगा आराम से ! और इतनी दीनता, दरिद्रता उसके आसपास फैल जाय तो उसके चित्त पर कोई परिणाम होगा कि नहीं ? वह आदमी है या पत्थर ? उसके चित्त को शांति कैसे हो सकेगी ? मैं बड़े से बड़े धनपति को जानता हूं। वे भी मेरे पास आते हैं और कहते हैं मन को शान्त करने का कोई उपाय बताइये--मन बड़ा अशान्त रहता है। मन अशान्त नहीं रहेगा तो क्या होगा ? जहां हमारे चारों तरफ इतना दुःख होगा, इतना दारिद्र्य, इतनी दीनता होगी, हम कब तक अपने महल में यह विश्वास

रख सकेंगे कि सब ठीक चल रहा है ? यह कैसे हो सकेगा और वह नीचे जो बढ़ती हुई दीनता और दरिद्रता है उसकी लहरें, उसकी आहें, उसके रुदन, उसके उपद्रव रोज-रोज महलों से टकरायेंगे। रोज महलों की दीवारें घबरायेंगी कि कब गिर जायँ, कब गिर जायँ। उनके बचाने में उसके प्राण लग जाते हैं। जिसको हम पूंजीपति कहते हैं वह भी पीड़ित है, वह भी विक्टिम है।

पूंजीवाद के दो विक्टिम हैं। एक वह जिनके पास पूंजी नहीं है और एक वे जिनके पास पूंजी है। जिस दिन पूंजीवाद जायेगा उस दिन गरीब गरीबी से मुक्त होगा और अमीर अमीरी से मुक्त होगा और ये दोनों रोग हैं। इसलिए पूंजीवाद के जाने का मतलब पूंजीपति का अहित नहीं है। पूंजीवाद के जाने पर ही वह जो पूंजीवाद से पीड़ित व्यक्तित्व है वह भी मुक्त होकर मनुष्य का व्यक्तित्व बन सकेगा। जब तक कोई पूंजीपति है, तब तक मनुष्य नहीं हो पाता। तब तक आदमी नहीं हो पाता। तब तक वह खिल नहीं पाता, तब तक वह सहज नहीं हो पाता, तब तक इतने ज्यादा गलत समाज में इतने गलत ढंग से उसे जीना पड़ता है कि वह इतने टेंशन में, इतने तनाव में, इतनी अशांति में जीता है कि वह कैसे सहज हो सकता है ? वह सहज नहीं हो पाता।

मैं कलकत्ते में एक घर में ठहरा हुआ था। उस घर में पति और पत्नी के अतिरिक्त कोई भी नहीं था। बस वे दो ही प्राणी थे। बड़ा था महल। सब थीं सुविधाएं। सब कुछ था उनके पास। रात बारह बजे जब मैं थक गया दिनभर के बाद और सोने जाने लगा तो उस घर के गृहपति ने कहा, क्या आप अब सो जायेंगे। मैंने कहा, अब बारह बज गये, क्या अब भी मैं जागता रहूं ? उन्होंने कहा, ठीक है आप सो जाइये, लेकिन मैं सोचता था कि थोड़ी देर और बातें करते। मैंने कहा, प्रयोजन ? "मुझे रातभर नींद नहीं आती"। क्या हो गया तुम्हें, नींद क्यों नहीं आती। इतनी अच्छी गद्दियां तुम्हारे पास हैं। इन पर तो किसीको नींद न भी आ रही हो, जागते आदमी को बैठा दो तो नींद आ जाय। इतना अच्छा भोजन तुम्हारे पास है। इतना बड़ा बगीचा तुम्हारे पास है, इतनी ताजी और ठंडी हवाएं तुम्हारे पास हैं। तुम्हारी खिड़कियों से आकाश के तारे दिखायी पड़ते हैं, चांद झांकता है, तुम्हें नींद नहीं आती है ? वह कहने लगे, "नींद, नींद मुझे बहुत वर्षों से नहीं आती है। बस, दिन-रात चिन्ता ही चिन्ता। आज इस फैक्टरी में गड़बड़ है। कल उस फैक्टरी में गड़बड़ है। वहां कम्युनिस्ट उपद्रव कर रहे हैं, वहां सोशलिस्ट उपद्रव कर रहे हैं, वहां ऊपर सरकार गड़बड़ किये चली जाती है, यहां नीचे सब गड़बड़ ही है। गड़बड़ में कैसे नींद आये ?"

इसको आप समझ रहे हैं, यह आदमी बहुत सुख में है। यह पूंजीपति बहुत

सुख में है तो आप भूल में हैं, बिल्कुल भूल में है। संपत्ति सुख ला सकती थी, लेकिन पूंजीवाद के कारण संपत्ति सुख नहीं ला पाती है। संपत्ति उस दिन सुख बनेगी जिस दिन संपत्ति वितरित होगी, समान होगी। संपत्ति उस दिन सुख बन जायगी। अभी संपत्ति भी दुःख है। हीनता तो दुःख है ही, संपत्ति भी अभी दुःख है। संपत्ति जिस दिन वितरित होगी और समाज में जब दीन-हीन, रुग्ण और अपाहिज का वर्ग विलीन होगा और जब मनुष्य मनुष्य की भांति एक समानता के तल पर खड़ा होगा, तब समाज से बेईमानी मिटेगी, चोरी मिटेगी, गुण्डा-गर्दी मिटेगी, नहीं तो नहीं मिट सकती है। यह सारी-की-सारी समाज-व्यवस्था जो हमें दिखायी पड़ती है, यह बाई प्रोडेक्ट है, शोषण की, एक्सप्लॉयटेशन की और ऊपर के नेता चिल्लाये चले जाते हैं कि समझाओ बच्चों को। बच्चे कैसे नीति समझेंगे? नहीं समझ सकते, लेकिन वे दलील देते हैं कि गांधीजी कहते थे हृदय-परिवर्तन करना है, इसलिए कोई और जबरदस्ती नहीं करनी है। लेकिन तुम हैदराबाद में पुलिस-एक्शन ले सकते हो, तुम रजवाड़ों को मिटाने के लिए जोर-जबरदस्ती कर सकते हो। तब तुम्हें ख्याल नहीं आया कि राजाओं का हृदय-परिवर्तन करना चाहिए, लेकिन शोषण के मामले में एकदम हृदय-परिवर्तन और अहिंसा की ऊंची-ऊंची बातें याद आने लगती हैं। इसका मतलब है कुछ जरूर। तुम बोलते जरूर हो, पर वाणी तुम्हारी नहीं है, वाणी शोषक की है जो तुम्हारी पीठ के पीछे खड़ा है और बोल रहा है। यह वाणी तुम्हारी नहीं है गांधीवादियो! यह तुम नहीं बोल रहे हो, तुम्हारी जबान बिकी हुई है, तुम्हारी बुद्धि बिकी हुई है। तुम्हारे पीछे जो खड़ा है वह बोल रहा है और कह रहा है कि अगर यह वाणी नहीं बदली तो अगले इलेक्शन में मुश्किल में पड़ जाओगे। यह धन-धंधा फिर हमसे नहीं मिलने वाला है। ये पैसे फिर हमसे नहीं मिलेंगे। तो वाणी सत्ता से जो बोल रही है वह सम्पदाशाली की वाणी है। सत्ता से बोलने वाले के पास अपनी अब कोई जबान नहीं है और वह अपनी इस झूठी जबान को गांधीवाद का नाम देकर सुन्दर, सत्य दिखलाना चाहता है। नहीं, चाहे गांधीजी ने कहा हो, चाहे किसीने भी कहा हो कि हृदय-परिवर्तन से कुछ होगा, वह नहीं हो सकता है। गांधीजी के चालीस साल का अनुभव यह कहता है कि वह नहीं हो सकता है और अब तो गांधी जैसा व्यक्ति भी हमारे पास नहीं है जो हृदय परि-वर्तन के लिए जोर डाल सके। अब कौन डालेगा, कौन बदलेगा हृदय, कैसे बदलेगा?

विनोबा ने इधर कोशिश की थी एक। गांधी के पीछे गांधी से मिलता-जुलता कोई आदमी था, तो वही है। उन्होंने कोशिश की थी। बहुत श्रम किया, लेकिन

कोई परिणाम नहीं निकला। जमीन मिली, दान मिला। इस देश में दान तो हजारों वर्षों से मिलता है। दान कोई नयी बात नहीं है। दान भी मिला, जमीन भी मिली, गरीब को थोड़ी-बहुत राहत भी मिली होगी; लेकिन शोषण का तंत्र इस तरह थोड़े ही टूटता है? जिस आदमी ने दान दिया एक तरफ जमीन का, वह जाकर घर फिर योजना बना रहा है कि जितनी जमीन हाथ से निकल गयी है, जल्दी से कैसे वापस उतनी जमीन कर ली जाय। इससे शोषण-तंत्र थोड़े ही बदलेगा कि एक आदमी ने दान दिया, आठ-दस लाख का और घर जाकर उसने योजना बनायी कि अगले वर्ष दस लाख कैसे वापस कमा लूं! उसका हृदय थोड़े ही बदल गया है। रुपया देने से थोड़े ही यह समाज बदलेगा। यह समाज तो बदलेगा इस तंत्र के बदलने से। इसकी सिस्टम, इसकी व्यवस्था बदलने से। विनोबा ने, दस-पन्द्रह साल दौड़-धूपकर बेचारे ने पैदल भाग-भाग कर गांव-गांव अपना जीवन नष्ट किया। कोई परिणाम नहीं हुआ। हां, जमीन मिली, और वह सर्वोदयवादी कहते हैं कि वही परिणाम है, देखो, इतने लाख एकड़ जमीन मिल गयी। जमीन के मिलने से कुछ भी होनेवाला नहीं है। इस पूंजीवाद के तंत्र को, शोषण के तंत्र को जमीन के बंट जाने से, कुछ थोड़ी-सी जमीन गरीब को मिल जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बल्कि पूंजीपति, पूंजीशाही और गांधीवादी इससे खुश हैं कि विनोबा ने थोड़ी-बहुत जमीन बांटी। थोड़ा-बहुत दान दिलवाया। उससे गरीबी को थोड़ी राहत मिली। राहत मिलने से हिन्दुस्तान में आनेवाली समाजवादी क्रान्ति में रुकावट पड़ती है। जितनी राहत मिलती है, उतनी क्रांति में रुकावट पड़ती है। जितना गरीब को ऐसा लगता है कि बहुत अच्छा है, सब ठीक है, किसी तरह चल रहा है, थोड़ी जमीन भी मिल गयी है एक-दो एकड़, अब कुछ हो जायगा, अब कुछ हो जायगा, उतना ही वह जो सर्वहारा है—वह जिसके पास कुछ भी नहीं है—वह क्रांति करने के लिए तत्पर नहीं हो पाता। विनोबा ने भला काम किया, लेकिन उन्हें पता नहीं कि वे हिन्दुस्तान की शोषण की व्यवस्था के हाथ में खेल गये। इसीलिए दिल्ली के सत्ताधीश, करोड़पति, उनके चरणों में जाकर बैठते हैं और नमस्कार करते हैं। वह नमस्कार विनोबा को नहीं, वह नमस्कार क्रांति में पड़ती हुई रुकावट को है। बीस साल के भूदान-आंदोलन ने भारत की क्रांति में बाधा पहुंचायी है, समय को लंबा किया है। शोषण का तंत्र नहीं टूटा, लेकिन शोषण का तंत्र सहने योग्य बन जाय, उसकी थोड़ी-सी कोशिश भर हो पायी है और कुछ भी नहीं हो सका। नहीं, इस तरह के कामों से कुछ भी नहीं हो सकता है। हिन्दुस्तान को अपनी पूरी समाज-व्यवस्था अनिवार्यरूपेण बदल लेना जरूरी है। और न हृदय-परिवर्तन के लिए प्रतीक्षा करने की जरूरत है, न किसी और बात की

प्रतीक्षा करने की जरूरत है—सिवा सत्ताधिकारी के जिसके पास अपनी वाणी नहीं है। जब तक इस देश का लोकमत, जब तक इस देश की लोकात्मा, जब तक इस देश के पूरे प्राण इस बात को नहीं समझेंगे कि हम सब चाहे गरीब, चाहे अमीर, एक ही शोषण-तंत्र के परेशान और पीड़ित अंग हैं और शोषण के तंत्र को हटा देना है तभी कुछ हो सकेगा। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आयेगा, लेकिन समाजवाद से सर्वोदय आ सकता है। समाजवाद के बाद ही सर्वोदय आ सकता है, क्योंकि सर्वोदय का अर्थ है सबका उदय, सबका हित। सबका हित तभी हो सकता है जब सबका हित समान हो। अभी गरीब और अमीर का हित समान नहीं है। इसलिए सर्वोदय नहीं हो सकता है। उनके हित प्रतिकूल हैं, विरोधी हैं, शत्रु के हित हैं। उनके हित में समानता नहीं है, इसलिए अभी समान हित का उदय नहीं हो सकता। अभी सर्वमंगल नहीं हो सकता। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आयेगा। सर्वोदय की जितनी बातें चलेंगी, समाजवाद के आने में उतनी देर होगी। उतना समय जाया होगा। लेकिन समाजवाद आये तो सर्वोदय निश्चित आ जायेगा। सर्वोदय समाजवाद की छाया है। जैसे ही शोषण का तंत्र टूटता है, तब सबका समान हित रह जाता है। तब वर्गीय हित नहीं रह जाते। तब श्रेणीगत हित नहीं रह जाते। तब क्लास इंट्रेस्ट नहीं रह जाता। तब हम सब समान हो जाते हैं और तब इस देश का उदय हो सकता है। इस देश का श्रम भी तभी जागेगा, उत्साह भी तभी जागेगा। प्राण श्रम करने के लिए, सृजन करने के लिए तभी आतुर होंगे जब प्रत्येक को ऐसा मालूम पड़ेगा कि देश हमारा है। अभी प्रत्येक को ऐसा नहीं मालूम पड़ता। और यह जानकर आप हैरान होंगे कि जब तक प्रत्येक को यह अनुभव न हो जाय कि देश हमारा है, दीनतम को यह अनुभव न हो जाय कि देश मेरा है—यह उसे कब अनुभव होगा ? यह उसे तभी अनुभव होगा कि देश की जो सम्पदा है—वह मेरी है। देश की सम्पदा कुछ लोगों की ओर देश मेरा, यह बात बड़ी गड़बड़ है। यह नहीं हो सकता। सम्पदा कुछ लोगों की और देश मेरा ! देश का मतलब क्या है ? देश का मतलब है, देश की सम्पदा, देश का मतलब है देश का सब कुछ। भूमि, आकाश, और हवा, सम्पत्ति और मनुष्य की शक्ति और सब कुछ। मेरा है यह देश तभी कह सकता हूं बल से, जब इस देश की सारी सम्पत्ति में मैं भागीदार हूं, समान हूं। लेकिन जब मैं समान भागीदार नहीं हूं तो यह देश मेरा कैसे है। यह दस-पांच लोगों का होगा देश। यह सत्ताधारियों का होगा देश। यह दीन का, दरिद्र का देश कैसे है ? और इसलिए इस देश में एक देश का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है, एक समाज का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है। इस देश में एक अटूट एकता पैदा नहीं हो पा रही है।

वह पैदा नहीं होगी। यह इंटीग्रेशन की सारी बातचीत चलेगी और कुछ भी नहीं होगा। इंटीग्रेशन, एकता, इस देश में समाजवाद का परिणाम होगी। उसके पहले नहीं हो सकती।

ये बातें मैं कहता हूं तो वे कहते हैं कि मैं गांधीजी का दुश्मन हूं। गांधीजी का मैं दुश्मन हूं या दोस्त ? अगर गांधीजी की ही कहीं भी आत्मा होगी तो वह सोचती होगी कि जब आप ताली बजायें समाजवाद के लिए तो आकाश में अगर वे कहीं भी होंगे तो उन्होंने भी ताली बजायी होगी। आपकी ताली के साथ उनकी ताली रही होगी। और अगर मेरी आवाज उन तक पहुंचती होगी तो उन्हें लगता होगा कि मैं कह रहा हूं कि यह देश तब होगा खुशहाल, जब प्रत्येक व्यक्ति इस देश की सम्पत्ति का समान मालिक होगा। तो गांधी खुश होंगे या दुःखी होंगे ? तो मैं गांधी के पक्ष में बोल रहा हूं या विपक्ष में बोल रहा हूं, यह मैं आप पर छोड़ देता हूं। मैं गांधीवादी के विरोध में बोल रहा हूं। गांधी के विरोध में नहीं बोल रहा हूं।

एक बार कराची में एक बड़ी कांफ्रेंस में कांग्रेस के कुछ लोगों ने गांधी का विरोध किया। काले झंडे दिखाये और नारा लगाया कि 'गांधीवाद मुर्दाबाद'। गांधी मंच पर थे, माइक पर थे। उन्होंने उत्तर में कहा कि ध्यान रहे, गांधी मर जायेगा, लेकिन, गांधीवाद अमर रहेगा। मैं उनसे कहना चाहता हूं, गलत बात कह दी उन्होंने। लेकिन अब तो कोई उपाय नहीं उनसे शब्द बदलवाने का, लेकिन फिर भी निवेदन तो कर देना चाहिए। मेरा वश होता तो उनसे मैं कहता, लेकिन आज तो कह देना चाहिए। मैं कहना चाहता हूं, गांधी अमर रहेंगे, गांधीवाद नहीं। गांधी की प्रतिभा, गांधी का व्यक्तित्व, गांधी की करुणा, गांधी का प्रेम, गांधी की अहिंसा, गांधी का वह महिमामंडित स्वरूप अमर रहेगा, गांधीवाद नहीं। क्योंकि गांधीवाद के अमर रहने का मतलब गांधीवादी का अमर रहना है। गांधीवाद की जय नहीं, लेकिन गांधी की जय जरूर। मैं गांधी का शत्रु नहीं हूं, लेकिन गांधीवाद देश को गड्ढे में ले जाता है। अब गांधीवाद से मुक्त हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। जितने शीघ्र हम मुक्त हो सकें और जितने शीघ्र हम वर्गविहीन और शोषणमुक्त समाज को जन्म दे सकें, उतना हितकर है, उतना उचित है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष के भारत का स्वप्न पूरा हो सकेगा। भारत के ऋषियों ने, भारत के सन्तों ने, सपना ही यह देखा है कि एक पृथ्वी ऐसी हो जहां सब बन्धु हों, लेकिन शोषण से भरी पृथ्वी बंधुओं की पृथ्वी कैसे हो सकती है ? एक सपना देखा है कि प्रत्येक आदमी की आत्मा समान है, बराबर है, लेकिन आत्मा समान और बराबर कब होगी ? जब तक शरीर को समान अवसर

और सुविधा नहीं मिलती, तब तक आत्मा की समानता का कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है। आत्मा तभी प्रकट होती है जब शरीर हो। और आत्मा की समानता भी उसी दिन प्रकट होगी जिस दिन शरीर के जगत् में समानता की व्यवस्था हो, अन्यथा आत्मा की समानता भी कैसे प्रकट हो सकती है? करोड़ों-करोड़ों वर्ष से जिसने जीवन को सोचा है, जाना है उसके प्राणों में एक ही प्रार्थना रही है सारे लोगों को समान शांति, समान आनन्द उपलब्ध हो। लेकिन वह कैसे उपलब्ध होगा? अभी तो जीवन की समान जरूरतें भी उपलब्ध नहीं हैं, जीवन को विकसित करने का समान अवसर भी उपलब्ध नहीं है। कितने गांधी झोंपड़ों में मर जाते होंगे और पैदा नहीं हो पाते होंगे। कितने बुद्ध और महावीर शूद्रों के घर में जन्मते होंगे और क ख ग भी नहीं सीख पाते होंगे। कितने ऋषि और मुनि पैदा नहीं हो सके, क्योंकि जहां वे पैदा हुए वहां ज्ञान की कोई खबर, कोई हवा नहीं पहुंच सकी। हजारों वर्ष से भारत में शूद्र हैं। शूद्र बुद्ध की हैसियत को उपलब्ध हुआ? एक शूद्र राम बना? एक शूद्र कृष्ण बना? एक शूद्र पतंजलि बना? नहीं बन सका। क्या शूद्र के घर आत्माएं पैदा नहीं होती, प्रतिभाएं पैदा नहीं होती? अंग्रेजों की कृपा थी। एक डाक्टर अम्बेडकर पहली बार पैदा हुआ। एक कीमत का आदमी शूद्रों में। एक आदमी पूरे इतिहास में! यह भी पैदा नहीं होता। इसे मौका मिला इसलिए पैदा हुआ। कितनी आत्माओं को मौका नहीं मिला, जो पैदा हो सकती थीं। कितना अनन्त उपकार हुआ है जगत् का। कुछ थोड़े से लोग अवसर पाते हैं। उन थोड़े से लोगों के थोड़े से बच्चे आगे बढ़ पाते हैं। और सब तो सड़ता है, मर जाता है। उसके जीवन में न कोई ऊंचाई पैदा होती, न कोई शिखर छूता, न कोई संगीत बजता, न कोई प्रभु के मंदिर की घंटी सुनाई पड़ती है। यह कब तक चलेगा?

लोग समझते हैं कि समाजवाद धर्म का विरोधी है। गलत है यह बात। समाजवाद से ज्यादा धार्मिक और कोई आन्दोलन जगत् में नहीं है। लोग समझते हैं कि समाजवाद ईश्वर का विरोधी है। गलत है यह बात। जब जमीन पर पूरा समाजवाद होगा तभी हम पहली दफा ईश्वर की तरफ उठ सकेंगे, ईश्वर की तरफ आंख उठा सकेंगे। समाजवाद के बाद ही धार्मिक जीवन का ठीक-ठीक समुचित विकास होता है। लेकिन गांधीजी के सामने स्वतंत्रता का सवाल बड़ा था। समाजवाद का सवाल बड़ा नहीं था। स्वभावतः परिस्थिति नहीं थी। गांधीजी के सामने सवाल था कि देश परदेशी गुलामी से कैसे मुक्त हो। अगर वे जिन्दा रहते तो शायद वे आर्थिक गुलामी से, देशी गुलामी से भी मुक्त करने के लिए कोई प्रयास करते। लेकिन वे जिन्दा नहीं रहे। आजादी जरूरी थी उस वक्त।

इसलिए उन्होंने जो भी चिन्तन और विचार विकसित किया, वह मूलतः स्वतंत्रता को ध्यान में रखकर था। उनका चिन्तन समानता को ध्यान में रखकर समुचित रूप से विकसित नहीं हो सका। लेकिन उन पर ही हम रुक जायेंगे या आगे बढ़ेंगे? स्वतंत्रता आ गयी। जैसी भी समझिये क्लीव, इम्पोटेंट, अधूरी, जैसी भी आ गयी। अब इस स्वतंत्रता के अवसर का उपयोग क्या हो सकता है? एक ही उपयोग हो सकता है कि समानता भी आये और ध्यान रहे जब तक समानता पूरी तरह न आये तब तक स्वतंत्रता सिर्फ धोखा होती है, काम चलाऊ होती है, क्योंकि जिनके पास पेट में रोटी भी नहीं है, उनके लिए स्वतंत्रता का क्या अर्थ है, क्या उपयोग है, क्या प्रयोजन है? जिनके पास वस्त्र भी नहीं है उनके लिए स्वतंत्रता शब्द सुनाई तो पड़ता है, लेकिन उसका कुछ अर्थ, प्रयोग नहीं होता कि स्वतंत्रता यानी क्या है। जब तक आर्थिक समानता न हो तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता आत्मवंचना है। सेल्फ डिसेप्शन है। लेकिन गांधी के सामने वह सवाल नहीं था। हमारे सामने वह सवाल है और हमें गांधी के आगे सोचना होगा, आगे विचार को ले जाना होगा। देश ने एक आजादी की लड़ाई लड़ी थी। अब देश को फिर एक लड़ाई लड़नी है समानता की। नहीं किसी और से लड़नी है, लड़नी है अपने ही तंत्र से, अपने ही शोषण की व्यवस्था से। नहीं किसी व्यक्ति से, समाज की व्यवस्था से। और यह व्यवस्था बदलें तो ही गांधी की आत्मा प्रसन्न हो सकती है। लेकिन गांधीवादियों ने गांधी को कहां-कहां बिठा रखा है, पता है? पुलिस थाने में, हेड कांस्टेबल के पीछे गांधी की तस्वीर लगी है। पुलिस थाने में बैठा है हेड कांस्टेबल, मां-बहन की गालियां दे रहा है और पीछे राष्ट्रपिता की तस्वीर लगी है। अदालत में जहां सब तरह की बेईमानी चल रही है, रिश्वतखोरी चल रही है वहाँ गांधी की तस्वीर लगी है। तुमने गांधी को कोई पंचमजार्ज समझ रखा है? तुम गांधी के साथ अच्छा सलूक कर रहे हो? तुमने गांधी को कहां बिठा दिया है? लेकिन तुम्हें गांधी से कोई मतलब नहीं। तुम्हें स्वयं से मतलब है। तुम गांधी की तस्वीर खड़ी करके अपने को छिपाने की कोशिश कर रहे हो। लेकिन कितनी देर तक इस देश की जनता को धोखा दिया जा सकेगा? तुम तो नहीं छिप सकोगे। खतरा यह है कि कहीं गांधी का सम्मान समाप्त न हो जाय। गांधीवादियों से गांधी को बचा लेना बहुत जरूरी है, अन्यथा गोडसे उनको नहीं मार पाया, गांधीवादी उनको मार डाल सकते हैं। ●

तीसरा प्रवचन

अतीत के मरघट से मुक्ति

आज ही एक पत्र में मुझे स्वामी आनन्द का एक वक्तव्य पढ़ने को मिला। और बहुत आश्चर्य भी हुआ, बहुत हैरानी भी हुई। स्वामी आनन्द से किसीने पूछा कि मैं जो कुछ गांधीजी के सम्बन्धमें कह रहा हूं उसके सम्बन्ध में आपके क्या ख्याल हैं? स्वामी आनन्द ने तत्काल कहा, उस सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं। शिष्टाचार वश, चाहे उनके मुंह से ऐसा निकल गया हो, क्योंकि यह कहने के बाद वे रुके नहीं और जो कहना था वह कहा। ऊपर से ही कह दिया होगा कि कुछ नहीं कहना चाहता हूँ, किन्तु भीतर आग उबल रही होगी वह पीछे से निकल आयी, तो रुकी नहीं। आश्चर्य लगा मुझे कि पहले कहते हैं कि कुछ भी नहीं कहना चाहता और फिर कहते भी हैं! आदमी ऐसा ही झूठा और प्रवंचक है। शब्दों में कुछ है, भीतर कुछ है। कहता कुछ है, कहना कुछ और चाहता है। उन्होंने जो कहा वह और भी हैरानी का है। स्वामी आनन्द मुझसे भलीभांति परिचित थे। लेकिन, ऐसी जानकारी भी उनकी होगी, यह मुझे पता नहीं था। उन्होंने कहा, नहीं कुछ कहना चाहता हूं और फिर कहा, कि अगर एक कौआ मस्जिद पर बैठकर अपने को मुल्ला समझने लगे, तो इसमें कुछ कहने की बात नहीं। स्वामी आनन्द से मैं परिचित हूं। लेकिन मुझे इसका परिचय नहीं था कि उनका कौवों से परिचय है। कौवे मस्जिद पर बैठकर क्या सोचते हैं? स्वामी आनन्द किसी जन्म में, अगर कौवा न रहे हों, तो उन्हें पता लगाना मुश्किल है। एकदम कठिन है। जरूर किसी जन्म में कौवा रहे होंगे, किसी मस्जिद के ऊपर बैठकर मुल्ला होने की सोची होगी। अन्यथा कौवे क्या सोचते हैं, कैसे पता लगा सकते हैं? कौवा की बुद्धि मुल्ला होने से ऊपर जा भी नहीं सकती। कौवों को छोड़कर शायद ही कोई और मुल्ला होना चाहता हो। जो मुल्ले हैं वे कौवे की बुद्धि से ज्यादा नहीं होते। और फिर मुल्ला होने का स्वामी आनन्द को पता नहीं कि मुल्ला होना कब सम्भव होता है। जब कोई किसी पन्थ को मानता हो, सम्प्रदाय को मानता हो, वाद को मानता हो, किसी गुरु को मानता हो तो मुल्ला हो सकता है। न तो मैं किसी पंथ को मानता रहा, न किसी वाद को मानता रहा, न किसी गुरु को मानता रहा, न किसी

सम्प्रदाय को मानता रहा। मेरा मुल्ला होना बिल्कुल मुश्किल है। लेकिन स्वामी आनन्द मुल्ला हैं और कहना चाहिए कठमुल्ला हैं।

गांधीवाद को एक धर्म बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधीवाद को एक चर्च बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधी स्वयं जिंदगी भर यह चिल्ला-चिल्ला-कर कहते रह गये कि मेरी मूर्तियां मत बना देना, मेरा मंदिर न बना देना, लेकिन वह साज़िश जारी है, उनकी मूर्तियां बनायी जा रही हैं। अभी मेरे एक मित्र ने गांधी-पुराण भी लिख डाला है। और उसमें इस बात की व्यवस्था की है कि जैसे और पुराण हैं, विष्णु पुराण आदि, वैसा गांधी को अवतार बताने की कोशिश की है। बहुत शीघ्र गांधी के पास एक धर्म खड़ा करने की कोशिश चल रही है। स्मरण रहे, जब भी किसी व्यक्ति के पास धर्म खड़ा हो जाता है, तो व्यक्ति तो मर ही जाता है। मुल्लाओं और पंडितों की बन आती है। जीसस के पास ईसाई-पादरी इकट्ठा हैं और जीसस की आवाज को दुनिया तक नहीं पहुंचने देते हैं। महावीर के पास महावीर के गंधर्व इकट्ठे हैं। और महावीर की आवाज, सच्ची आवाज, सत्य की आवाज दुनिया तक नहीं पहुंचने देते। जैसे ही किसी व्यक्ति के आसपास संगठन बनता है, सम्प्रदाय बनता है, सत्य की हत्या हो जाती है। मैंने सुना है, एक बार किसी आदमी को सत्य मिल गया था, तो शैतान के शिष्यों (डिसाइपुल्स ऑफ डेविल) ने भागकर शैतान को, अपने गुरु को खबर दी कि पता है, तुम आराम से सो रहे हो। एक आदमी को सत्य मिल गया है। हमारी सल्तनत डगमगा रही है। कुछ करना चाहिए, शीघ्रता से। क्योंकि अगर आदमियों को सत्य मिल जायगा तो शैतान का क्या होगा? शैतान ने कहा कि क्या करोगे, अब सत्य मिल चुका। तुम पहले कहां थे, क्यों नहीं आकर पहले ही कहा, हम सत्य मिलने में बाधा डालते। अब तो एक ही रास्ता है। अब तुम जाओ शीघ्रता से, गांव-गांव और डंडे और घंटी लेकर पीटो, गांव-गांव में यह आवाज फैला दो कि एक आदमी को सत्य मिल गया है। जो भी चाहे चले। शैतान के शिष्यों ने कहा, इससे क्या होगा? शैतान ने कहा; पंडित और मुल्ले सुन लेंगे यह और जहां भी उन्हें पता चल गया कि किसी आदमी को सत्य मिल गया है तो पंडित और मुल्ले वहाँ जाकर अड्डा जमा लेंगे। और एजेण्ट बन जायेंगे। जनता और सत्य के बीच पंडित से बड़ी दीवाल और कोई भी नहीं खड़ी की जा सकती है। तुम जाओ और जल्दी गांव-गांव खबर कर दो। मैंने और सुना है कि शैतान के शिष्य गये और उन्होंने गांव-गांव में खबर कर दी। हजारों लोग वहां चलने लगे। उस सत्य के खोजी के आसपास पंडितों की दीवाल खड़ी हो गयी। व्याख्याकारों की, टीकाकारों की। वे कहने लगे कि क्या चाहते हो, हम बताते हैं।

वह आदमी, वह सत्य का खोजी, उस भीड़ में दब गया। मंदिर बन गया वहां एक, उसकी लाश पर। हजारों लोग पूजा करते हैं उस आदमी की। उसकी किताबें हैं। लेकिन उस आदमी को, जिसको सत्य मिला था, उसकी कोई किरण किसी तक अभी तक नहीं पहुंच पायी है। दुनिया में सत्यकी हत्या का एक ही उपाय है। सत्य की हत्या करनी हो तो शीघ्रता से सम्प्रदाय बना दें। सम्प्रदाय बना कि सत्य की हत्या हो जाती है। मैं तो मुल्ला नहीं हो सकता, मुश्किल है, क्योंकि मैं किसी सम्प्रदाय को नहीं मानता हूं। लेकिन स्वामी आनन्द मुल्ला हो सकते हैं। गांधी का एक सम्प्रदाय बनाये हुए हैं। अन्यथा मेरी बातों से इतनी पीड़ा और परेशानी की जरूरत न थी। वे मेरी बातों का उत्तर दे, मेरी बातों की चर्चा करें। मैं जो कहता हूँ वह गलत हो सकता है। मुझे गलत बतायें, समझायें। लेकिन, सुनने से उसमें क्रोध की क्या जरूरत है? क्रोध वहां आता है जहां वेस्टेड इंटरेस्ट हों। जहाँ न्यस्त कोई स्वार्थ हो तब क्रोध आता है, अन्यथा क्रोध की क्या जरूरत है? अन्यथा यह चिल्लाने की क्या जरूरत है कि मेरी किताबों को आग लगा दो। यह कहने की क्या जरूरत है कि मुझे आंने मत दो, सभा मत होने दो।

ये सारी बातें सुनकर, मुझे दादा धर्माधिकारी एक घटना सुनाते थे, वह याद आयी। वे कहते थे कि मैं पंजाब में था और पंजाब के सरदारों की सभा में बड़ा शोरगुल होता था। जहां दादा को बोलने के लिए बुलाया था। जो अध्यक्ष हैं उन्होंने डंडा उठाकर टेबल पर पटका और कहा, चुप होते हो किं नहीं। डंडे से सिर तोड़ दूंगा। चुप हो जाओ। वह सभा एकदम चुप हो गयी। फिर डंडा बजाकर उन्होंने कहा कि अब सुनो। अब दादा धर्माधिकारी अहिंसा पर भाषण देंगे। तो, दादा कहते थे, मैंने अपनी खोपड़ी ठोंक ली और मैंने कहा, क्या खाक भाषण दूंगा, अहिंसा पर। डंडा बताकर कहता है वह आदमी चुप हो जाओ, नहीं तो खोपड़ी तोड़ देंगे और फिर अहिंसा पर भाषण होता है। बड़ा सही अहिंसावादी रहा होगा। गांधी की आलोचना करके अहिंसावादियों की असलियत का मुझे भी पहली दफा पता चला है कि उनकी असलियत क्या है! हाथ में उनके भी डंडे हैं और अगर अहिंसा की बात नहीं मानेंगे आप, तो वे डंडे से आपको अहिंसा की बात समझायेंगे। लेकिन, यह देश अब बहुत दिन इस तरह के धोखे में नहीं रखा जा सकता है। बहुत लम्बी कथा है, इसके धोखे की। बहुत लम्बी यात्रा है इसके दुर्भाग्य की। विचार के लिए आज तक इस देश में परिपूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिली। इसलिए हम जगत् में पिछड़ गये हैं और पीछे पड़ गये हैं। हिन्दुस्तान ने कभी भी तीव्र विचार के लिए आमंत्रण नहीं दिया। कभी भी विचारपूर्ण विद्रोह के लिए साहस नहीं दिखाया। नये विचार से भय दिखाया,

घबराहट दिखायी। हमेशा उसको मानना चाहा कि जो हमारी पुरानी किताब में लिखा है, वही सही होना चाहिए। पुराने ने कुछ सही होने का ठेका ले लिया है! पुराना ही सत्य होना चाहिए, जैसे कि सत्य को जानने के लिए आगे कोई पैदा नहीं होगा। वे सब लोग पीछे पैदा हो चुके हैं, जिन्होंने सत्य जाना। अब आगे लोग व्यर्थ पैदा हो रहे हैं। उन्हें कोई अनुभव नहीं होगा, कोई सत्य नहीं होगा। यह हमारी प्रवृत्ति है–सबकुछ पीछे हो चुका, सत्य भी हो चुका, स्वर्णयुग भी हो चुका, सब तीर्थंकर, सब महावीर, सब पैगम्बर, सब पीछे हो चुके। अब आगे कुछ होने को नहीं है। इस विचार ने ही कि सब विचार किया जा चुका, अब आगे कुछ विचार करने को नहीं है--भारत के विचार की हत्या कर दी। नहीं, बहुत विचार करने को शेष है, बहुत नयी खोज होने को शेष है, बहुत से सत्यों का उद्घाटन होगा, जो अब तक नहीं हुआ। बहुत से पर्दे उठेंगे, बहुत से रहस्य उद्घाटित होंगे। जीवन समाप्त नहीं हो गया है। जीवन की यात्रा जारी है। लेकिन, अगर कोई कौम ऐसा समझ ले कि सब हो चुका, अब उस पर कोई विचार नहीं करना है, आगे कुछ नया विचार हो नहीं सकता, तो उस कौम की अगर प्रतिभा नष्ट हो जाय तो इसमें क्या आश्चर्य है! भारत के पास अद्भुत प्रतिभा थी। आज भी प्रतिभा है, सोयी हुई है। लेकिन उसका नया अवतरण, नया विकास, नया उर्ध्वगमन उस प्रतिभा का नहीं हो पाता है, क्योंकि हमारी धारणा यह है कि अब नया कुछ होने को नहीं है। जब नया कुछ होने को नहीं है, तो नया नहीं हो सकेगा। क्योंकि हम जो विचार करते हैं, जो धारणा बनाते हैं वैसा ही हमारा जीवन हो जाता है। न तो महावीर पर रुक गये है हम, न कृष्ण पर और न गांधी पर रुकने की कोई जरूरत है। जिन्दगी रुकना जानती ही नहीं। लेकिन जहां-जहां गुरुडम खड़ी हो जाती है वहीं जीवन की धारा को बांध बनाकर रोकने की कोशिश की जाती है, कि बस यहीं, अब इससे आगे नहीं।

गांधी रुक जायेंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। मैं रुक जाऊंगा, जीवन तो नहीं रुकेगा। आप रुक जायेंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। यह मोह बिल्कुल पागल मोह है कि मैं रुकूं, उसीके साथ जीवन भी रुक जाय। यह बिल्कुल पागल मोह है, यह बिल्कुल ही विक्षिप्त मोह है। मैं रुक जाऊंगा, ठीक है, लेकिन जीवन तो आगे जायेगा, जीवन नये किनारे छुएगा और नये मार्ग चुनेगा। जीवन नया अनुभव करेगा। मेरे अनुभव के साथ जीवन सदा के लिए रुक जाय, यह जरूरी है, यह उचित है, यह योग्य है? मैं कोई जीवन हूं पूरा? महापुरुष भी पैदा होते हैं और विलीन हो जाते हैं। जीवन तो सतत चलता रहता है। लेकिन जिन समाजों के मन में यह धारणा बैठ जाती है कि हम रुक जायं अतीत पर, वे समाज भविष्य

की तरफ गति करना बन्द कर देते हैं। उनका जीवन 'स्टेगनेंट', रुका हुआ, अवरुद्ध हो जाता है—जैसे गंगा रुक जाय। रुका हुआ पानी गंदा हो जाता है। यह भारत का समाज इतना गंदा इसीलिए हो गया है। यह समाज रुका हुआ पानी है। रुके हुए समाज का फिर जीवन तो आगे नहीं बढ़ता। धूप पड़ती है, ताप पड़ता है, सड़ांध आती है, गंदगी बनती है, भाप बनकर पानी उड़ता है और कचरा पैदा होता है। और कुछ भी नहीं होता। कभी आपने तालाब को सागर तक पहुंचते देखा है? सरिताएं बहती हैं सागर तक। सरिताएं, जो कि भागती हैं अज्ञात की तरफ—खोज करती हैं अनजान की, अननोन की। डबरा, तालाब तो अपने में बन्द होकर बैठ जाता है और कहीं जाता ही नहीं। वह घेरे में घूमता रहता है। अपना वाद का घेरा है, उसीमें घूमता रहता है। फिर, वह सागर तक भी नहीं पहुंच पाता है और जो जल सागर तक न पहुंच पाये वह जल कभी भी असीम अनुभव को उपलब्ध नहीं हो पायेगा। जीवन भी अनन्त तक पहुंचने में है। व्यक्ति आयेंगे महान् से महान्। व्यक्ति आयेंगे और विलीन हो जायेंगे और जीवन की धारा आगे बढ़ती रहेगी। कोई महापुरुष अधिकारी नहीं है कि जीवन की धारा को अपने पास रोक ले। लेकिन, महापुरुष रोकना भी नहीं चाहते। महापुरुष तो चाहते हैं कि जीवन की धारा आगे बढ़े, लेकिन महापुरुषों के पास जो लघु मानव हैं, छोटे-छोटे आदमी इकट्ठे हो जाते हैं वे जीवन की धारा को रोकने की कोशिश करते हैं। क्योंकि, उनकी कीमत तभी तक है जब तक जीवन उनके महापुरुषों के पास रुका रहे। और अगर, जीवन आगे बढ़ गया और महापुरुष भूल गये तो इन जनों का क्या होगा जो आसपास बैठकर दूकान खोले हुए थे? इनका क्या होगा? इनकी दूकान तभी चलेगी, जब तक जीवन इनके महापुरुषों की लाश के पास रुका रहे।

भारत ने यह भूल बहुत कर ली है। आगे यह भूल नहीं की जानी है। भारत का सारा मस्तिष्क अतीतोन्मुख है, पीछे की तरफ देखता है। आगे की तरफ देखता ही नहीं। रूस के बच्चे चांद पर बस्तियां बसाने का विचार करते हैं और भारत के बच्चे? भारत के बच्चे रामलीला देखते हैं। कब तक हम रामलीला देखते रहेंगे? कितनी बार रामलीला देखी जा चुकी है? राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन कितनी बार? क्या हम यही करते रहेंगे? क्या हमारी चेतना एक वर्तुल में घूमती रहेगी? क्या हम आगे नहीं बढ़ेंगे? कोई नयी लीलाएं नहीं होंगी? कोई नये राम पैदा नहीं होंगे? कोई नया कृष्ण नहीं होगा? बस? पीछे और पीछे? भगवान् ने बड़ी भूल की है भारत के साथ! उसकी बड़ी कृपा होती, अगर वह भारतीयों की आंखें खोपड़ी में सामने की तरफ न लगाकर पीछे की तरफ लगाता। उससे उनको

बड़ी सुविधा होती। उससे हम निरंतर पीछे की तरफ देखने में समर्थ हो जाते। लेकिन, भगवान् बड़ा नासमझ है। हम उसकी नासमझी को बर्दाश्त थोड़े ही करते हैं? हम अपनी खोपड़ी पीछे की तरफ मोड़कर, पीछे की तरफ देखने लग जाते हैं। अगर कभी भारत ने अपनी कार बनायी, अभी तो पश्चिम की नकल की है हर बात में, तो हम कारों की लाइट पीछे की तरफ लगायेंगे, आगे कभी नहीं लगा सकते। क्योंकि आगे की कार तो पश्चिम की कार है। शुद्ध भारतीय कार में पीछे की तरफ लाइट होगी। चलना आगे है, वह तो ठीक है, लेकिन देखना तो पीछे है। जहां उड़ती धूल रह जाती है, उसे देखना है। जहां से रथ गुजर गये, उनकी उड़ती धूल रह जायगी। राम का रथ निकल चुका, महावीर का रथ निकल चुका, गांधी का रथ निकल चुका। कब तक हम उस धूल को देखते रहेंगे? कब तक उस धूल को पूजते रहेंगे? आगे नहीं बढ़ना है? और ध्यान रहे, जीवन जाता है सदा आगे की तरफ। जीवन कभी पीछे की तरफ नहीं लौटता है, नहीं लौट सकता है। कोई मार्ग नहीं है पीछे, पीछे सिर्फ स्मृति है। कोई मार्ग नहीं है पीछे। हम याद कर सकते हैं, पीछे जा नहीं सकते। समय में एक क्षण भी तो पीछे नहीं लौटा जा सकता। एक कदम भी तो हम पीछे नहीं जा सकते। जो समय का क्षण बीत गया, उसमें हम अब कभी भी नहीं जा सकते। वह सदा सदा को बीत गया। उसमें लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। वह सेतु गिर गया, वह मार्ग नष्ट हो गया। वहां हम कभी भी नहीं जा सकते। 'पास्ट में', अतीत में जाने का कोई द्वार ही नहीं है और जब अतीत में हम जा नहीं सकते तो हम एक ही काम कर सकते हैं। अतीत की स्मृति कर सकते हैं, याद कर सकते हैं। लेकिन ध्यान रहे, जितनी हमारी ऊर्जा अतीत की स्मृति में और याद में नष्ट होती है, उतनी ऊर्जा भविष्य में जाने के लिए कम पड़ती जाती है। जितनी हमारी दृष्टि अतीत से बंध जाती है, उतना ही हम आगे की तरफ देखने में असमर्थ हो जाते हैं। और यह भी ध्यान रहे, चलना आगे है और देखना अगर पीछे रहा, तो गड्ढे में गिरे बिना कोई उपाय नहीं रहेगा। गड्ढे में गिरना पड़ेगा। भारत सैकड़ों बार गड्ढे में गिरता रहा है। हजार बार गड्ढे में गिरा है। दुर्घटना की हमारी लम्बी कथा में और क्या है? कितनी गुलामी—कितनी दीनता—कितनी दरिद्रता! लेकिन हमारी आदत पीछे देखने की कायम—बरकरार—है। पीछे देखते हैं। आगे चलते हैं। गिरेंगे नहीं तो और क्या होगा?

एक ज्योतिषी यूनान में एथेन्स के पास एक गांव से गुजरता था। सांझ थी। चांद उगा होगा। आकाश में वह चांद को देखता था, तारों को देखता था तो एक गड्ढे में गिर पड़ा। आकाश की तरफ देख रहा था। जमीन का गड्ढा नहीं

दिखायी पड़ा था। एक बूढ़ी औरत ने उसे गड्ढे से निकाला। उसके दोनों पैर टूट गये थे। उसने बूढ़ी औरत को धन्यवाद दिया और कहा कि मां, बहुत बहुत धन्यवाद। मैं तेरी क्या सेवा कर सकता हूं। इतना मैं कहता हूं, शायद तुझे पता नहीं होगा, मैं यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी हूं। अगर तुझे चांद-तारों के सम्बन्ध में कुछ जानना हो तो मेरे पास आ जाना। उस बूढ़ी औरत ने कहा, पागल मैं तेरे पास चांद-तारों के सम्बन्ध में पूछने आऊंगी ? जिसे अभी जमीन के गड्ढे नहीं दिखायी पड़ते हैं उसके चांद-तारों को देखने का कोई भरोसा है ? उसका कोई विश्वास किया जा सकता है ? पहले, बेटे ! जमीन के गड्ढे देखने सीखो, फिर आकाश के चांद-तारे देखना। ठीक ही कहा उस बूढ़ी औरत ने। अभी जमीन का गड्ढा-दिखाई नहीं पड़ता हो तो चांद-तारों के ज्ञान का भरोसा क्या है ?

जिन्हें आगे हाथ-पैर दिखाई नहीं पड़ता वह हजारों मील पीछे की यात्रा की कथाएं दोहरा रहे हैं। इतिहास की धूल--बीत गये रथों के चक्कों के चिह्न, उन्हीं पर हम रुके हैं। दुर्भाग्य है, इसीलिए भविष्य में रोज टकरा जाते हैं। इसलिए भविष्य को हम निर्मित नहीं कर पाते। भविष्य का क्षण आ जाता है और हम बिल्कुल अनजान, बेहोश खड़े रह जाते हैं। जब क्षण आकर पकड़ लेता है, तब हम चौंक कर खड़े हो जाते हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि क्या करें ? हमारे ख्याल में नहीं आता। जब तक हम सोच नहीं पाते तब तक समय बीत जाता है। समय किसीकी प्रतीक्षा करता है ? समय रुका नहीं रहता है। जो उसकी पहले से तैयारी करते हैं, वे उस समय का उपयोग कर पाते हैं। जो उसके सामने बैठे रहते हैं, जब समय आ जाता है। हम उस तरह के लोग हैं कि घर में आग लग जाती है तब हम कुंआ खोदने बैठ जाते हैं। हम कहते हैं आग लगी है, अब कुंआ खोदना चाहिए। जब तक हम कुंआ खोद पाते हैं, तबतक घर कभी का जलकर राख हो जाता है। घर में आग लगी हो तो कुंआ तैयार होना चाहिए, तब आग बुझायी जा सकती है। लेकिन हमें फुर्सत कहाँ कि हम भविष्य के कुंए निर्मित करें ? हमें फुर्सत कहां, हमें ध्यान कहां ? हमारी कल्पना नहीं जाती, वहां तक। बस, पीछे और पीछे ! गांधी ने पुनः पीछे की दृष्टि हमें पकड़ा दी। गांधी कहने लगे, रामराज्य चाहिए। बड़ी अजीब बात है। राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन रामराज्य ? रामराज्य बिलकुल दूसरी बात है। गांधी को राम से बहुत प्रेम था, उचित ही है। राम जैसे व्यक्ति को प्रेम किया जा सकता है। प्रेम भारी रहा होगा। उनके रग रग में, रोम रोम में भर गया था। गोली लगी गोडसे की, तो, न तो मां की याद आयी, न पिता की याद आयी, न गांधीवादियों की याद आयी। याद आयी राम की। राम ! प्राणों के प्राण में वह आवाज घुस गयी होगी, वह प्रेम घुस

गया होगा। गोली प्राणों में पहुंची तो वहां राम के सिवाय कुछ भी नहीं पाया उसने। राम पर उनका बहुत प्रेम था और उसी प्रेम के वश वे रामराज्य की बातें करने लगे। लेकिन, राम से प्रेम ठीक है, रामराज्य से प्रेम खतरनाक बात है। रामराज्य पूंजीवाद से भी पिछड़ी हुई व्यवस्था है, सामन्तवाद है। रामराज्य भविष्य की समाज-योजना नहीं है। अतीत की, पिछड़े हुए, बीते हुए, जा चुके समाज की व्यवस्था है। रामराज्य नहीं लाना है हमें, लाना है भविष्य का राज्य। रामराज्य तो बीत गया। एक तो हम उसे लाना भी चाहें तो नहीं ला सकते। और हम ला भी सकते हों तो हमें कभी लाने का विचार भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि रामराज्य तो पिछड़ा हुआ, आज से भी बदतर समाज और समाज-व्यवस्था है। करोड़ों करोड़ों गुलाम हैं। स्त्रियों की इज्जत कितनी गयी होगी, वह सीता की इज्जत से पता चल जाता है। एक साधारण से आदमी की आवाज पर सीता को उठाकर फेंका जा सकता है जंगल में। साधारण स्त्री की क्या हैसियत रही होगी ? स्त्री की यह हैसियत है ! राम बहुत प्यारे हैं और यह ध्यान रहे, कि यह भूल हम हमेशा करते हैं। हम क्या भूल करते हैं, वह भूल हमें समझ लेनी चाहिए ताकि हम आगे न कर सकें। दो हजार साल बाद न तो मुझे कोई याद रखेगा, न आपको कोई याद रखेगा। लेकिन गांधी याद रह जायेंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे--कितना महान् व्यक्ति था गांधी, कि इतने महान् लोग गांधी के समाज के रहे होंगे। हम तो भूल जायेंगे। हमारी तो कोई रूपरेखा भी नहीं छूट जायेगी, हमारे तो कोई पद-चिह्न कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेंगे। हमारी तो कोई आकृति कहीं नहीं रह जायगी। हम कैसे जीते थे। हम किन वासनाओं से भरे हुए थे, किन क्रोधों से, किन घृणाओं से, किन हत्याओं से भरा हमारा जीवन था। सब विलीन हो जायेगा। हवा में धुंआ हो जायेगा। गांधी की प्रतिमा रह जायेगी। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे, गांधी का समाज कितना अच्छा रहा होगा। गलत बात सोच लेंगे वे। गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं थे, अपवाद थे। हम गांधी जैसे नहीं हैं। हमारा गांधी से कुछ लेना-देना नहीं है। हम गांधी से बिल्कुल उल्टे हैं। लेकिन, दो हजार साल बाद जिससे हम बिल्कुल उल्टे हैं उसी आदमी से हम जाने जायेंगे। हमारा युग गांधी-युग कहा जायेगा। हमें कहा जायेगा, गांधी-युग के लोग कैसे अद्भुत रहे होंगे। हमारा यह अनुमान झूठा है। राम बहुत प्यारे हैं, राम का समाज नहीं। बुद्ध बहुत प्यारे हैं बुद्ध का समाज नहीं। क्राइस्ट बहुत प्यारे रहे होंगे, क्राइस्ट का समाज नहीं। एक एक व्यक्तियों के आधार पर पूरे समाज का निर्णय लेने की भूल बहुत हो चुकी, आगे यह भूल नहीं होनी चाहिए। और फिर ध्यान रहे, हमें यह भी समझ लेना जरूरी है कि गांधी इतने बड़े महा-

पुरुष दिखायी पड़ते हैं—इसलिए कि गांधी अकेले हैं। अगर दस-बीस हजार गांधी भारत में हों तो मोहनदास कर्मचंद गांधी कौन हैं, जानना आसान न होगा। राम दिखायी पड़ते हैं हजारों साल के बाद, इसीलिए कि राम अकेले रहे होंगे। अगर हजार दो हजार राम जैसे सच्चे और अच्छे आदमी होते तो राम की याद रह जाती?

एक स्कूल में शिक्षक काले बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है, सफेद दीवाल पर क्यों नहीं लिखता है? सफेद दीवाल पर लिखेगा तो कुछ दिखायी नहीं पड़ेगा। काले तख्ते पर लिखता है तो खड़िया सफेद उभरकर दिखायी पड़ती है। महापुरुष समाज के ब्लैक बोर्ड पर उभरकर दिखायी पड़ते हैं, अन्यथा दिखायी नहीं पड़ सकते। जिस दिन समाज महान् होगा उस दिन महान् पुरुषों को खोजना बहुत मुश्किल हो जायगा। समाज क्षुद्र है, नीचा है, इसलिए महापुरुष दिखायी पड़ते हैं। महापुरुष, जो इतना बड़ा दिखायी पड़ता है, वह हमारी क्षुद्रता के अनुपात में दिखायी पड़ता है। जिस दिन महान् मनुष्यता पैदा होगी, उस दिन महापुरुषों का युग समाप्त समझ लेना चाहिए। मनुष्यता क्षुद्र है, दीन-हीन है इसलिए महापुरुष दिखायी पड़ते हैं। महापुरुष तो हमेशा पैदा होते रहेंगे, लेकिन महान मनुष्य के बीच उनका कोई पता लगाना आसान नहीं रह जायगा। तो, मैं कहता हूं कि राम दिखायी पड़ते हैं, क्योंकि समाज राम से भी विपरीत रहा होगा। बुद्ध दिखायी पड़ते हैं क्योंकि बुद्ध से विपरीत समाज रहा होगा। बुद्ध की सफेद उज्ज्वल रेखा किसी काले समाज के ब्लैक बोर्ड के सिवाय दिखायी नहीं पड़ सकती थी। फिर यह भी ध्यान रख लेना जरूरी है कि अगर हम बुद्ध की, महावीर की, राम की, कृष्ण की, लाओत्से की जरथुष्ट्र की, कंफ्यूशस की शिक्षाओं को देखें तो उन शिक्षाओं से बहुत-कुछ नतीजे लिये जा सकते हैं। एक बड़े मजे की बात है, जिस पर हम कभी ध्यान ही नहीं देते। महावीर सुबह से शाम तक लोगों को समझाते हैं—हिंसा मत करो, हिंसा मत करो। अहिंसा-अहिंसा। इससे क्या मतलब है? इससे मतलब है कि लोग अहिंसक थे? यदि लोग अहिंसक थे तो महावीर पागल थे जो उनको समझा रहे थे कि हिंसा मत करो। बुद्ध सुबह से सांझ तक समझा रहे हैं कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो और बेईमानी मत करो, पर-स्त्री का गमन मत करो। किसको समझा रहे हैं? लोग अगर अच्छे थे, समाज अगर शुद्ध था तो ये शिक्षाएं किसके लिए हैं? ये शिक्षाएं बताती हैं कि आदमी कैसे रहे होंगे। जिनको ये शिक्षाएं दी जा रही थीं वे आदमी कैसे रहे होंगे? वे ही शिक्षाएं हमें आज देनी पड़ रही हैं। जो शिक्षाएं तीन हजार वर्ष पहले लागू थीं, वे ही आज भी लागू हैं। इससे सिद्ध होता है कि समाज जैसा आज है, तीन हजार वर्ष पहले ऐसा ही था। समाज ऊंचा नहीं था। समाज में बुनियादी कोई फर्क नहीं

पड़ गया। लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आ पाता कि शिक्षाएं किन्हें देनी पड़ती हैं, किस लिए देनी पड़ती हैं?

एक चर्च में एक फकीर बोलने गया। चर्च के लोगों ने कहा था उसे कि सत्य के संबंध में हमें समझाओ। उस फकीर ने कहा, सत्य के संबंध में? लेकिन यह तो चर्च है, यहां सत्य के सम्बन्ध में समझाने की जरूरत क्या? यहां तो सत्यवादी लोग ही आये हुए हैं, क्योंकि मंदिरों में, चर्चों में सत्यवादी ही आते हैं। लेकिन लोग नहीं माने। उन्होंने कहा, नहीं नहीं, आप तो सत्य के संबंध में हमें समझाइये। वह फकीर खड़ा हुआ। उसने मंच पर खड़े होकर पूछा कि इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, मैं थोड़ी जांच-परख कर लेना चाहता हूं। मैं तुमसे यह पूछता हूं कि मित्रो! तुम सब बाइबिल पढ़ते हो? उन सबने हाथ हिलाया कि हां, हम बाइबिल पढ़ते हैं। उस फकीर ने पूछा कि तब मैं तुमसे यह पूछता हूं कि तुमने बाइबिल में ल्यूक का ६६ वां अध्याय पढ़ा है? उन सबने हाथ हिलाये सिर्फ एक आदमी को छोड़कर, जो सामने बैठा था। तो उन्होंने कहा, हां, हमने पढ़ा है। वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, अब मैं सत्य के संबंध में बोलूंगा, क्योंकि मैं तुम्हें बता दूं कि ल्यूक का ६६ वां अध्याय जैसा कोई अध्याय बाइबिल में है ही नहीं और तुम सब कहते हो कि हां पढ़ा है। तब सब ठीक है। फिर सत्य के संबंध में बोलने में कुछ सार है, लेकिन उस फकीर ने कहा कि यह जो आदमी सामने बैठा है, यह बड़ा अद्भुत आदमी मालूम पड़ता है। आश्चर्य! मेरे दोस्त! तुम चर्च में आ कैसे गये? क्योंकि चर्च में धार्मिक आदमी शायद हो जाते हों। तुम इस मंदिर में आ कैसे गये? मंदिर का तो धार्मिक लोगों से संबंध ही नहीं रहा है कभी। तुम आये कैसे? तुम चुप कैसे बैठे हो? तुमने हाथ क्यों नहीं उठाया? उस आदमी ने कहा, महाशय, जरा जोर से बोलिये, मुझे कम सुनायी पड़ता है। क्या आप कहते हैं ६६ वां अध्याय ल्यूक का? रोज पढ़ता हूं, पढ़ता नहीं, रोज पाठ करता हूं। मैं समझा नहीं, इसलिए चुपचाप रहा कि कोई झंझट में न पड़ जाऊं।

समाज की शिक्षाएं समाज की खबर लाती हैं कि कैसे लोग होंगे। शिक्षाएं उन्हें देनी पड़ती हैं जो शिक्षाओं के प्रतिकूल होते हैं। जिस दिन दुनिया पर धर्म आ जायेगा उस दिन धर्म की शिक्षाओं को देने की आवश्यकता कम हो जायगी। जिस गांव में मरीज कम होंगे वहां डाक्टर बसने की कोशिश नहीं करेंगे। जिस गांव में स्वास्थ्य हो उस गांव में चिकित्सक की क्या जरूरत होगी? हम बहुत गौरवान्वित होते हैं यह बात कहकर, कि दुनिया के तीर्थंकर, बुद्ध और अवतार हमारे यहां ही पैदा होते हैं। थोड़ा समझ-सोचकर इसमें गौरव अनुभव करना है। यह इस बात का सबूत है कि हमारा समाज एक अधार्मिक समाज है, जहां

धार्मिक शिक्षक को बार बार पैदा होने की जरूरत पड़ती है। यह सबूत गौरव का नहीं है। किसी घर में रोज रोज डाक्टर आता हो तो मुहल्ले में नहीं कह सकते हैं कि हम बड़े स्वस्थ लोग हैं। हमारे यहाँ डाक्टर रोज आता है। धर्मगुरुओं की इतनी लंबी कतारें इस बात की खबरें हैं कि यह समाज अधार्मिक समाज है और अगर हम पीछे लौटने की बात करते हैं तो हम मुल्क को आत्महत्या Suicide सिखा रहे हैं। मुल्क मर जायगा पीछे लौटने की बातों में। क्योंकि, पहले तो लौट नहीं सकते, लौटने की कोशिश में और नासमझी के प्रयास में वह आगे नहीं जा सकेगा जहां वह जा सकता था। नहीं, रामराज्य नहीं चाहिए, चाहिए भविष्य का समाज। लौटा हुआ, बीता हुआ, गया हुआ सामंतवादी समाज नहीं, चाहिए शोषण से मुक्त वर्गविहीन आगे का समाज, भविष्य का समाज। लौटना नहीं है पीछे,––जाना है आगे। लेकिन, हमारी सारी प्रवृत्ति, हमारा सारा चिन्तन, हमारी सारी बुद्धि, हमारे व्यक्तित्व का सारा निर्माण, हमारी कंडीशनिंग, हमारे सारे संस्कार पीछे ले जाने वाले हैं––आगे ले जाने वाले नहीं। इसीलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो पाती है। क्रांति का मतलब होता है आगे जाना। जो आगे जाना ही नहीं चाहता है वह क्रांति कैसे करेगा? इसीलिए भारत के पांच हजार वर्षों में क्रांति का कोई भी उल्लेख नहीं है। इतने संत, इतने महात्मा, इतने विचारक! लेकिन विद्रोह? विद्रोह बिल्कुल भी नहीं। विद्रोह जरा भी नहीं। Revolution जैसी चीज ही नहीं। विद्रोह तो वे करते हैं जो आगे जाना चाहते हैं। जो आगे जाना चाहते हैं उन्हें अतीत को इन्कार करना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें पीछे जड़ों को काटना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं उन्हें पीछे का मोह छोड़ना पड़ता है। लेकिन हम, अगर हमारा वश चले तो हम अपनी मां के गर्भ में ही रह जायं, वहां से भी बाहर न निकलें। अगर कोई बच्चा सच्चा भारतीय हो तो उसे इन्कार कर देना चाहिए कि मैं मां के गर्भ के बाहर नहीं आता। मां के गर्भ में बड़ी शांति से जी रहा हूं, संतोष से। इतना सुख कहां मिलेगा? मिलता भी नहीं। कितना ही अच्छा मकान बनायेंगे, कितनी अच्छी कोच बनायेंगे, कितने ही अच्छे गद्दे और तकिये लगायें, मां के पेट में जो 'कंम्फर्ट', जो सुख, जो सुविधा, जो शांति है वह कहां मिलेगी? मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि मां के पेट में बच्चा जो सुख जान लेता है उसी सुख के कारण वह उसी तरह की चीजें बनाता चलता है। ये इतने मकान, अच्छे गद्दे, तकिये, कारें, इस सबके भीतर खोज यह चल रही है कि मां के गर्भ में जैसी शांति और सुख मिलता था, वैसा मिल जाय, लेकिन बच्चे को मां के पेट के बाहर आना पड़ता है। बड़ी 'रेवोलूशन' हो जाती है, बड़ी ही क्रांति हो जाती है, सारा जीवन अस्त व्यस्त हो जाता होगा, क्योंकि न वहाँ खाने की फिक्र

थी, न नौकरी की, न 'इम्प्लायमेंट' की, न कोई और झंझट थी। वहां सारा जीवन चुपचाप चलता था और चौबीस घंटे तंद्रा में, निद्रा में सोने का आनंद था। वहां कोई दुःख न था, सब सुख था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष का ख्याल गर्भ के अनुभव से ही पैदा हुआ था। वहां सब कुछ था, कुछ कमी न थी। वही मन में, कहीं स्मृति में मनुष्य की, गहरे में गूंजता रहता है कि कोई एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहां सब सुख होगा, कोई दुःख न होगा। कोई एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां सब शांति होगी, कोई अशांति नहीं होगी। कोई एक स्थान होना चाहिए जहां कुछ भी नहीं करना पड़ेगा और सब हो जायगा। वही कहीं बीच में छिपी हुई स्मृति मां के गर्भ की है। लेकिन बच्चा अगर कह दे कि नहीं जाता यात्रा पर जीवन की, तो क्या होगा उसका अर्थ? मां को उसे छोड़ना पड़ता है, मां से अलग खड़ा होना पड़ता है। थोड़े दिन मां से चिपटा रहता है, फिर अपने पैर से चलने लगता है, फिर धीरे-धीरे मां और उसके बीच फासला बढ़ता चला जाता है। फिर कल एक और स्त्री उसके जीवन में आयेगी और शायद मां को भी भूल जायगा। वह अपनी यात्रा पर जा चुका जहां वह मां से पूरी तरह स्वतंत्र हो गया है। जीवन की यात्रा आगे की तरफ है—आगे की तरफ, रोज आगे की तरफ। पिछला छोड़ देना पड़ता है, चाहे कितना ही सुविधापूर्ण रहा हो। आगे की असुविधाएं झेलनी पड़ती हैं ताकि हम और नयी सुविधाओं के जीवन को उपलब्ध हो सकें। पहला कितना ही अच्छा घर रहा हो, उसे छोड़ देना पड़ता है ताकि अनजान और नये घर हम बना सकें।

जीवन की खोज निरंतर अतीत से मुक्त होने की खोज है। और, भारत के लिए चिन्ता करने जैसी बात है। भारत अतीत से चिपटा हुआ है। उसका मन वहीं रखा रह गया है। उसने जोर से पकड़ लिया है अतीत को। वह मां के गर्भ को पकड़े है और कहता है कि नहीं, हम यहां से आगे नहीं जायेंगे। इस वजह से हम सिकुड़ गये हैं, इस वजह से हमारी ऊर्जा क्षीण हुई है, इस वजह से हमारी प्रतिभा नष्ट हुई है, इस वजह से हम बौने हो गये हैं, इस वजह से हम सिर उठाकर अज्ञात की यात्रा पर जाने को भयभीत हैं, डर लगता है अनजान में, घबराहट लगती है। अपने घर में रहो, यह प्रवृत्ति है। यह भारत को हिन्दुस्तान के भीतर कैद कर दिया। भारत नहीं जा सका विस्तार पर। लेकिन, अपने को समझाने की हम बहुत होशियारी की बातें सोचते हैं। हम कहते हैं, हम आक्रमण नहीं करना चाहते हैं, इसलिए हम अपने घर में बैठे रहते हैं। हम अहिंसक हैं इसलिए हम कहीं नहीं जाना चाहते। लेकिन अहिंसक से अहिंसक आदमी को जरा-सा उकसा दो और उसके भीतर से खूंखार आदमी खड़ा हो जाता है। अहिंसक

आदमी को जरा सा कुछ कह दो तो उसके भीतर से क्रोध उबलने लगता है। यह कैसा अहिंसक आदमी है? कैसी है यह अहिंसा?

चीन का हमला हुआ, पाकिस्तान का हमला हुआ और अहिंसक आदमी को आप देख लेते कि अहिंसा कहां गयी। वह बाहर ही है सारी की सारी, भीतर कुछ भी नहीं है। हिंदुस्तान में कवि कविताएं करने लगे कि सिंहों को छेड़ो मत, हम बब्बर शेर हैं। लेकिन घर के बाहर कविता सुना रहे हैं लोगों को, कहीं जा नहीं रहे हैं। सारा हिन्दुस्तान कविता कर रहा है जैसे कि कविताओं से कोई युद्ध जीते जाते हैं। दुनिया में ऐसा कविताओं का बुखार, जुनून कभी नहीं आया होगा जैसा हिन्दुस्तान में आया है। गांव-गांव में कवि पैदा हो गये हैं, जैसे बरसात में मेंढक पैदा हो जाते हैं और वे सब कहने लगे कि हम शेर हैं, सोते हुए शेर को मत छेड़ो। तुम्हारी कविता से तुम शेर सिद्ध हो जाओगे? तुम्हारी यह बहादुरी, तुम कविताओं में जो बता रहे हो और कवि-सम्मेलन के मंच पर हाथ पैर फेंकते हो, इससे कुछ हो जायगा? नहीं, हिंसा तो भीतर बहुत है, लेकिन साहस भी नहीं है बाहर जाने का। तो वह हिंसा कहीं कविताओं में निकलती है, कहीं बातचीत में निकलती है, क्षुद्रता में निकलती है। लेकिन, बाहर हम नहीं गये इस देश के। उसका कारण यह है कि हम पकड़ते हैं, रुकते हैं। गांव का आदमी गांव में रुक जाता है, शहर में नहीं जाना चाहता है। डरता है, कहां जाय? जो आदमी एक छोटी दूकान करता है, उसी पर रुक जाता है। किसी तरह इसीमें गुजर कर लेंगे, कहां जायें, कौन झंझट ले, कौन अनजान, अपरिचित में उतरे?

सारी दुनिया विकसित हुई, वह इसलिए कि वह अनजान और अपरिचित में जाने को आतुर है। जब भी उन्हें मौका मिल जाय, अनजान में जाने को, वे जाने-माने को छोड़कर अनजान में चले जायेंगे। और हमें, मजबूरी में ही जाना पड़े तो बात दूसरी, जहां तक हमारी सामर्थ्य चलेगी हम जाने माने को पकड़कर रुके रहेंगे। यह स्थिति शुभ नहीं है, यह मंगलदायी नहीं है। इसीके कारण हम पीछे--पीछे लौटकर पकड़ते हैं। अगर मैं कोई बात कहूं तो आप कहेंगे, यह आदमी अनजाना है, पता नहीं यह आदमी कौन है, क्या है? इसकी बात माननी ठीक है क्या? अपने कृष्ण की बात ठीक है, तीन हजार साल से सुनते हैं, वही ठीक होनी चाहिए। और इसलिए, अगर हिन्दुस्तान में किसीको नयी बात भी कहनी हो तो उसको एक झूठ का आडंबर पहनाना पड़ता है। उसे कहना पड़ता है, जो मैं कह रहा हूं यही गीता में भी कहा हुआ है, तब कहीं वह बात स्वीकृत होगी, नहीं तो नहीं। अजीब बेईमानियां करवाना चाहते हैं। जब

वह पहले यह सिद्ध करें कि यह गीता में कहा हुआ है तब कोई सुनने को राजी होगा। तब ठीक है, तब बोलो, तब पुराना परिचित ही बोल रहा है, फिर कोई डर नहीं है तुमसे।

इसीलिए हिन्दुस्तान में प्राचीन ग्रन्थों की हजारों टीकाएं हो गयी हैं। गीता की कोई एक टीका की भी जरूरत नहीं है। गीता इतनी साफ किताब है, इतनी स्पष्ट, कि गीता की किसी टीका की जरूरत नहीं है। टीकाकार, और धुआं पैदा कर देगा। गीता को समझाने के लिए टीकाकार की जरूरत है? कृष्ण ने इतनी स्पष्ट बात कही है, इतनी सीधी, कि अब टीकाकारों की क्या जरूरत है? लेकिन एक हजार टीकाएं हैं और एक हजार मतलब वाली। इससे क्या सिद्ध होता है? इससे दो ही बातें सिद्ध होती हैं—या तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा कि एक ही बात में हजार मतलब रहे होंगे, तो कोई मतलब ही न रहा, मतलब यह रहा। हजार मतलब जिस बात के हों उसमें कोई मतलब ही न रहा। और या फिर, ये हजार टीकाकार क्या कह रहे हैं? ये जो कहना चाहते हैं वे उसको जबरदस्ती बेचारे कृष्ण के ऊपर थोप रहे हैं, इसलिए हजार टीकाएं पैदा हो गयी हैं। नहीं तो हजार टीकाओं की क्या जरूरत है? जो इन्हें कहना है, सीधा नहीं कह सकते। क्योंकि यह मुल्क सुनेगा ही नहीं, यह नये को सुनने को राजी नहीं। उसको गीता में प्रवेश करके और उसको गीता की शकल में लाकर खड़ा करना पड़ेगा। जब वह बिल्कुल गीता की बात जंचने लगेगी तब कोई मानेगा। और इसमें गीता के साथ जो हत्या हो रही है, जो अत्याचार हो रहा है, वह चलेगा। गीता की जो शुद्धि है वह नष्ट होगी। अभी मेरे खिलाफ इन लोगों ने इधर कुछ पत्र लिखे हैं। उन्होंने क्या लिखा? उन्होंने कहा कि गांधीजी विनम्र थे। वे कभी यह नहीं कहते थे कि यह मैं कह रहा हूँ। वे कहते थे 'यह गीता में लिखा है, यह महावीर ने कहा है, यह टालस्टाय कहता है, यह रस्किन कहता है, यह श्रीमद्राजचन्द्र कहते हैं। मैं तो वही कह रहा हूं।' यह विनम्रता नहीं है, यह इस मुल्क के बुनियादी रोगों में से एक रोग है। जो मैं कह रहा हूँ, वह मुझे कहना चाहिए कि मैं कह रहा हूँ, चाहे वह गलत हो, चाहे वह सही हो। मैं जो कह रहा हूँ उसे कृष्ण के ऊपर थोपना अत्याचार है। यह बिल्कुल क्राइम है कि मैं कहूं कि वह कृष्ण कह रहे हैं। मुझे क्या पता कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? कृष्ण के अतिरिक्त और कोई दावा नहीं कर सकता है इस बात के कहने का कि कृष्ण क्या कह रहे हैं! कौन दावा करेगा? कृष्ण की चेतना जिसके पास न हो, वह कैसे जानेगा कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? क्यों फिजूल कृष्ण के ऊपर सवारी करते हो? क्यों किसीके कंधे पर सवार होते हो? अपने दो छोटे पैरों से ही खड़े हो जाओ।

लेकिन नहीं,यह अहंकार है! अपने पैरों से खड़े होना अहंकार है और कृष्ण के कंधों पर खड़े हो जाना अहंकार नहीं है। कृष्ण के कंधों पर खड़े होकर आसानी से आप ज्यादा ऊंचा दिखायी पड़ेंगे, अपने पैरों पर खड़े होकर उतने ही ऊंचे दिखायी पड़ेंगे जितने आप हैं। अहंकार किससे ज्यादा सिद्ध होगा? परंपरा का सहारा अहंकार की पुष्टि के लिए लाया जा सकता है। और या फिर, लोग इतने नासमझ हैं कि वे सुनने को भी राजी नहीं नये को। इसलिए पुराने शराब की बोतल में नयी शराब भरकर पिलानी पड़ेगी। नहीं, मैं इन्कार करता हूं इस बात को क्योंकि यह पूरे मुल्क की प्रतिभा को नुकसान पहुंचाने की तरकीब है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हमें ईमानदारी से, स्पष्टता से यह कहना चाहिए कि यह मैं सोचता हूं। वह गलत हो सकता है, वह सही हो सकता है। यह मूल्यवान नहीं है, लेकिन मूल्यवान यह है कि हम अपने तईं सोचना शुरू करें। हम कब तक कृष्ण और महावीर और बुद्ध को सताते रहेंगे। अगर वे कहीं मोक्ष में होंगे तो बहुत परेशान हो गये होंगे। रोज उनकी टांग खींचो और उनको जमीन पर लाओ। उनकी हुज्जत हो गयी होगी, घबरा गये होंगे कि कहां के दुष्टों के मुल्क में पैदा हो गया कि सुबह सांझ परेशान किये रहते हैं। नहीं, परेशान हो गये होंगे और कितने हैरान होते होंगे कि क्या-क्या शकल बनायी जा रही है उनकी बातों की। जो उन्होंने कभी भी नहीं कहा होगा वह हजार दो हजार साल में उनके नाम पर थोप दिया गया। जो उन्होंने सोचा भी नहीं होगा वह उनकी वाणी का हिस्सा बन गया। क्या-क्या हम थोप सकते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। हमारे मन में जो होगा, हमें उनके ऊपर थोपना पड़ेगा। जैनों के चौबीस तीर्थंकर हैं। उनमें एक तीर्थंकर मल्लिनाथ हैं। दिगम्बर कहते है, वह पुरुष हैं मल्लिनाथ। श्वेताम्बर कहते हैं कि वह मल्लीबाई है, स्त्री हैं। बड़ा मजा है। यह भी संदिग्ध हो गया है कि कोई आदमी स्त्री था कि पुरुष। अजीब इतिहास लिख रहे हैं आप, कि यह भी पक्का नहीं है कि एक तीर्थंकर स्त्री था कि पुरुष। नहीं, यह तो पक्का रहा होगा, लेकिन दिगम्बरों की मान्यता यह है कि स्त्री मोक्ष जा ही नहीं सकती तो फिर तीर्थंकर स्त्री कैसे हो सकती है? स्त्री रही होगी तो उसने मल्लीबाई को मल्लिनाथ कर डाला, क्योंकि वह तो अपनी धारणा के हिसाब से उनको खड़ा होना पड़ेगा, तीर्थंकर को। महावीर की शादी हुई कि नहीं, महावीर को लड़की पैदा हुई कि नहीं, इसमें भी झगड़े हैं। श्वेताम्बर कहते हैं कि शादी हुई, लड़की हुई, दामाद था। दिगम्बर कहते हैं, यह कभी हुआ ही नहीं। तीर्थंकर जैसा आदमी और शादी करेगा, बाल ब्रह्मचारी। तो बाल ब्रह्मचारी की जिसकी धारणा है, थोप देंगे। मानने को राजी नहीं हैं कि उनकी

स्त्री थी या उनके लड़की हुई है। यह सवाल ही नहीं, यह बात गलत है। अब एक ही महावीर को मानने वाले, दो वर्ग! अजीब बातें कर रहे हैं। यह क्या है? हम अपनी ही धारणा थोपते हैं शास्त्रों पर, सिद्धांतों पर, महापुरुषों पर। हम पूजा कर रहे हैं यह या अत्याचार कर रहे हैं? यह क्रिमिनल ऐक्ट है, यह बिल्कुल अपराधपूर्ण है और मुल्क को सख्ती से मुमानियत होनी चाहिए कि कोई आदमी कृष्ण की तरफ से बोलने का हकदार नहीं है, न महावीर की तरफ से अपनी बात कहे। अगर महावीर के लिए भी कहना है तो यह कहे कि यह मैं कहता हूं महावीर के संबंध में। महावीर कहते होंगे कि नहीं कहते होंगे, मुझे कुछ भी पता नहीं है। हम वही समझ सकते हैं, जो हमारी स्थिति है।

एक दिन, एक रात बुद्ध प्रवचन करते थे। प्रवचन के बाद रोज का उनका नियम था कि वह भिक्षुओं को सोने के पहले कहते कि अब जाओ रात्रि का अंतिम कार्य करो। वे दस हजार भिक्षु उनके साथ होते थे और रात्रि का अंतिम कार्य ध्यान था। सोने के पहले ध्यान करो, फिर सो जाओ। तो रोज-रोज कहने की यह जरूरत न थी कि ध्यान करो। तो वह इतना कहते कि जाओ, रात्रि का अंतिम कार्य करो। उस दिन कोई चोर भी आया था सांझ को, एक वेश्या भी आयी थी। चोर ने जैसे सुना कि जाओ और रात्रि का अंतिम कार्य करो और उसने कहा, बहुत रात्रि हो गयी, चांद कितना चढ़ गया है। जाऊं अपना धंधा करूं। वैसे रात भर गंवा दूंगा धर्म में, तो मुश्किल हो जायगी। धर्म में थोड़ा बहुत वक्त गंवाया जा सकता है, फिर धंधा करने जाना ही पड़ता है, चाहे चोर हो, चाहे साहूकार हो। वेश्या ने सुना कि रात्रि हो गयी है, अंतिम कार्य करो वेश्या बोली, अरे, ग्राहक आ चुके होंगे, मैं जाऊं! बुद्ध ने एक ही बात कही। भिक्षु ध्यान करने चले गये, चोर चोरी करने चला गया, वेश्या अपनी दूकान पर चली गयी। बुद्ध ने जो कहा था वह एक था, लेकिन व्याख्याएं तीन हो गयीं।

जो कहा जाता है वह एक है, जितने लोग सुनते हैं व्याख्याएं उतनी हो जाती हैं। लेकिन, कृपा करके अपनी व्याख्या को किसीके ऊपर न थोपें, इतना ही कहें, ऐसा मैं समझता हूं। लेकिन, इस मुल्क में थोपा जा रहा है, निरंतर थोपा जा रहा है। इस मुल्क में कोई गीता की टीका न लिखे तो वह ज्ञानी ही नहीं है। कोई गीता की टीका लिखे तभी ज्ञानी हो सकता है। और अगर कभी भी कहीं कोई अदालत होगी, मोक्ष में, तो ये गीता के टीकाकार एक-एक बंधे हुए नजर आयेंगे, क्योंकि कृष्ण इन पर मुकदमा चलायेंगे कि सज्जन, तुम मेरे पीछे क्यों पड़े थे? मुझे जो कहना था वह मैंने कह दिया था, तुम कृपा करते। मैंने कह दी

थी बात, पूरी तरह। मेरी बात साफ थी। तुम कैसे अर्थ समझाने गये बीच में, कि इसका यह अर्थ है।

यह जो प्राचीनवादिता, यह जो प्राचीन का मोह, यह जो अतीत को जकड़ कर पकड़ लेना, यह हम कब तोड़ेंगे ? क्या हमको दिखायी नहीं पड़ता कि सारा जगत् आगे बढ़ता चला जा रहा है, भविष्योन्मुख है ? हम अतीत के मोह में मर जायेंगे, मर ही गये हैं, करीब-करीब मर गये हैं। इकबाल ने गाया है कि

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी"

अब इकबाल तो मर चुके अन्यथा उनसे मिलकर कहता कि महाशय, कुछ भी बात नहीं है। बात कुल इतनी है कि हस्ती बहुत पहले मिट चुकी, तो हम मिटें भी तो मिटें क्या ? खाक ? मिटने के लिए हस्ती चाहिए न पहले ? आदमी जिन्दा हो तो मर सकता है और मर ही गया हो तो अब क्या मरेगा ? मरने के लिए भी जिन्दगी चाहिए। मरा हुआ आदमी फिर नहीं मरता। एक दफा मर गया, फिर तो मरता ही नहीं। यह कौम इसलिए नहीं कि हमारी कोई बड़ी खूबी है जिससे हमारी हैसियत नहीं मिटती। हमारी खूबी यह है कि हैसियत हम खो चुके, अतीत के साथ। हमारी कोई मौजूदा हैसियत नहीं है, हमारी कोई वर्तमान प्रतिभा नहीं है, हमारी सारी प्रतिभा अतीत में हो चुकी है। आज क्या है हमारे पास ? अभी क्या है ? वर्तमान सम्पत्ति क्या है हमारे व्यक्तित्व की, वह हमारी खो चुकी इसलिए मिटने को कुछ बचा नहीं। लेकिन यह दुःखद है और गांधी का चिंतन फिर पुरातन, फिर पुरातन की तरफ ले जाने वाला है। देश को ले जाना है आगे, रोज-रोज आगे। रोज भूलते जाना है उसको, जो बीत गया है।

एक गांव में एक पुराना चर्च था। वह कहानी कह कर और थोड़ी-सी बातें कह कर के मैं अपनी बात पूरी करूंगा। एक गांव में एक चर्च था। एक बहुत पुराना गांव और बहुत पुराना चर्च। वह चर्च इतना पुराना था कि हवाएं चलती थीं तो उसकी दीवालें हिलती थीं कि अब गिरीं, तब गिरीं। बादल गरजते थे तो लगता था कि गिर गया चर्च, बिजली चमकती थी तो लगता कि गिरेगी चर्च पर। ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जायगा ? कोई प्रार्थना करने नहीं जाता था। प्रार्थना करने वाले जीवन को दांव पर लगाकर तो प्रार्थना करने जाते नहीं। सुविधा होती है तो जाते हैं। जिनको सुविधा होती है वह ज्यादा जाते हैं, जिनको कम सुविधा होती है वह कम जाते हैं। लेकिन, वहां तो जान का खतरा था, वहां कौन प्रार्थना करने जाता। चर्च खाली पड़ा था। चर्च के संरक्षकों की कमेटी मिली। उन्होंने कहा बड़ी मुश्किल है। वह कमेटी भी बाहर मिली, वह भी कोई भीतर नहीं

मिली, क्योंकि नेता हमेशा अनुयायियों से ज्यादा होशियार होते हैं। जहां अनुयायी नहीं जाते वहां नेता जाते ही नहीं। आप इस ख्याल में मत रहना कि नेता अनुयायियों के आगे जाते हैं। यह सिर्फ भ्रम है अखबार में। नेता हमेशा अनुयायियों के पीछे जाते हैं और 'फालो' करते हैं 'फालोअर' को। जब देख लेते हैं कि अनुयायी यहाँ जा रहा है तब वे उचककर भागकर साथ हो जाते हैं। तो आपको आगे दिखायी पड़ते हैं, वे होते हैं हमेशा पीछे। पहले पता लगा लेते हैं कि अनुयायी क्या मानता है, क्या विश्वास करता है, वही कहते हैं जो आप मानते हैं। जो आप मानेंगे वही बात करते हैं और उसी तरह जीते हैं। तो, वह भी बेचारे नेता थे, वह काहे के लिए भीतर जाते जहाँ अनुयायी नहीं जाते थे। वे भी बाहर मिले, दूर कम्पाउंड से कि कहीं कोई दीवाल गिर न जाय। उन्होंने वहां तय किया कि लोग बड़े खराब हो गये हैं, कोई मंदिर में आता ही नहीं, लोग बिल्कुल नास्तिक हो गये हैं, लोग बिल्कुल अधार्मिक हो गये हैं और सबने सिर हिलाया कि बात सच है। हालांकि उनमें से भी कभी कोई भी नहीं आता था। लेकिन, एक जवान आदमी पहुंच गया था। उसने कहा कि महाशयो, सिर्फ लोगों को दोष मत दो, चर्च इतना पुराना हो गया है कि उसमें जाना खतरनाक है। देखें, हम भी अपनी कमेटी की बैठक बाहर कर रहे हैं, चलें हम भीतर। वे लोग बोले कि यह तो सच है, चर्च बहुत पुराना हो गया है। क्या करना चाहिए ?

तो कमेटी ने एक प्रस्ताव पास किया कि अब बहुत हो गयी प्रतीक्षा। तब फिर अब पुराने चर्च में कोई नहीं जायेगा। तो हम सर्व सम्मति से एक प्रस्ताव पास करते हैं कि पुराना चर्च गिरा दिया जाना चाहिए। उन्होंने दूसरा प्रस्ताव पास किया और पुराने को गिराकर हमें एक नया चर्च बनाना है। यह भी सर्वसम्मति से पास हो गया और तीसरा प्रस्ताव पास किया विस्तार से और उसमें लिखा कि हम नया चर्च वैसा ही बनायेंगे जैसा पुराना था, ठीक पुराने जैसा। वैसा ही मकान, उसी नींव पर, नींव पुरानी रहेगी, चर्च नया रहेगा, वैसी ही दीवालें। उन दीवालों में पुरानी ईंटें ही लगायी जायेंगी, नयी ईंट नहीं। पुराने ही द्वार-दरवाजे निकाल कर लगाये जायेंगे, नये दरवाजे नहीं। ठीक पुराने चर्च जैसा ही, पुरानी जगह पर ही, पुरानी दीवालों के अनुकूल दीवालें, पुरानी नींव पर नयी दीवारें, ऐसा हम चर्च बनायेंगे। इसे भी सर्वसम्मति से स्वीकार किया और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया कि जब तक नया चर्च न बन जाय, तब तक पुराना गिरायेंगे नहीं।

वह चर्च अभी तक खड़ा हुआ है। वह कब गिरेगा ? वह कभी नहीं गिरेगा।

जो पुराने को गिराने की सामर्थ्य नहीं रखते वे नये का निर्माण करने की सामर्थ्य खो देते हैं। जो पुराने को ध्वंस करने की हिम्मत रखते हैं केवल वे ही नये का सृजन कर पाते हैं। जो पुराने की मौत देखते हैं वे ही केवल नये को जन्म दे सकते हैं। और हम पुराने की मृत्यु देखने में असमर्थ हो गये हैं। हम पुराने को नष्ट करने में असमर्थ हो गये हैं। हम पुराने को गिराने में असमर्थ हो गये हैं, इसलिए नये का कोई जन्म नहीं हो पा रहा है। लेकिन ध्यान रहे, जीवन नये के साथ है, पुराने के साथ मौत है। अगर मर ही जाना हो बिल्कुल, तो पुराने को कसकर पकड़ लेना चाहिए। घर में मां मर जाती है, पिता मर जाते हैं, बहुत प्यारे हैं, लेकिन फिर लाश घर में रखकर हम नहीं बैठ जाते हैं। कितना दुःख, कितनी पीड़ा झेलता है आदमी। मां चल बसी उसकी, लेकिन फिर मरते ही लाश को घर में नहीं रखते। फिर यह नहीं कहते कि मां बहुत प्यारी थी। हम लाश को कैसे घर के बाहर ले जायं, हम कैसे मरघट ले जायें। हम तो इसीसे चिपके हुए बैठे रहेंगे। नहीं, फिर लाश को ले जाना पड़ता है, दुःख में, पीड़ा में। मरघट पर आग लगानी पड़ती है, जलाना पड़ता है उस मां को जिसे इतना प्रेम किया था, जिससे जन्म पाया था, जो सब कुछ थी। वह मर गयी तो उसे भी मरघट पर ले जाना पड़ता है, मजबूरी में जलाना पड़ता है। रोते हैं, लेकिन जलाकर वापस लौट आते हैं।

अगर किसी घर में लोग पागल हो जायं और जितने बूढ़े लोग मरते जायं उनकी लाश इकट्ठी कर लें तो उस घर की आप सोचते हैं, क्या हालत होगी? उस घर में नये बच्चे पैदा होने के पहले इन्कार कर देंगे कि क्षमा करिये, लाशों के इस ढेर में हम जन्म नहीं लेना चाहते। और, नये बच्चे पैदा भी हो जायेंगे तो पैदा होते ही पागल हो जायेंगे, क्योंकि जिस घर में इतनी लाशें हैं वहां नये बच्चे पागल होने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकते। लेकिन नहीं, लाशें हम जला आते हैं। लेकिन, इतिहास की लाशें हम संजोते चले जाते हैं, मस्तिष्क पर रखते चले जाते हैं। इतिहास भी कभी जला देने जैसा हो जाता है, इतिहास भी कभी भूल जाने जैसा हो जाता है, अतीत भी कभी मरघट पर पहुंचाने जैसा हो जाता है, ताकि शक्ति और ऊर्जा नये के जन्म की दिशा में अग्रसर हो सके।

नहीं, धर्म नहीं कहता है कि पीछे जाओ। धर्म तो कहता है आगे और आगे। और अंत में अननोन, अज्ञात, परमात्मा है, वहां चलना है। निकलती है गंगा हिमालय से, गंगोत्री से भागती है। गंगोत्री पर रुक नहीं जाती। अनजान पहाड़ों में, घाटियों में, बादियों में भागती, दौड़ती है, पत्थरों से टकराती है। न मालूम कितने रास्ते हैं। रास्ते में न कोई पुलिस वाला उसे मिलता है, जिससे

पूछ ले कि सागर कहां है, न कोई पुरोहित मिलता है कि पूछ ले कि सागर कहां है। कोई नहीं मिलता, कोई गाइड नहीं, कोई मार्गदर्शक नहीं, भागती चली जाती है। अपने भागने पर भरोसा है, अपने प्राणों पर भरोसा है। भागती है, अनजान भागती रहती है और एक दिन सागर के पास पहुंच जाती है। गंगोत्री में रुक जाती तो सागर नहीं हो सकती थी। गंगोत्री में नहीं रुकी, भागी, तो गंगोत्री में क्षीण-सी धारा थी, सागर के पास पहुंचकर विराट् धारा हो गयी और सागर में गिरते ही तो सागर हो गयी। जाना है अनंत तक, जाना है आगे और आगे और भविष्य में वहां जहां अनंत का सागर है। जो पीछे रुक गये हैं, उन्होंने अपने हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।

मैं भविष्य को, उस आने वाले सूरज को जो उगेगा, उस भवन को जो हम बनायेंगे, उसके लिए कामना जगाना चाहता हूं, उसके लिए आकांक्षा और अभीप्सा जगाना चाहता हूं। लेकिन, हमारे सारे शिक्षक पुराने से बंधे हैं, हमारे सारे शिक्षक प्रतिगामी हैं, हमारे सारे शिक्षक रियेक्शनरी हैं, हमारे सारे शिक्षक कहते हैं, वह जो था, वही ठीक था। एक बार इस देश को निर्णय करना होगा कि जो था अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हो गये हैं? जो था, अगर वह ठीक था तो हम उसीसे तो पैदा हुए हैं, उसीको तो 'बाई-प्रोडेक्ट' हैं। जो था अगर वह ठीक था तो हम ऐसे क्यों हैं? बेटा सबूत है, अपने बाप का। अगर बाप ठीक था तो यह बेटा गड़बड़ कैसे? फल सबूत है, अपने बीज का। अगर बीज मीठा था तो यह फल कड़वा कैसे? फल यह नहीं कह सकता कि बीज तो ठीक था, लेकिन हम गड़बड़ हो गये हैं। नहीं, बीज से ही फल पैदा होते हैं। बीज तो खो गये हैं, उनका तो अब कुछ पता नहीं। अब तो फल सबूत देंगे कि बीज कैसे थे। हम सबूत हैं, अपने पूरे अतीत के। हमारे अतिरिक्त और कोई सबूत नहीं है। हम कैसे हैं, यह सबूत है हमारे पूरे इतिहास का, क्योंकि उस पूरे इतिहास की यात्रा से हम जन्मे हैं, उस यात्रा से हम पैदा हुए हैं। अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हैं? और अगर हम गलत हैं तो हमें जानना पड़ेगा, हालांकि इस बात को जानने में बड़ी पीड़ा होती है, बड़ा दुःख होता है कि हम अगर गलत हैं तो हमारे अतीत की प्रक्रिया गलत थी और हमें नयी प्रक्रिया और नयी जीवन दिशा को चुनना जरूरी हो गया है।

●

चौथा प्रवचन (प्रश्नोत्तर)

संचेतना के ठोस आयाम

मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं :

कुछ मित्रों ने कहा है कि गांधीजी यंत्र के विरोध में नहीं थे और मैंने कल सांझ कहा कि गांधीजी यंत्र, केन्द्रीकरण, विकसित तकनीक के विरोध में थे।

गांधी की १९०५ से लेकर १९४८ तक की चिन्तना को हम देखेंगे तो इसमें बहुत फर्क होता हुआ मालूम पड़ता है। वे बहुत सजग निरीक्षक थे। वे रोज रोज, उन्हें जो गलत दिखायी पड़ता, उसे छोड़ देते हैं, जो ठीक दिखायी पड़ता उसे स्वीकार करते हैं। धीरे-धीरे उनका यंत्र-विरोध कम हुआ था, लेकिन समाप्त नहीं हो गया था। १९४५ में पं० नेहरू को लिखे किसी पत्र में उन्होंने कहा है कि १९०५ में लिखी गयी किताब 'हिंद स्वराज्य' से मैं अभी भी अक्षरशः सहमत हूँ। उस किताब में उन्होंने यंत्रों के संबंध में बहुत अवैज्ञानिक दृष्टि प्रकट की है। रेल, टेलीफोन, टेलीग्राफ सभीके प्रति शत्रुता प्रकट की है। इसलिए यंत्रों का विरोध बाद में वे शायद प्रकट तो कम करते थे, लेकिन वह उनके भीतर भलीभांति मौजूद था और मिट ही नहीं गया था। फिर भी आशा की जा सकती है कि यदि वे २० वर्ष भी जीवित रहते तो शायद उनका यंत्र-विरोध और भी कम हो गया होता। लेकिन वे जीवित नहीं रहे और हमारा दुर्भाग्य सदा से यह है कि जहाँ हमारा महापुरुष मरता है वहीं उसका जीवन-चिंतन भी हम दफना देते हैं। महापुरुष तो समाप्त हो जाते हैं। उनकी जीवन-चिन्तना आगे बढ़ती रहनी चाहिए। जहां महापुरुष समाप्त होते हैं वहीं उनका जीवन-दर्शन समाप्त नहीं हो जाना चाहिए। महापुरुष का शरीर समाप्त हो जाता है, उसका जीवन-चिंतन देश को आगे बढ़ाते रहना चाहिए। लेकिन हम इतने भयभीत हैं, हम इतने डरे हुए लोग हैं कि हम चिन्तन को आगे ले जाना नहीं चाहते, हम चिंतन को वहीं ठोंककर रोक देना चाहते हैं, उसके ही विरोध में मैं कह रहा हूँ। यह प्रश्न गांधीजी का ही नहीं है। इस पूरे देश की चिंतना यंत्र-विरोधी रही है। यंत्र-विरोधी हमारी चेतना नहीं होती तो हमने यंत्र बहुत पहले विकसित कर लिये होते। हमारे पास बुद्धि की कमी नहीं थी। हिंदुस्तान में इतने बुद्धिमान् आदमी पैदा हुए हैं जितना कोई भी देश गौरव नहीं कर सकता है। बुद्ध और महावीर,

नागार्जुन और धर्मकीर्ति, वसुबंधु और दिग्नाग, शंकर और रामानुज, वल्लभ और निम्बार्क, हमारे पास अद्‌भुत बुद्धिमान् लोगों का लंबा सिलसिला है। इतने बुद्धिमान लोग पैदा हुए, लेकिन एक आइंस्टीन और एक न्यूटन हमने पैदा नहीं किया। तीन हजार वर्ष के इतिहास में हमारे पास एक न्यूटन, एक आइंस्टीन कहने जैसा नहीं है। आइन्स्टीन और न्यूटन से भी महत्त्वपूर्ण विचारक हमारे पास थे, लेकिन हमारे देश के विचार ने कभी भी वैज्ञानिक दिशा में कोई गति नहीं की। यह आकस्मिक नहीं है, यह एक्सीडेंटल नहीं है। इसके पीछे हमारे चिंतन का हाथ है। हमारी मान्यता यह है कि मनुष्य को विस्तार से बचना चाहिए। हमारी धारणा यह रही कि जितनी चादर हो उस चादर के भीतर अपने पैर सिकोड़कर रखना चाहिए, चादर के बाहर पैर नहीं निकलने चाहिए। बुद्धिमान् हम उसको कहते हैं जो चादर के भीतर रहता है। चादर के भीतर हम कितने ही सिकुड़ कर रहें, हम रोज बड़े होते जाते हैं और चादर रोज छोटी होती जाती है। जीना एक पीड़ा और कठिनाई हो जाती है लेकिन चादर के बाहर पैर नहीं फैलाने हैं।

जीवन का नियम है विस्तार, और हमने संकोच के नियम को आधार बनाया हुआ है। जो समाज विस्तार के सिद्धांत को स्वीकार किये हुए हैं उन्होंने यंत्र को विकसित किया है, क्योंकि यंत्र मनुष्य का विस्तार है। हमारे पैर हैं, हम पैर से चलते हैं। पैर से हम कितने तेज चल सकते हैं? कार हमारे पैर का विस्तार है, हमने पैर का और विस्तार किया और कार तेज गति से दौड़ती है। हवाई जहाज हमारे पैर का और भी बड़ा विस्तार है, अंतरिक्ष यान हमारे ही पैर का और भी बड़ा विस्तार है। यंत्र का अर्थ क्या है? यंत्र का अर्थ है कि जो मनुष्यों को उपलब्ध नहीं हैं उपकरण, उनका विस्तार या जो उपकरण उपलब्ध हैं उनका विस्तार।

अगर हम संतोष को स्वीकार करते हैं, संकोच को कि जीवन जैसा है, जितना है उतने ही चादर के भीतर उसे जी लेना है तो हम यांत्रिक, वैज्ञानिक, टेक्नॉलाजिकल माइंड पैदा नहीं कर सकते। वह सवाल बहुत बड़ा नहीं है कि गांधी यंत्र के विरोध में हैं या पक्ष में हैं। चर्खा भी यंत्र है। दलील तो दी जा सकती है कि तकली भी यंत्र है। यंत्र तो है ही। किसी दिन वे भी मशीन थीं, आज भी मशीन तो हैं ही। छोटी हैं, अविकसित हैं, दस हजार वर्ष पुरानी हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है। यंत्र तो है। नहीं, सवाल यंत्र के पक्ष और यंत्र के विरोध का नहीं है, सवाल टेक्नॉलाजिकल माइंड और एंटी-टेक्नॉलाजिकल माइंड का है। सवाल है कि तकनीकी मस्तिष्क में हम विश्वास करते हैं या तकनीक-विरोधी मस्तिष्क में विश्वास करते हैं।

चीन ने कोई तीन हजार वर्ष पहले मशीनें ईजाद कर ली थीं, लेकिन चीन में यंत्र-विरोधी विचारणा का प्रभाव था। वह यंत्र-विरोधी धारणा कहती थी कि यंत्र की कोई जरूरत नहीं है आदमी परिपूर्ण है। परमात्मा ने आदमी को पूरी तरह पैदा किया है। उसे किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। वह अपने सारे अंगों से ही सारा काम कर सकता है। इस दर्शन का इतना प्रभाव पड़ा कि तीन हजार वर्ष पहले जो मशीनें चीन ने विकसित की थीं, वे वहीं रह गयीं। उनकी आगे कोई गति न हो सकी। उन्हीं मशीनों को यूरोप ने पिछले तीन सौ वर्षों में विकसित किया और यूरोप ने धन के अंबार लगा दिये। चीन ने अगर तीन हजार वर्ष पहले वे मशीनें विकसित की होतीं तो चीन शायद पृथ्वी पर आज सभ्यता में अग्रणी हो सकता था, लेकिन गलत दर्शन के परिणाम से यंत्र वहीं ठहर गये और रुक गये।

हिन्दुस्तान बैलगाड़ी पर चल रहा है हजारों साल से। जो बैलगाड़ी के चाक का नियम है, वही हवाई जहाज का भी नियम है। उसमें कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ गया है, उसका ही विस्तार है। लेकिन हम बैलगाड़ी पर ही रुक गये। हमारा मस्तिष्क यंत्र के विस्तार की कामना से भरा हुआ नहीं है और गांधी ने फिर हमें विकेन्द्रीकरण सिखाया है। और विकेन्द्रीकरण का क्या मतलब होता है? डिसेंट्रलाइजेशन का क्या मतलब होता है? विकेन्द्रीकरण का मतलब होता है कि छोटे यंत्र, बड़े यंत्र नहीं। क्योंकि जितने बड़े यंत्र होंगे उतना केन्द्रीकरण होगा। जितना बड़ा केन्द्रीकरण होगा उतने बड़े यंत्रों का हम प्रयोग कर सकते हैं। जितनी विकेन्द्रित व्यवस्था होगी उतने छोटे यंत्र होंगे, एक-एक आदमी जिनको चला सके, दो चार आदमी मिलकर चला सकें, छोटे-छोटे गांव में चलाये जा सकें। विकेन्द्रीकरण का अर्थ होगा कि बहुत बड़े यंत्रों का प्रयोग नहीं हो सकता है और आनेवाली जो दुनिया है वह बहुत बड़े यंत्रों पर निर्भर होगी। फिर मेरा यह कहना है, यह सवाल अगर यंत्रों का ही होता तो मैं गांधीजी का विरोध भी नहीं करता। यह सवाल यंत्रों का ही नहीं, मनुष्य की चेतना के विकास का भी है। शायद आपको पता न हो हम जितने बड़े उत्पादन के यंत्रों का प्रयोग करते हैं, मनुष्य के मस्तिष्क की अभिव्यक्ति और विकास की संभावना उतनी ही बढ़ती है। यह एकदम से आश्चर्यजनक मालूम पड़ेगा। लेकिन आपने कभी ख्याल किया है कि एक आदमी बैलगाड़ी चलाता है जीवन भर। बैलगाड़ी चलाने के लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता के लिए चुनौती नहीं मिलती। चुनौती का कोई सवाल नहीं है, कोई चैलेंज नहीं है वहां, लेकिन उसी आदमी को कल हवाई जहाज चलाना पड़े तो हवाई जहाज मस्तिष्क को ज्यादा चुनौती देता है, ज्यादा समझ, ज्यादा

अवेयरनेस, ज्यादा होश, ज्यादा कांसेसनेस रखनी पड़ती है, ज्यादा जटिल चीज को समझना पड़ेगा, ज्यादा जटिल चीजों का व्यवहार करना पड़ेगा। जितनी जटिल, उलझी हुई, जितनी सूक्ष्म, जितनी विस्तीर्ण हमें यंत्र के साथ सामना करना पड़ता है, हमारे मस्तिष्क को उतनी चुनौती मिलती है और मस्तिष्क उसी अनुपात में विकसित होता है। जिन कौमों ने छोटे यंत्रों या यंत्रों के बिना काम चलाया, उनकी सामाजिक चेतना और मस्तिष्क के विकास में अवरोध पड़ा है।

पहली दफा जो बन्दर जमीन पर खड़ा हुआ होगा दो पैर से, बाकी बंदर उस पर हंसे होंगे कि यह बिलकुल नासमझ है, लेकिन डार्विन कहता है कि वह बन्दर जो दो पैर से खड़े हो गये—पहले तो बंदर हंसे होंगे और उन्होंने समझा होगा कि यह पागल है। वह 'ऑकवर्ड' भी लगा होगा कि दो पैर से खड़ा हुआ! सब बंदर चार पैर से चलने वाले थे, लेकिन जो बंदर दो पैर से खड़ा हो गया उसने टेक्नॉलाजिकल रिवोलूशन को जन्म दे दिया। उसने तकनीक के विकास की पहली सीढ़ी रख दी। उसने यह कहा कि जो काम दो पैर से हो सकता है उसको चार हाथ-पैर से करना गलत है। तकनीक शुरू हो गया। उसने दो हाथ मुक्त कर लिये और दो पैर से चलने का काम करने लगा। क्या आपको पता है, अगर उस बन्दर ने दो हाथ मुक्त नहीं किये होते तो मनुष्य की कोई सभ्यता का कभी जन्म नहीं होता। वह जो दो हाथ मुक्त हो गये, उन दो खाली हाथों ने मनुष्य की सारी सभ्यता विकसित की है। बन्दर वहीं रुक गये हैं चार हाथ-पैर से चलने वाले। दो हाथ-पैर से चलने वाले बन्दर ने जमीन-आसमान का फर्क पैदा कर लिया। आज कोई कहे कि बन्दर और हम एक ही जाति के हैं, तो हमारा मन मानने को राजी नहीं होता। हमारे और बन्दर के बीच इतना फासला पड़ गया, लेकिन यह फासला एक टेक्निॉलाजिकल फर्क से पड़ा कि कुछ बन्दरों ने दो हाथ मुक्त कर लिये। दो हाथ खाली हो गये, स्वतंत्र हो गये काम करने को। दो पैर से काम चलने लगा और उन दो स्वतंत्र हाथों ने सारी सभ्यता, मकान, मंदिर, ताज, मस्जिद, साहित्य, संगीत, धर्म, इन सबकी फिक्र की।

बहुत शीघ्र संभावना है कि मनुष्य समस्त यंत्रों को स्वचालित निर्मित कर लेगा। अमरीका में तो उसका चिंतन और विचार तीव्र हुआ जाता है। वे कहते हैं कि आनेवाले पचास वर्षों में हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल यह होगा कि हम यंत्रों से सब पैदा कर लेंगे। मनुष्य के श्रम की कोई जरूरत न रह जायेगी। मनुष्य खाली हो जायगा। वह खाली मनुष्य क्या करेगा, यह हमारे सामने सवाल है। अगर सारे यंत्र स्वचालित हो गये और मनुष्य का श्रम उनसे मुक्त हो गया तो मेरी

दृष्टि में मनुष्य की चेतना में आमूलभूत परिवर्तन हो जायगा, क्योंकि पहली दफा चेतना पृथ्वी से पूरी तरह मुक्त हो जायगी--श्रम से और उस श्रम से शून्य अवस्था में जो खोज, जो यात्रा चेतना की होगी, वह उन्हें किस लोक में ले जायगी कहना कठिन है।

शायद आपको पता नहीं कि जगत् की सारी संस्कृति लीजर, विश्राम से पैदा हुई है। जगत् का सारा सत्य लीजर, विश्राम से पैदा हुआ है। जगत् में जो भी श्रेष्ठतम उपलब्धि हुई है वह उन लोगों से उपलब्ध हुई है जो श्रम से किसी भांति मुक्त हो गये। एथेंस में जितनी संस्कृति विकसित हुई, वह इसलिए विकसित हो सकी कि एथेंस में एक वर्ग, गुलामों के वर्ग ने सारा श्रम किया और दूसरे अभिजात वर्ग ने, बुर्जुआ ने कोई श्रम नहीं किया। वे भी श्रमहीन लोग थे। वे भी तो कुछ करेंगे जीने के लिए। उन्होंने फिलोसफी लिखी। उन्होंने सोक्रेटीज, अरस्तू और प्लेटो को जन्म दिया। भारत में भी ब्राह्मणों ने हिंदुस्तान के सारे साहित्य को, सारे विचार को जन्म दिया, क्योंकि ब्राह्मण श्रम से मुक्त हो गया था, अन्यथा कोई उपाय न था। शूद्रों ने एक उपनिषद् लिखी? शूद्रों ने एक वेद लिखा? शूद्रों ने आयुर्वेद खोजा? शूद्रों के ऊपर क्या उपलब्धि है भारत में? शूद्र के नाम पर कोई उपलब्धि नहीं है बेचारे के, क्योंकि वह चौबीस घंटे श्रम में लीन है। हिन्दुस्तान की सारी संस्कृति का जन्मदाता ब्राह्मण है और ब्राह्मण क्यों है जन्मदाता? ब्राह्मण इसलिए जन्मदाता है कि उसके हाथ से सारा श्रम समाप्त हो गया, उसका व्यक्तित्व पूरा का पूरा विश्राममय हो गया, चेतना को ऊपर उठने का मौका मिल गया, चेतना आकाश की यात्रा करने लगी। मनुष्य जाति के जीवन में एक आध्यात्मिक क्रांति हो जायगी उस दिन, जिस दिन हम सारी मनुष्य जाति को श्रम से मुक्त कर लेंगे। जब तक हम मनुष्य जाति को श्रम से मुक्त नहीं करते हैं, तब तक मनुष्य जाति के जीवन में बहुत बुनियादी रूपान्तर नहीं हो सकता है।

गांधीजी के जो विश्वास हैं, उनके हिसाब से मनुष्य जाति श्रम से कभी मुक्त नहीं होगी। अगर एक आदमी अपने लायक ही कपड़ा बनाना चाहे तो कम से कम उसे तीन चार घंटे रोज चरखा चलाना पड़ेगा। वर्ष भर में अपने लायक कपड़ा बनाना चाहे तो उसे तीन चार घंटे चर्खा चला लेना पड़ेगा। अगर उसके ऊपर निर्भर कोई एक व्यक्ति है तो उसका आठ घंटे चर्खा चलाने में व्यतीत हो जाना चाहिए। जो आदमी आठ घंटे चर्खा चलायेगा--सिर्फ कपड़ा बनाने के लिए वह और भी कुछ करेगा या नहीं और इतनी क्षुद्र चीजों में उसकी चेतना को उलझा देना क्या मनुष्य के भावी विकास के हित में हो सकता है? यह प्रश्न सिर्फ चर्खा

और तकली का नहीं है, यह प्रश्न मनुष्य जाति के जीवन में चेतना के जन्म, चेतना के विकास का प्रश्न है।

अभी अमरीका और रूस ने जो अंतरिक्ष यान भेजे, उन अंतरिक्ष यानों में जो यात्री गये, उनके अनुभव आपको पता है? उन्होंने लौटकर क्या खबरें दी हैं? उन्होंने खबरें दी हैं कि अंतरिक्ष में परिपूर्ण शून्य है, सन्नाटा है। वहाँ टोटल साइलेंस है, वहाँ कोई आवाज नहीं, क्योंकि वहाँ कोई हवा नहीं। अगर बोलियेगा भी तो होंठ हिलेंगे, आवाज नहीं होगी। वहाँ कभी कोई आवाज नहीं हुई। अंतरिक्ष परिपूर्ण शून्य है। उस शून्य में जाकर अंतरिक्ष यात्री को क्या अनुभव हुआ कि यह मस्तिष्क पूरा का पूरा फटने लगता है, घबराने लगता है। इतनी शांति कभी देखी नहीं, इतनी शांति कभी झेली नहीं। हमेशा शोरगुल, आवाज, रात सोते हैं तब भी बाहर आवाजें चल रही हैं, उनकी मस्तिष्क को आदत पड़ गयी है। मस्तिष्क उनसे कंडीशण्ड हो गया है। अंतरिक्ष में जाने पर उसको पता चला कि मस्तिष्क तो फट जायेगा। इतनी शांति को सहना मुश्किल है। तो रूस और अमरीका में उन्होंने कृत्रिम घर बनाये हैं जिनमें इतनी शांति पैदा करने की कोशिश की है जितनी अंतरिक्ष में है। वहाँ यात्री को पहले ट्रेनिंग दी जायेगी, लेकिन उस कमरे में बैठकर आध घंटे, १५ मिनट में घबरा कर यात्री बाहर आ जाता है कि वहाँ बहुत घबराहट होती है, लेकिन धीरे-धीरे उस शून्य को सहने की सामर्थ्य उसकी विकसित हो जायेगी। उसका अर्थ आप समझते हैं? उसका अर्थ यह है कि जो लोग अंतरिक्ष यान में यात्रा करेंगे उनके मस्तिष्क की बनावट में बुनियादी फर्क हो जायेगा उतनी शांति को सहने के कारण और यह हो सकता है कि एक बिल्कुल दूसरे तरह के मनुष्य का जन्म हो जाय जिसकी हमें कोई कल्पना भी नहीं हो सकती।

जीवन और उत्पादन के साधन, वाहन–कम्युनिकेशन के साधन अंततः चेतना में परिवर्तन लाते हैं। आपने देखा, जो जंगल में आदिवासी रहता है, उस आदिवासी ने कोई साक्रेटीज पैदा किया? कोई बुद्ध पैदा किया? कोई महावीर पैदा किया? कोई गांधी पैदा किया? वह कैसे पैदा करेगा? उसके उत्पादन के साधन इतने आदिम हैं कि उन आदिम उत्पादनों के साथ मस्तिष्क इतनी ऊंचाइयां नहीं ले सकता है जितनी ऊँचाइयां विकसित साधन के साथ ली जा सकती हैं। आपको ख्याल है, आज भी हिन्दुस्तान में श्री राधाकृष्णन् जैसे व्यक्तियों को हम विचारक कहते हैं। श्री राधाकृष्णन् टीकाकार हो सकते हैं, विचारक जरा भी नहीं। कोई एक मौलिक विचार को जन्म नहीं दिया है। पश्चिम में हाइडिगेर हैं, जास्पर्स है या सार्त्र है या कामू है या रसल है। इनकी कोटि का एक विचारक आप पैदा

नहीं कर सकते हैं आज। आप जिसको विचारक कहते हैं, क्या वही विचारक है ? गीता पर एक आदमी टीका लिख देता है तो विचारक हो जाता है, लेकिन गीता पैदा कर सके ऐसा एक विचारक आप पैदा नहीं कर सकते हैं। बस टीकाकार पैदा कर सकते हैं। उन्हींको विचारक मानकर शोरगुल मचाते रहते हैं। हाइडिगेर की हैसियत का एक विचारक हम पैदा नहीं कर सकते। उसका कारण ? उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास बुद्धि कम है, उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास प्रतिभा नहीं है, उसका कारण है कि हमारा पूरा सामाजिक परिवेश उतनी प्रतिभा को चैलेंज देनेवाला नहीं जहां से हाइडेगर या जास्पर्श जैसे लोग पैदा हो सकें। लेकिन हम बैठे हुए हैं और हमारा विचार चर्खा और तकली की प्रशंसा करता रहेगा और हम विचार करने को राजी नहीं हैं। इस बात के लिए समझ लेना आप ठीक से कि अगर पचास वर्ष में पश्चिम में सब कुछ स्वचालित यंत्र हो गये, अंतरिक्ष की यात्रा शुरू हुई तो इस बात का डर है कि पश्चिम में एक नये मनुष्य का, एक नयी ह्यूमैनिटी का जन्म हो जाय और पूरब के लोगों में और पश्चिम के लोगों में इतना फासला पड़ जाय हजार दो हजार वर्षों में, जितना बंदर और आदमी के बीच फासला पैदा हो गया है। लेकिन हमें कोई बोध नहीं है इस बात का। हम कहेंगे, हम तो स्वावलंबन की बातें कर रहे हैं। हम हमेशा से इसी तरह की बातें कर रहे हैं—हमेशा नुकसान उठाते रहे हैं, लेकिन हम जानने को भी राजी नहीं होना चाहते।

हिन्दुस्तान एक हजार साल से गुलाम था और हजारों साल से निरंतर हारता रहा है, जीत का उसने कभी कोई सपना नहीं देखा, जीत का कभी मौका नहीं पाया। हम क्यों हारते रहे ? कभी आपने सोचा ? हम हारते इसलिए रहे हैं कि जब भी दुश्मन हमारे ऊपर आया, उसके पास युद्ध की विकसित टेक्नॉलाजी थी। हमारे पास विकसित टेक्नॉलाजी न थी। सिकंदर हिन्दुस्तान आया वह घोड़े पर सवार होकर आया। पोरस उससे लड़ने गया। पोरस सिकंदर से कमजोर आदमी नहीं था और उसके पास बहादुर सैनिक थे, लेकिन पोरस के पास टेक्नॉलाजी जो थी अविकसित थी। वह हाथियों पर लड़ने गया था। हाथी कोई युद्ध का अस्त्र नहीं है। हाथी बरात निकालनी हो तो बहुत ठीक है, लेकिन युद्ध के मैदान पर हाथी पिछड़ा हुआ साधन है घोड़े के मुकाबले। घोड़ा तेज है, हाथी से ज्ञानवान है, ज्यादा चंचल है। हाथी जगह घेरता है, घोड़ा तेजी से गति करता है। सिकंदर के मुकाबले पोरस के हाथी हारे। सिकंदर से पोरस नहीं हारा है और हाथी जब घबरा गये युद्ध में तो उन्होंने अपनी सेनाओं को कुचल डाला। बाबर हिन्दुस्तान आया। बाबर के पास बारूद थी। हमारे पास बारूद का कोई उत्तर

न था। दूसरे मुल्क में हम लड़ने नहीं गये, दूसरे मुल्क के लोग लड़ने आये। हम अपने मुल्क में हारते रहे। इतनी बड़ी जनसंख्या लेकर हम बैठे हैं। परदेश से एक आदमी आयेगा कितनी फौजें लायेगा, कितनी फौजों को ला सकता है ? और हम उससे अपने मुल्क में हार जायेंगे। बारूद का हमारे पास कोई उत्तर न था। बारूद से हारने के सिवाय कोई रास्ता न था। हम बाबर से नहीं हारे, हम बारूद से हारे। बाबर में हमें हराने की हिम्मत न थी, लेकिन हमारे पास कोई टेक्नीक न थी। अंग्रेज हिन्दुस्तान में आये, हमारे पास बंदूकें थीं, अंग्रेज के पास विकसित तोपें थीं। हम अंग्रेजों से नहीं हारे, बंदूकें तोपों से हारेंगी ही, इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है।

और अब हम फिर वही बातें किये चले जा रहे हैं कि टेक्नॉलाजी नहीं, बड़े यंत्रों का क्या करना है, बड़े विकास का क्या करना है, चर्खा-तकली से चलाना है, उसीसे चला रहे हैं। हम पाँच हजार वर्षों से और रोज मात खाते रहे हैं, रोज जमीन चाटते रहे, लेकिन वही बातें हम जारी किये हुए हैं और अगर कोई कहे कि यह गलत है, हमें विकास के सारे साधनों का उपयोग करना है, हमें बहुत शीघ्र बीस वर्षों में सारी दुनिया के सामने खड़े हो जाना है अन्यथा हम कहीं के नहीं रह जायेंगे तो हम उसके विरोध में टूट पड़ेंगे कि हमारे महापुरुषों की आलोचना हो गयी। यह महापुरुष की आलोचना का सवाल नहीं है, मुल्क की जिन्दगी का सवाल है। मैं जो विकसित टेकनीक के पक्ष में बोल रहा हूँ वह इसलिए नहीं कि मुझे चर्खे से कोई दुश्मनी है, न तकली से मुझे दुश्मनी है, न मैं इस ख्याल का हूँ कि चर्खा तकली चलने बन्द हो जाने चाहिए। जब तक कोई उपाय नहीं है वह चले, लेकिन मजबूरी हो उनको चलाना, हमारा सिद्धांत नहीं। यह फर्क समझ लेना जरूरी है। विवशता हो हमारी, हम मजबूर हैं, इसलिए कुछ नहीं कर पा रहे हैं तो चला रहे हैं। लेकिन जैसे ही हमें मौका मिलेगा हम उनसे मुक्त हो जायेंगे। यह हमारी दृष्टि हो, वे हमारे प्रतीक न बन जायें। हमारी कमजोरी के प्रतीक हों, हम नहीं विकसित कर पाये इसके प्रतीक हों। उनको हम छाती का श्रृंगार न बना लें और यह न घोषणा करते फिरें कि हम बहुत ऊँचा काम कर रहे हैं।

नहीं, खादी से मेरा कोई विरोध नहीं है लेकिन खादी को मैं कोई आर्थिक संयोजन का सिद्धांत नहीं मानता हूँ। खादी कोई आर्थिक चीज नहीं हो सकती। खादी का एक एस्थेटिक मूल्य हो सकता है, एक सौन्दर्यगत मूल्य हो सकता है। किसी आदमी को हाथ सेबनायी हुई चीज पहनने में रस हो सकता है। दुनिया कितनी ही विकसित हो जाय तो भी घर के उद्योग जारी रहेंगे। होटलों में कितना

ही अच्छा खाना बनने लगे, तो भी कोई गृहिणी अपने घर खाना बनाना पसंद करेगी और यह भी हो सकता है कि घर बनाया हुआ खाना होटल से अच्छा न हो तो भी घर का खाना के खानेका आनंद अलग है। लेकिन उसका मूल्य एस्थेटिक है। उसका मूल्य आर्थिक नहीं है, उसका मूल्य वैज्ञानिक नहीं है। अगर मेरी मां मुझे कुछ खाना बनाकर खिलाती है, हो सकता है होटल के रसोइए बेहतर बनाते हों, लेकिन होटल के रसोइए के खाने से मुझे मेरी मां का खाना अच्छा लगेगा। लेकिन मैं यह कभी नहीं कहूँगा कि यह डाइटीशियन के हिसाब से ज्यादा बेहतर खाना है। मैं इतना ही कहूँगा कि यह मेरी मां और मेरा एक प्रेम है और एक लगाव है इसलिए यह मुझे अच्छा लग रहा है। इसका संबंध फीलिंग से हुआ, डाइट के साइंस से नहीं। लेकिन जब मैं यह घोषणा करने लगूं कि मां के हाथ का बनाया हुआ खाना डाइट की दृष्टि से, भोजन-शास्त्र की दृष्टि से ऊँचा होता है तो फिर मैं गड़बड़ में पड़ गया। तो फिर मैं कठिनाई में पड़ गया। खादी एक एस्थेटिक मूल्य रखती है। जिन्हें प्रीतिकर हो खादी पहन सकते हैं, जिन्हें प्रीतिकर हो वे चर्खा चला सकते हैं। किसीको रुकावट डालने की कोई जरूरत नहीं, लेकिन खादी को आर्थिक संयोजना का, इकोनामिक प्लानिंग का हिस्सा नहीं समझा जा सकता और खादी को आर्थिक सिद्धांत नहीं माना जा सकता। मैं खुद खादी पहनता हूँ। मुझे खुद दूसरे कपड़े के बजाय खादी ज्यादा पोइटिक, ज्यादा काव्यात्मक मालूम पड़ती है। मुझे खुद खादी में ज्यादा पवित्रता, ज्यादा स्वच्छता, ज्यादा सफेदी मालूम पड़ती है, लेकिन यह मेरी व्यक्तिगत पसंद हुई। यह हाबी हो सकती है, यह अपना सुख हो सकता है और हाबी के लिए मंहगे से मंहगा खर्च करना पड़ता है--सो खादी काफी मंहगी हाबी है। जो धोती दस रुपये में मिल सकती है मिल की वैसी खादी की पचास रुपये में मिलेगी और वह पचास में भी सिर्फ इसलिए मिलती है कि कर चुकाने वालों से पन्द्रह रुपये लेकर खादी पहनने वालों को चुकाये जा रहे हैं। पैंसठ रुपये की चीज पचास रुपये में पड़ती है, पहनने वाले को पन्द्रह रुपये सरकार दे रही है। यह हैरानी की बात है। जिसको शौक हो वह पैंसठ, सत्तर, अस्सी खर्च करे। लेकिन जो खादी नहीं पहनता है उससे, पन्द्रह रुपये उसकी जेब में से निकालकर मुझे खादी पहनायी जाय यह समझ के बाहर है। इसका कोई अर्थ नहीं, यह खतरनाक बात है।

लेकिन हम विचार करने को राजी होने को राजी नहीं हैं। हम सोचने को भी राजी नहीं हैं। इससे क्या पता चलता है? सोचने से इतना भयभीत होने का मतलब क्या होता है? इसका साफ मतलब यह होता है कि हम बहुत भली-भांति जानते हैं कि इन चीजों पर सोचा तो सोचने में ये चीजें बह जायेंगी, ये

बच नहीं सकतीं। जब आदमी डरता है कि जिन चीजों के सोचने से चीजों के मिट जाने का डर है, अनकांसेसली वह अनुभव करता है कि हमने सोचा कि ये गयीं, तो वह सोचने से भयभीत हो जाता है। फिर वह कहता है कि सोचो मत, जो है वह ठीक है, आँख बन्द रखो। आंख बन्द रखने का मतलब यह है कि आप जानते हैं कि आंख खुलते ही जो दिखायी पड़ेगा वह वही नहीं होने वाला है, जो आप समझते रहे। वह तथ्य दूसरा है जो आंख खोलने से दिखायी पड़ेगा। इसलिए कमजोर लोग आंखें बन्द करना शुरू कर देते हैं, लेकिन अगर पैर में पीड़ा है और उसे छिपा लें आप तो स्वस्थ नहीं हो जाते और अगर कोई कहे कि जरा आप कपड़ा उठाइये और आप कहें कि क्यों कपड़ा उठाऊं, तुमने मेरी कपड़ा उठाने की बात की तो उससे भी आप स्वस्थ नहीं हो जाते, बल्कि आपकी यह घबराहट बताती है कि कपड़े के पीछे कुछ आप छिपाये हैं जिसे आप जानते भी हैं और नहीं भी जानना चाहते हैं। जिसे आप पहचानते भी हैं लेकिन पहचानना भी नहीं चाहते हैं, मुकरना चाहते हैं, पीठ फेर लेना चाहते हैं। जब भी कोई कौम विचार करने से डरने लगती है तो समझ लेना कि उस कौम ने कुछ बेवकूफियां पाल रखी हैं जिनकी वजह से वह विचार करने से डरती है। सत्य कभी भी विचार करने से भयभीत नहीं होता है, असत्य हमेशा विचार करने से भयभीत होता है।

हमारे महापुरुष असत्य हैं या सत्य, अगर उन पर विचार करने से भय मालूम होता है तो तुम समझ लेना कि तुम बहुत भीतर मन में जानते हो कि ये महापुरुष हमारे बनाये हुए हैं, ये असली महापुरुष नहीं हैं। लेकिन अगर तुम विचार करने की हिम्मत कर सकते हो तो ही पता चलता है कि तुमने स्वीकार किया है कि महापुरुषों में कुछ बल है। हमारे विचार करने से वह नष्ट हो जाने वाला नहीं है। जो व्यर्थ होगा वह जल जायगा। हम सोने को आग में डालने से डरते नहीं, क्योंकि जो कचरा होगा वह जल जायगा और जो सोना है वह बचकर बाहर निकल आयेगा। लेकिन कचरा ही कचरा पास में हो तो उसको फिर हम आग में डालने से बहुत डरेंगे।

मैं गांधी को आग में डालने से नहीं डरता हूं, क्योंकि मैं मानता हूं कि उनमें बहुत कुछ सोना है। कचरा जल जायगा और सोना निखर कर बाहर आ जायगा। लेकिन उनके भक्त बहुत भयभीत होते हैं। उनके भक्त क्या डरते हैं कि गांधी जल जायेंगे उन पर विचार करने से? उनके एक भक्त ने अभी चिट्ठी लिखी है कि मैं और कुछ भी करूं, कम से कम गांधी को सिर्फ गांधी न कहा करूं। उन्होंने सलाह दी है कि मैं गांधी को 'महात्मा गांधीजी' कहूं।

यह थोड़ा सोचने जैसा है कि हम गांधी को गांधीजी कहें, इसमें ज्यादा

आदर है या गांधी कहने में ज्यादा आदर है। परमात्मा के साथ हम जी नहीं लगाते कि परमात्मा जी। परमात्मा को हम कहते हैं परमात्मा। परमात्मा को हम कहते हैं तू। आप आइयेगा तो मैं आपसे कहूंगा आप। परमात्मा से कभी किसीने आप कहा है? परमात्मा को हम कहते हैं तू, हे परमात्मा तू! तू अनादर नहीं है और गांधी अनादर है? इतना प्रेम है मेरे मन में कि जी लगाने से मुझे नहीं लगता है कि गांधीजी की इज्जत बढ़ती है। यह छोटे-मोटे के साथ जी लगाने से इज्जत बढ़ती होगी, गांधी के साथ जी लगाने से इज्जत कम होती है। जी हम उनके साथ लगाते हैं जिनके साथ लगाने जैसा भीतर कुछ भी नहीं, बाहर से जी लगाकर इज्जत जोड़ देते हैं। महावीर को मैं महावीर कहता हूं, उनको महावीर जी कहने से ऐसा लगेगा कि कोई केराने की दूकान के मालिक हैं। गौतम बुद्ध को मैं बुद्ध कहता हूं। बुद्ध जी लगाने से वे ओछे और छोटे पड़ जायेंगे। जहां आदमी आप से ऊपर उठ जाता है और तू में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए मैं जी वगैरह नहीं लगाऊंगा और न महात्मा कहूंगा, लेकिन यह घबराते कैसे हैं लोग कि जी नहीं लगाया तो मुश्किल हो गयी। ये अपनी ही बुद्धि से सोचते हैं। जितनी उनकी हैसियत है। अगर उनसे कोई जी न लगाया और आप न कहें तो वह बेचैनी में पड़ जायगा। ये बेचारे अपनी ही शक्ल में महापुरुषों को भी सोचते रहते हैं। नहीं, मैं नहीं लगाऊंगा और आप लगाते हैं तो आपसे कहूंगा कि मत लगाना, अपमानजनक है, इनसल्टिंग है। हम अपने महापुरुषों को तो इतने प्रेम से पुकार सकते हैं, बीच में जी और आदर सब लगाने की जरूरत नहीं है। शायद आपको ख्याल न हो कि हम जब आदर प्रकट करते हैं तो हम क्यों प्रकट करते हैं। जब हम शब्दों में आदर बताते हैं तो क्यों बताते हैं? शब्दों में आदर इसलिए बताना पड़ता है कि अगर शब्द में न बतायें तो और तो कोई आदर हमारे पास नहीं है। शब्द ही आदर है। जब हृदय में आदर होता है तो शब्दों में हम विचार नहीं करते, फिक्र नहीं करते और जब हृदय में आदर नहीं होता तो हम शब्दों की बहुत फिक्र करते हैं कि क्या कहें, क्या नहीं कहें, कौनसा शब्द उपयोग किया, कौनसा नहीं किया।

बर्नाड शा की एक घटना मुझे याद आती है। उसका संक्षिप्त नाम था जे० बी० एस०। जार्ज बर्नाड शा। उसकी मां मर गयी तो उस दिन से उसने जे० बी० एस० लिखना बन्द कर दिया, सिर्फ बी० एस० लिखने लगा--बनार्ड शा लिखने लगा। उसके मित्रों ने पूछा, तुम जे० बी० एस० क्यों नहीं लिखते हो अब? उसने कहा कि सिर्फ मेरी एक मां थी जिसका मेरे ऊपर इतना प्रेम था जो मुझे जार्ज कहती थी। वह चली गयी दुनिया से। अब उतना प्रेम मेरे ऊपर किसीका

भी नहीं है कि कोई मुझे जार्ज कहे। वह सब मुझे बर्नार्ड शा कहते हैं। बर्नार्ड शा उतना प्यारा नाम नहीं है। मेरी मां उठ गयी दुनिया से। उसका प्रेम इतना था कि वह मुझसे जार्ज कहती थी। वह जार्ज मैंने अलग कर दिया। अब कोई भी मुझे उस नाम से बुलायेगा नहीं। कोई जार्ज नहीं कहेगा। बर्नार्ड शा ने कहा कि मेरी मां के मरने से मैं पहली दफा बूढ़ा हो गया हूं। मेरी मां जिन्दा थी तो मैं बूढ़ा नहीं था। मुझे लगता था कि मैं भी बच्चा हूं, क्योंकि मुझे जार्ज कहकर बुलाती थी। इतना प्रेम था उसका। अब मैं बूढ़ा हो गया, अब मेरी मौत करीब आने लगी। अब मुझे लगता है कि इतना प्रेम कोई भी मुझे नहीं करता है। प्रेम के अपने रास्ते होते हैं, श्रद्धा के अपने रास्ते हैं। लेकिन जो न प्रेम जानते हैं, न श्रद्धा जानते हैं सिर्फ थोथा शिष्टाचार जानते हैं उन बेचारों को प्रेम और श्रद्धा के रास्ते का कोई पता नहीं होगा। वे शिष्टाचार में ही सब कुछ समझते हैं जिनके बीच प्रेम नहीं है। जिनके बीच प्रेम है उनके बीच शिष्टाचार समाप्त हो जाता है। महापुरुष हम उसे कहते हैं जिसके पास समाज का शिष्टाचार समाप्त हो गया है, उससे हम सीधी-सीधी बात कर सकते हैं। इसलिए मैं क्षमा नहीं मागूंगा कि गांधी को गांधीजी नहीं कहता या महात्मा नहीं लगाता। नहीं, कभी नहीं लगाऊंगा, लगाने की कोई जरूरत नहीं है।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि गांधी ने, गांधी के विचार ने देश को आजादी दिलायी। मैं मना नहीं करता। यह भी मैं मना नहीं करता कि उन्होंने देश के लिए कितना काम किया है। शायद इस देश के पूरे इतिहास में किसी एक मनुष्य ने देश के लिए इतना काम नहीं किया है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उनके प्रति अंधे हो जायं। वे भी पसंद नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति अंधे हो जायें, वे भी पसन्द नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति सोचना विचारना बन्द कर दें। उनका हमारे ऊपर ऋण बहुत ज्यादा है। इसीलिए तो मैं सोचता हूं कि उन पर हमें बार-बार विचार करना चाहिए। उन पर बार-बार विचार करने का अर्थ ही यही है कि मैं मानता हूं कि उनका ऋण हमारे ऊपर बहुत ज्यादा है और उस ऋण से उऋण होने का एक ही रास्ता है कि हम निरंतर सोचें, निखारें उनके विचार को और उनके विचार में जो श्रेष्ठतम है उसके अनुकूल देश को ले जा सकें। लेकिन श्रेष्ठतम का पता कैसे चलेगा? एक बड़ी जिन्दगी बहुत बड़ी जिन्दगी क्या है श्रेष्ठ, क्या है भविष्य के योग्य, क्या व्यर्थ हो गया, क्या अप्रासंगिक हो गया, क्या समय के बाहर हो गया—यह सब सोचना पड़ता है। महापुरुष भी पचास वर्ष, साठ वर्ष, सत्तर वर्ष जीता है तो सत्तर वर्ष में हजारों घटनाएं घटती हैं। वे सारी की सारी घटनाएं देश के भविष्य के लिए उपयोगी

नहीं होती। नहीं हो सकती हैं। उनमें से क्या है, छांट लेना है, लेकिन हम ऐसे अंधे लोग हैं कि जब हम किसीको महापुरुष कहते हैं तो उसके सब कुछ को महापुरुष मान लेते हैं। इससे बड़ी भूल पैदा हो सकती है। इससे बुनियादी भूल पैदा हो सकती है। महापुरुष जो करता है, महापुरुष जिस समय में जीता है, जिस सामयिक प्रसंगों पर चुनौती झेलता है उसमें से बहुत-सा उसी दिन व्यर्थ हो जाता है। उसमें से बहुत-सा बाद में व्यर्थ हो जाता है। शाश्वत बहुत थोड़ा रह जाता है। अधिकतम तो कंटेम्प्रेरी प्राबलम होता है, इंटरनल प्राबलम तो बहुत कम होता है और गांधी के जीवन में बुद्ध और महावीर के बजाय कंटेम्प्रेरी प्राबलम ज्यादा है। इसलिए महावीर और बुद्ध की बात में सनातन प्रश्न ज्यादा है, क्योंकि उन्होंने समाज और जीवन के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ ही नहीं। गांधी ने जीवन और समाज के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ है। गांधी के व्यक्तित्व और विचार में, गांधी के कर्म में और जीवन में ९० प्रतिशत सामयिक है, १० प्रतिशत सनातन है। उस सामयिक से हमको छुटकारा पाना होगा और सनातन की खोज करनी पड़ेगी। लिखा नहीं है कि क्या सनातन है और क्या सामयिक है, खोज करनी पड़ेगी, सोच करना पड़ेगा, विचार करना पड़ेगा, काट-छांट करनी पड़ेगी। जो गांधी व्यतीत हो गये, अतीत हो गये उन्हें हटा देना होगा। जो गांधी आगे भी साथ के होंगे, कल भी सार्थक होंगे, उनको बचा लेना होगा। अंततः निखरते वही सूत्र शेष रह जायेंगे जो सनातन हैं, जिनका समय से कोई संबंध नहीं है, जिनका मनुष्य के शाश्वत जीवन से संबंध है। तब हम गांधी को निखार पायेंगे।

लेकिन भक्त अंधा होता है, वादी अंधा होता है। वह कहता है कि हम पूरा मानेंगे या बिल्कुल नहीं मानेंगे। वह दो ही बातें मानता है। या तो पागल अनुगमन या पागल विरोध। जीवन में इस तरह हां और ना में उत्तर नहीं होते। जीवन बहुत जटिल है। जीवन कोई इकट्ठा हां और ना नहीं है कि हमने कह दिया हां या हमने कह दिया ना। भक्त कहता है कि या तो हम कहेंगे ना, कहेंगे कि नहीं मानता गांधी को या कहेंगे कि मानते हैं तो पूरा मानते हैं। ये दोनों ही दृष्टियां गलत हैं। सोचना होगा, अपने विवेक से खोजना होगा, देखना होगा, परखना होगा, जांच करनी होगी, प्रयोग करने होंगे और तब जो विवेक के अनुकूल बचता जायेगा वही शाश्वत होता चला जायगा। शेष समय की परिधि में खोता चला जायगा। खो ही जाना चाहिए। समय के साथ ही वह खो जाना चाहिए जिसे समय ने पैदा किया था। लेकिन हम अपने पागलपन में उसे बचाकर रखना चाहते हैं। उससे हमारे महापुरुष को फायदा नहीं होता, नुकसान होता

है, क्योंकि महापुरुष रोज-रोज नया नहीं हो पाता, ताजा नहीं हो पाता। बासी पड़ जाता है, पुराना पड़ जाता है। वह जो-जो बासी पड़ जाता है उसे काट देने की जरूरत है ताकि नया ताजा रोज निखर कर बाहर आता चला जाय और जिसे हमने प्रेम किया हो, जिसे हमने श्रद्धा दी हो वह हमारे लिए सनातन साथी बन सके। लेकिन हम जिस तरह से व्यवहार करते हैं, उस तरह से यह नहीं हो सकता है।

मैं नहीं कहता हूं कि गांधी का हमारे ऊपर ऋण नहीं है, कोई पागल होगा जो ऐसा कहेगा। ऋण उनका महान् है लेकिन उस ऋण के कारण इतने मत दब जाना कि गांधी का जो सामयिक तत्त्व है वह हमें सनातन सत्य जैसा मालूम पड़ने लगे। यह उचित नहीं है।

किसी मित्र ने पूछा है कि हम तो गांधी जितने बड़े नहीं हैं, तो हम उनकी आलोचना कैसे कर सकते हैं?

अभी तक कोई तराजू कहीं दुनिया में नहीं है कि तौला जा सके कि कौन बड़ा है और कौन छोटा। कोई तराजू दुनिया में आज तक विकसित नहीं हुआ कि हम तौल सकें कि कौन बड़ा है, कौन छोटा है। सच बात तो यह है कि एक-एक आदमी अपने-अपने जैसा है। 'कंपेरीजन' की कोई संभावना नहीं है। गांधी की किसीसे तुलना नहीं हो सकती। आपकी भी किसीसे तुलना नहीं हो सकती। एक साधारण से साधारण आदमी भी अनूठा और अद्वितीय है। न किसीसे छोटा है, न किसी से बड़ा, क्योंकि छोटे और बड़े हम तब हो सकते हैं जब हम एक जैसे हों। एक जैसे अगर हम हों तो पता चल सकता है कि कौन छोटा है कौन बड़ा, लेकिन हममें से प्रत्येक अपने जैसा है—दूसरे जैसा है ही नहीं, इसलिए छोटे-बड़े को तौलने की, कंपेयर करने की कोई सुविधा नहीं है। गांधी को जब आप बड़ा कहते हैं तब भी आप भूल कर रहे हैं, क्योंकि जैसे ही आपने तौला, बड़ा आपने कहा तो आपने तौल शुरू कर दी, गांधी आपके हाथ से तुल गये। फिर कल कोई दूसरा मिल सकता है, वह कहेगा महावीर और बड़े हैं, बुद्ध और बड़े हैं। यही पागलपन तो हजारों साल से चल रहा है। जैन कहते हैं कि महावीर से बड़ा कोई भी नहीं, बौद्ध कहते हैं बुद्ध से बड़ा कोई भी नहीं है। मुसलमान कहते हैं मुहम्मद से बड़ा कोई भी नहीं है, ईसाई कहते हैं जीसस से बड़ा कोई भी नहीं है। इसी पागलपन से सारी मनुष्य जाति कट गयी और नष्ट हो गयी। फिर वही जारी रखोगे कि कौन बड़ा है, कौन छोटा? कैसे तय करोगे, कौन तय करेगा? कौन है निर्णायक, जजमेंट कौन देगा? जजमेंट आप दोगे? अगर आप जजमेंट दे सकते हैं कि गांधी बड़े हैं तो आप गांधी से

बड़े हो गये, क्योंकि जजमेंट देनेवाला हमेशा बड़ा होता है। आप हो निर्णायक ? तब तो स्वभावतः गांधी खिलौना हो गये। तराजू पर रखकर आपने तौल लिया। कौन किसको तौलेगा ?

ये हमारे सोचने के ढंग, व्यक्तियों को तौलने के ढंग निहायत अपरिपक्व हैं। कोई मनुष्य तौला नहीं जा सकता है। गांधी तो ठीक हैं, साधारण से साधारण मनुष्य तक नहीं तौला जा सकता। कोई नहीं जानता है कि छोटे-से मनुष्य में क्या घटना घट जायगी।

एक गांव में बुद्ध का आगमन हुआ था। गांव में था एक गरीब चमार। गांव के सम्राट को पता चल गया था कि बुद्ध आते हैं, लेकिन गरीब चमार को कहां फुर्सत थी, कहां पता चले ? उसे पता भी नहीं था कि बुद्ध आते हैं। बुद्ध के आने का पता चलने की भी सुविधा तो चाहिए। वह बिचारा दिन भर अपने काम में रहा। रात थका-मांदा सो गया। सुबह अपने झोपड़ें में उठा। उस चमार का नाम था सुदास। उठा, झोंपड़े के पीछे छोटी सी एक गंदी तलैया थी। उठा सुबह तो देखा कि उसमें एक कमल का फूल खिला है। बिना मौसम का फूल था, अभी मौसम नहीं था कमल का। वह सुदास बहुत हैरान हुआ। फिर बहुत खुश हुआ। फूल तोड़कर भागा बाजार की तरफ कि कोई न कोई जरूर रुपये दो रुपये इस फूल का दे देगा। फूल बड़ा था, सुन्दर था, बेमौसम का था। जरूर इसके पैसे मिल जायेंगे। वह बाजार की तरफ भागा चला जा रहा है कि नगर का जो धनपति था, नगर सेठ, वह रथ पर बैठा हुआ आ रहा था। वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया। उस धनपति ने कहा, कितना लोगे, इस फूल का ? सुदास ने कहा, जो भी आप दे देंगे, आपकी कृपा। उसने अपने सारथी से कहा कि पाँच रुपये इसे दे दो। सुदास तो हैरान हुआ, क्योंकि पाँच बहुत ज्यादा थे। वह सोचता था कि एक भी मिल जाय तो बहुत है। वह एकदम हैरान हुआ। उसने कहा, पांच रुपये ! यह बात ही चलती थी कि पीछे से वजीर—मंत्री घोड़े पर सवार आ गया। उसने कहा कि बेचना मत फूल। फूल मैंने खरीद लिया। धनपति जितना देते हैं उससे पांचगुना मैं दूंगा। सुदास तो हक्का-बक्का हो गया। उसने कहा कि २४ रुपये। आप कहते क्या हैं, एक साधारण से फूल के ? क्या बात है ? आप पांच देते थे। धनपति ने कहा, फूल मैं खरीदूंगा किसी भी कीमत पर। वजीर जितना बोलता जाय मैं पांचगुना ज्यादा दूंगा। वह तो मांग बढ़ती चली गयी और सुदास भौंचक्का। वह ठहराव मुश्किल हो गया तभी राजा का रथ भी आ गया और उस राजा ने कहा कि फूल खरीद लिया गया। जो भी दाम तू मांगेगा, मुंहमांगा दाम दे दूंगा। सुदास कहने लगा कि

आप सब पागल हो गये हैं। इस फूल की कोई कीमत नहीं है। हजारों कीमत तो बढ़ चुकी है और आप कहते हैं कि मुंहमांगा देंगे। बात क्या है सम्राट ? सम्राट ने कहा, शायद तुझे पता नहीं, बुद्ध का आगमन हो रहा है गांव में। हम उनके स्वागत को जाते हैं। बेमौसम का फूल उनके चरणों में चढ़ायेंगे वह भी हैरान हो जायेंगे कि कमल, बेमौसम का फूल ! बुद्ध के चरणों यह फूल मैं ही चढ़ाऊंगा। नगर सेठ ने कहा, नहीं यह नहीं हो सकेगा, सम्राट। फूल को मैंने पहले देखा है। पहले मैंने खरीद-फरोक्त शुरू की है। मैं पहला ग्राहक हूं। इनका विवाद चलता था। सुदास ने कहा, क्षमा करिये, फूल मुझे बेचना नहीं है। जब बुद्ध आते हैं गांव में तो फूल मैं ही चढ़ा दूंगा। पर वे कहने लगे, सुदास तू पागल है क्या ? जितना पैसा चाहे ले ले, तेरी चमारी मिट जाय सदा, गरीबी मिट जाय सदा को। तेरे जन्म-जन्म आगे के बच्चे को भी सुख हो जायगा। जितना चाहे ले ले। सुदास ने कहा, नहीं, अब पैसे का क्या करेंगे, मैं ही चढ़ा दूंगा बुद्ध को। नहीं बेचा फूल। सम्राट नहीं खरीद सके गरीब का फूल, एक चमार का। सम्राट तो रथ पर पहुंच गये पहले, नगर सेठ पहुंच गया, वजीर पहुंच गया। उन्होंने बुद्ध को जाकर यह कहा कि आज एक अद्भुत घटना घट गयी। यह गरीब आदमी, जिसकी कोई हैसियत नहीं, जिसके पास कल का खाना नहीं होता उसने लाखों रुपये पर लात मार दी और कहता है, फूल मैं ही चढ़ाऊंगा। सुदास आया पीछे पैदल चलता हुआ। बुद्ध के चरणों पर फूल रखकर हाथ जोड़कर सिर पैर पर रखकर जाने लगा। बुद्ध ने कहा, पागल है सुदास, तुझे फूल बेच देना था। सुदास ने कहा, भगवन्, संपत्ति ही सब-कुछ नहीं है। संपत्ति से भी बड़ा कुछ है और आपके पैरों में फूल रखकर मुझे जो मिल गया वह मुझे कितनी भी संपत्ति से कभी नहीं मिल सकता। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, भिक्षुओ, देखो, इस सुदास को। एक साधारण से जन में भी, एक साधारण से मनुष्य में भी परमात्मा का इतना प्रकाश पैदा हो सकता है। सुदास गांव का एक चमार, एक दीन हीन है, लेकिन इतने प्रेम की संभावना इस सुदास में ! इतने प्रेम की संभावना, इतनी श्रद्धा की संभावना, इस सुदास में। बुद्ध कहने लगे कि मैं घूमता हूं वर्षों से गांव-गांव, कितने-कितने लोग मिले। नहीं सुदास, तू अद्वितीय है। तेरा जैसा व्यक्ति तू ही है। कौन कहेगा, कौन है बड़ा, कौन है छोटा ? कौन कहेगा, किसके भीतर से क्या प्रकट हो सकता है ? तो कौन जानता है कौन सा बीज कितना बड़ा फूल बनेगा ?

लेकिन जल्दी से तौलने की हमारी इच्छा बड़ी तीव्र होती है। नहीं कोई जरूरत है तौलने की। गांधी गांधी हैं, मैं मैं हूं, आप आप हैं। तौलने का

कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन यह गांधी को बड़ा कहने का कारण क्या हो सकता है फिर ? अगर हम तौल नहीं सकते, समर्थ नहीं तौलने में तो यह कहने का कारण क्या हो सकता है कि गांधी महान् हैं ? शायद आपको सीक्रेट का कोई पता न हो, यह एक बड़ा राज है। जब हिन्दू यह कहता है कि हिन्दू धर्म महान् है तो आप समझते हैं कि उसका मतलब क्या है ? वह यह कहता है कि हिन्दू धर्म महान् है और मैं हिन्दू हूं, मैं महान् हूं यह तर्क है। यह तर्क सरल नहीं है। जब एक आदमी कहता है कि भारत पृथ्वी पर सबसे महान् देश है तो मतलब आप जानते हैं क्या कहता है ? वह यह कह रहा है कि भारत सबसे बड़ा देश है, मैं भारत का निवासी हूं, मैं बड़ा आदमी हूं। पीछे अहंकार है इस तुलना के पीछे, इगो है। आदमी बहुत अहंकारी है। सीधे अगर वह कहेगा कि मैं बड़ा हूं तो बड़ी मुश्किल बात है। वह कहता है मेरा गुरु बड़ा है और बड़े गुरु का मैं बड़ा चेला हूँ।

मैंने सुना है, फ्रांस में एक दर्शन-शास्त्र का प्रोफेसर था। पेरिस के विश्वविद्यालय में वह दर्शन-शास्त्र का अध्यक्ष था। वह एक दिन सुबह-सुबह आया और अपने क्लास के विद्यार्थियों से कहने लगा कि तुम्हें पता है, मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। उसके विद्यार्थियों ने कहा, आप ? बेचारा गरीब शिक्षक था, फटे कपड़े पहने हुए था। समझ गये उसके विद्यार्थी हो गये पागल। दार्शनिकों के पागल हो जाने की संभावना रहती ही है, दिमाग इनका बाहर हो गया है मालूम होता है। एक विद्यार्थी ने पूछा, महाशय, आप अपने बाबत कह रहे हैं कि आप दुनिया के सबसे बड़े आदमी हैं ? उसने कहा, हां, मैं कह रहा हूं कि मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। न केवल मैं कह रहा हूं, मैं तर्क-शास्त्र का अध्यापक हूँ, मैं सिद्ध भी कर सकता हूं। उसके विद्यार्थियों ने कहा, बड़ी कृपा होगी, यदि आप सिद्ध कर सकेंगे। उसने छड़ी उठायी, और नक्शे के पास गया जहाँ दुनिया का नक्शा टंगा था क्लास में। उसने कहा, मेरे बच्चो, मैं तुमसे पूछता हूं कि इस सारी बड़ी पृथ्वी पर सबसे महान् और सबसे श्रेष्ठ देश कौन सा है ? वे सभी फ्रांस के रहने वाले थे। उन सबने कहा, निश्चित ही फ्रांस है, इसमें कोई संदेह है ? यह तो निश्चित है कि फ्रांस से महान् कोई भी देश नहीं है। उसने कहा, तब एक बात तय हो गयी कि फ्रांस सबसे महान् है इसलिए बाकी दुनिया की फिक्र छोड़ दो। अब अगर मैं सिद्ध कर सकूं कि फ्रांस में मैं सबसे महान् हूं तो मामला हल हो जायगा। विद्यार्थी तब भी नहीं समझे कि तर्क कहां जायेगा। फिर उसने कहा कि फ्रांस में सबसे महान् और श्रेष्ठ नगर कौन सा है ? विद्यार्थियों ने कहा कि पेरिस। वे सभी पेरिस के रहने वाले थे। उसने कहा, तब फ्रांस की फिक्र छोड़ दो। अब सवाल सिर्फ पेरिस का रह गया। अगर मैं सिद्ध कर दूँ कि पेरिस

में मैं सबसे महान् हूँ तो बात खत्म हो जायगी। तब विद्यार्थियों को शक पैदा हुआ कि यह तो मामला बहुत अजीब है, यह कहां ले जा रहा है आदमी और तब उस प्रोफेसर ने पूछा कि और पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान कौन सा है ? युनिवर्सिटी, विश्वविद्यालय, विद्या का केन्द्र, मंदिर। विद्यार्थियों ने कहा यह तो ठीक है। विश्वविद्यालय ही सबसे पवित्रतम और श्रेष्ठतम स्थान है। तब उनका तर्क हो चुका था। उस प्रोफेसर ने कहा, तब मैं तुमसे पूछता हूँ, पेरिस को जाने दो, रह गया युनिवर्सिटी का केम्पस। युनिवर्सिटी के इस केम्पस में सबसे श्रेष्ठतम विषय और डिपार्टमेण्ट कौन सा है ? वे सभी विद्यार्थी फिलॉसोफी के विद्यार्थी थे। उन्होंने कहा, फिलॉसोफी। और उसने कहा, अब तुम समझे कि मैं फिलॉसोफी का हेड आफ दि डिपार्टमेण्ट हूं।

इतना लम्बा तर्क इस छोटे से 'मैं' को सिद्ध करने के लिए है। लेकिन आदमी की चालाकियां, कनिंगनेस पहचानना बहुत मुश्किल है। वह कहता है, भारत महान् देश है और उसके भीतर जाकर पूछा उसके प्राणों के प्राणों में तो वह यह कह रहा है कि मैं महान् हूं।

बर्नार्ड शा ने एक बार अमरीका के दौरे में यह कहा कि गेलेलिओ, कापरनिकस ये वैज्ञानिक सब गलत कहते हैं। सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। पृथ्वी कभी सूरज का चक्कर नहीं लगाती है। अब इस बीसवीं सदी में कोई ये बातें करेगा तो पागल समझा जायेगा। बर्नार्ड शा को लोगों ने पूछा कि आप क्या कह रहे हैं। तीन सौ साल पहले लोग ऐसा जरूर मानते थे कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। लेकिन अब तो यह सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। आपके पास दलील क्या है जो आप कहते हैं कि कॉपरनिकस, गेलेलिओ सब गलत कहते हैं। बर्नार्ड शा ने कहा कि दलील साफ है। जिस पृथ्वी पर बर्नार्ड शा रहता है वह पृथ्वी किसी का चक्कर कभी नहीं लगाती ! उसने हमारे अहंकार पर बड़ा गहरा मजाक कर दिया। उसने कह दिया कि सूरज लगाता होगा चक्कर, क्योंकि मैं बर्नार्ड शा इस पृथ्वी पर रहता हूं। मेरे रहने की वजह से यह पृथ्वी किसीका चक्कर लगा सकती है ? असम्भव है। यही है सेन्टर वर्ल्ड का। यही पृथ्वी सारे जगत का केन्द्र है। सारा जगत् इसका चक्कर लगाता है। पृथ्वी का केन्द्र मैं हूं जार्ज बर्नार्ड शा।

हर आदमी का तर्क यही है। भारतीय कहता है, भारत महान् है, चीनी कहता है चीन महान् है, तुर्की कहता है तुर्क महान् है। मामला क्या है ? हिन्दू कहता है हिन्दू महान् है, मुसलमान कहता है मुसलमान महान् है। जैन कहता है महावीर महान् है, ईसाई कहता है जीसस महान् हैं। मामला क्या है ? मार्क्सिस्ट

कहता है मार्क्स महान् है, एक गांधीवादी कहता है गांधी महान् हैं। मामला क्या है ? न गांधी से किसीको मतलब, न मार्क्स से किसीको मतलब, न महावीर से किसीको मतलब, न भारत से किसीको मतलब, न चीन से किसीको मतलब। मतलब उसमें से है कि मैं जहां हूं जिस केन्द्र पर, उस केन्द्र से संबंधित सब महान् है, क्योंकि मैं महान् हूं।

नहीं, गांधी को नहीं तौलते हैं आप, न महावीर को, न बुद्ध को। तरकीब से अपने को तौल रहे हैं और अपने को केन्द्र पर खड़ा कर रहे हैं। ये तरकीबें बड़ी अधार्मिक हैं। ये तरकीबें बड़ी अपवित्र हैं। लेकिन इनका हमें होश भी नहीं आता है। बर्ट्रेन्ड रसेल ने एक किताब लिखी और उस किताब में उसने भूमिका में यह बात लिखी कि मेरी किताब को पढ़ने वाले आप जो सज्जन हैं, अपने रीडर को, अपने पाठक को सम्बोधित किया कि मेरे प्रिय पाठक आप जिस देश में पैदा हुए हैं उस देश से महान् कोई भी देश नहीं है। उसको कई मुल्कों से पत्र पहुंचे, क्योंकि बर्ट्रेन्ड रसेल की किताबें सारी दुनिया में पढ़ी जाती हैं। पोलैण्ड से एक स्त्री ने लिखा कि तुम पहले आदमी हो जिसने पोलैण्ड की महानता को स्वीकार किया है। जर्मनी से किसीने लिखा कि शाबाश तुमने स्वीकार कर लिया कि जर्मनी महान् है। किन्तु उसने तो मजाक किया था। वह मजाक कोई भी नहीं समझा। वे समझे कि हमारे मुल्क की प्रशंसा की जा रही है। हमारे मुल्क की प्रशंसा नहीं, हमारी प्रशंसा, मेरी प्रशंसा और जो आपको भय मालूम पड़ता है कि गांधीजी की आलोचना मत करो, बुद्ध की आलोचना मत करो, मुहम्मद की आलोचना मत करो—नहीं तो दंगे हो जायेंगे। वह आपका मुहम्मद, बुद्ध और गांधी के प्रति प्रेम नहीं है। उनकी आलोचना से आपके अहंकार को ठेस पहुंचती है। उसकी वजह से आप पीड़ित हैं और परेशान होते हैं। यह योग्य नहीं है, यह हितकर नहीं है, यह कल्याणदायी नहीं है। इससे मंगल सिद्ध नहीं होता है।

मैंने यह जो कुछ बातें कही, एक मित्र मेरे पास आये, उन्होंने कहा कि मैं काका कालेलकर के पास गया था तो काका कालेलकर ने कहा, मेरे बाबत कि अभी उनकी उम्र कम है इसलिए गड़बड़ बातें कह देते हैं। जब उम्र बढ़ जायेगी तो बिल्कुल ठीक बातें कहने लगेंगे। वह मित्र मेरे पास खबर लेकर आये कि काका कालेलकर ने ऐसा कहा है। मैंने उनसे कहा कि काका कालेलकर को कहना कि जब शंकराचार्य ने ३३ वर्ष की उम्र में बुद्ध का खण्डन और आलोचना की तो लोगों ने कहा इसकी उम्र कम है। उम्र बड़ी हो जायेगी तो सब ठीक हो जायेगा। जब जीसस ने तीस वर्ष की उम्र में यहूदियों की आलोचना की तो यहूदियों ने कहा कि यह पागल छोकरा है, आवारा है। इसकी उम्र अभी क्या है। उम्र बढ़

जायेगी तो सब ठीक हो जायेगा। जब विवेकानंद ने ३३-३४ वर्ष की उम्र में वेदान्त की व्याख्या की तो वेदान्त के बूढ़े गुरुओं ने कहा, अभी नासमझ है, समझता नहीं, उम्र कम है। यह उम्र की दलील बहुत पुरानी है। लेकिन उम्र कम होने से न कोई गलत होता है और न उम्र ज्यादा होने से कोई सही होता है। उम्र से बुद्धिमत्ता का कोई भी संबंध नहीं है। काका कालेलकर यह कह रहे हैं कि अगर जीसस क्राइस्ट ८० साल तक जीते तो ज्यादा बुद्धिमान् हो जाते। वे यह कह रहे हैं कि जीसस क्राइस्ट ३३ साल की उम्र के थे इसलिए मंदिर में घुस गये और मंदिर में ब्याज खाने वाले दूकानों के तख्ते उलट दिये और कोड़ा उठाकर उन्होंने बहुतों को मार कर मंदिर के बाहर निकाल दिया। अगर जीसस ज्यादा उम्र के होते तो ऐसी नासमझी कभी नहीं हो सकती थी। काका कालेलकर उनकी जगह होते तो इस तरह की नासमझी वे कभी नहीं करते। उनकी उम्र ज्यादा है, लेकिन उम्र ज्यादा होने से बुद्धिमत्ता नहीं बढ़ जाती है। उम्र ज्यादा होने से चालाकी और कनिंगनेस भले बढ़ जाये, लेकिन बुद्धिमत्ता का उम्र से ऐसा कोई नाता नहीं है।

मैं भी जानता हूं कि मैंने गांधी की आलोचना की, उसी दिन सुबह दो मित्रों ने मुझे आकर कहा कि आप यह बात ही मत करिये, क्योंकि गुजरात की सरकार नारगोल में ६०० एकड़ जमीन देती है आपके आश्रम को। वह उसका विचार ही बन्द कर देगी, नहीं देगी। अभी बात मत करिये, पहले जमीन मिल जाने दीजिये, फिर आपको जो कहना है कहना। वे कहने लगे, आपकी उम्र अभी कम है। आपको पता नही जमीन खो जायेगी। मैंने उनसे कहा, भगवान् करे मेरी उम्र इतनी ही नासमझी की बनी रहे ताकि सत्य मुझे संपत्ति से हमेशा मूल्यवान् मालूम पड़े। वह जमीन जाय, जाने दो। मुझे जो ठीक लगता है, मुझे कहने दें। भगवान् न करे, इतना चालाक मैं हो जाऊं कि संपत्ति सत्य से ज्यादा मूल्यवान् मालूम पड़ने लगे। मुझे भी दिखायी पड़ता है, काका कालेलकर को ही दिखायी पड़ता है ऐसा नहीं। मुझे भी दिखायी पड़ता है कि गांधी की आलोचना करके गाली खाने के सिवाय और क्या मिलेगा। अंधा नहीं हूं, इतनी उम्र तो कम से कम है कि इतना दिखायी पड़ सकता है कि गाली मिले। लेकिन कुछ लोग, अगर समाज में गाली खाने की हिम्मत न जुटा पायें तो समाज का विचार कभी विकसित नहीं होता है। कुछ लोगों को यह हिम्मत जुटानी ही चाहिए कि वह गाली खायें। प्रशंसा प्राप्त करना बहुत आसान है, गाली खाने की हिम्मत जुटाना बहुत कठिन है। श्री ढेबर भाई ने मुझे उत्तर देते हुए किसी मीटिंग में अभी कहा है कि मैं गांधी जी को समझ नहीं सका हूं, इसलिए ऐसी बातें कह रहा

हूं। मेरा उनसे निवेदन है कि प्रशंसा तो बिना समझे भी की जा सकती है, आलोचना करने के लिए बहुत समझना जरूरी होता है। प्रशंसा तो कोई भी पूंछ हिला कर जाहिर कर देता है, उसके लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। लेकिन आलोचना के लिए सोचना जरूरी है, विचार करना जरूरी है, हिम्मत जुटाना जरूरी है और अपने को दांव पर लगाना भी जरूरी है। अब गांधी से मेरा झगड़ा क्या हो सकता है, गांधी से झगड़ कर मुझे फायदा क्या हो सकता है? अखबार मेरी खबर नहीं छापेंगे, गांवों में मेरी सभा होनी मुश्किल हो जायेगी। अहिंसक लोग पत्थर फेंक सकते हैं, यह सब हो सकता है। इससे मुझे क्या फायदा हो जायगा? लेकिन मुझे लगता है कि चाहे कितना ही नुकसान हो, जो हमें सत्य दिखायी पड़ता हो उसे हमें कहना ही चाहिए, जो हमें ठीक मालूम पड़ता हो, चाहे उसके लिए कितनी ही हैरानी उठानी पड़े, वह हमें कहना ही चाहिए। इस दुनिया को उन्हीं थोड़े से लोगोंने आगे विकसित किया है, जिन्होंने समाज की मान्य परम्पराओं की आलोचना की है, जिन्होंने समाज के बंधे हुए पक्षपातों को तोड़ने की हिम्मत की है। जिन्होंने समाज में विद्रोह किया है वे ही थोड़े से लोग इस जीवन और जगत् को विकसित कर पाये हैं। जगत् को उन्होंने विकसित नहीं किया है जो अंध-विश्वासी हैं। विश्वास नहीं, विचार विकास का द्वार है। ●

पाँचवाँ प्रवचन (प्रश्नोत्तर)

तोड़ने का एक और उपक्रम

एक मित्र ने पूछा है, महापुरुषों की आलोचना की बजाय उचित होगा कि सृजनात्मक रूप से मैं क्या देखना चाहता हूं देश को, समाज को, उस सम्बन्ध में कहूँ।

लेकिन आलोचना से भयभीत होने की क्या बात है। क्या यह वैसा नहीं है कि हम कहें कि पुराने मकान को तोड़ने के बजाय नये मकान को बनाना ही उचित है? पुराने को तोड़े बिना नये को बनाया भी तो नहीं जा सकता है। विध्वंस भी रचना की प्रक्रिया का हिस्सा है। अतीत की आलोचना भविष्य में गति करने का पहला चरण है और जो लोग अतीत की आलोचना से भयभीत होते हैं, वे ही लोग हैं जो भविष्य में जाने की सामर्थ्य भी नहीं दिखा सकते। लेकिन इतना भय क्या है सृजनात्मक आलोचना से? क्या हमारे महापुरुष इतने छोटे हैं? उनकी आलोचना से हमें भयभीत होने की जरूरत है? और अगर वे इतने छोटे हैं तब तो उनकी आलोचना जरूर ही होनी चाहिए, क्योंकि उनसे हमारा छुटकारा हो जायेगा और अगर वे इतने छोटे नहीं हैं तो आलोचना से उनका कुछ भी बिगड़ने-वाला नहीं है। दोनों हालत में आलोचना कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती है। लेकिन हमारा पूरा देश ही आलोचना से भयभीत हो गया है और जो समाज अपने अतीत की आलोचना नहीं करता, वह भविष्य के लिए निर्णय भी नहीं ले पाता कि कहां कदम रखने हैं। उसका सारा अतीत बिना आलोचना से अन-क्रिटिसाइज्ड इकट्ठा हो जाता है। उस सारे अतीत में से चुनाव करना मुश्किल हो जाता है कि क्या चुनना है। उस अतीत में से क्या छोड़ना है, यह, जानना मुश्किल हो जाता है। उस अतीत का बोझ इतना हो जाता है कि उसके नीचे दबकर मर सकते हैं। उस अतीत के कंधे पर खड़े होकर भविष्य की ओर उठ नहीं सकते।

भारत का अतीत हमारा चुना हुआ अतीत नहीं है--वह तो एक मृत बोझ की भांति हमारे सिर पर रखा हुआ है। उसमें तरह-तरह की बातें बैठी हुई हैं। उसमें स्व-विरोध सेल्फ कंट्राडिक्शन बैठे हुए हैं और उन सबको हम झेल रहे हैं और उन सबके साथ हम जीने की कोशिश कर रहे हैं। इसीलिए भारत में इतना कन्फ्यूजन

है, इतना विभ्रम है। हमारी जाति के पास कोई स्पष्ट निर्णय नहीं है। अतीत का संग्रह हमने ऐसे ही किया है जैसे कि कबाडी की दूकान होती है। एक कचरा-घर की भांति हमारा चित्त हो गया है। उसमें सब इकट्ठा होता चला जाता है। सब भांति के विरोध वहां एकत्रित हो गये हैं। इनमें से चुनाव जरूरी है। कुछ हमें तय करना पड़ेगा। कौन है ठीक, हमें निर्णय लेना चाहिए, क्या है सही। लेकिन हम कहते हैं, अतीत की आलोचना मत करो, अतीत का विचार मत करो। हजारों-हजारों वर्षों में हजारों हजारों विचारों का जो संग्रह हमारे ऊपर इकट्ठा हो गया है वह सारा संग्रह हमारे प्राणों पर बैठा हुआ है। उस सारे संग्रह के नीचे हम दबे जा रहे हैं और जी रहे हैं और हम कोई भी निर्णय नहीं ले पाते कि इस देश का व्यक्तित्व एक स्पष्ट निखार को उपलब्ध हो। शायद आपको पता न हो इस देश में कितनी धारें बहीं हैं विचार की। वे सारी की सारी धाराएं भारतीय मस्तिष्क में इकट्ठी होकर बैठ गयीं। वे बहुत विरोधी धाराएं हैं और उन विरोधी धाराओं के कारण हमारा व्यक्तित्व खण्डित हो गया है, स्पिलिट हो गया है। भारत में किसी आदमी के पास 'इंटीग्रेटेड पर्सनलिटी' जिसको हम कहें, एक समग्र समूचा व्यक्तित्व कहें, इकट्ठा व्यक्तित्व कहें, एक स्वर वाला व्यक्तित्व कहें, वह नहीं है। उसके भीतर न मालूम कितने स्वर हैं। उन सब स्वरों के बीच उसे जीना पड़ता है। इससे एक 'मल्टीपर्सनलिटी', एक बहु-व्यक्तित्व भीतर पैदा हो गया है जिसमें से कुछ निर्णय नहीं हो पाता कि हमारा स्वरूप क्या है, हमारा व्यक्तित्व क्या है--हम कहां खड़े हैं--इसका हमें कुछ भी पता नहीं चल पाता। और इस सबके पीछे एक ही कारण है कि हमने अपने अतीत की आलोचना करने से भय दिखलाया है। और अगर हम आगे भी यह जारी रखते हैं तो भारत की सारी प्रतिभा कुंठित हो गयी है, और कुंठित हो जायेगी। बहुत स्पष्ट विचार होना चाहिए, बहुत स्पष्ट सूझ होनी चाहिए। न कोई गांधी का मूल्य है, न महावीर का, न कृष्ण का। मूल्य है इस देश के भविष्य का। अगर बड़े से बड़े महापुरुष को भविष्य के लिए छोड़ना पड़े तो छोड़ने की तैयारी होनी चाहिए। सवाल यह नहीं है कि हम छोड़ दे, सवाल यह है कि इस देश का भविष्य महत्त्वपूर्ण है, या इस देश के अतीत के महापुरुष महत्त्वपूर्ण हैं। बड़े से बड़े महापुरुष से पैदा होने वाला छोटा से छोटा बच्चा भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वह भविष्य है, क्योंकि वह कल आयेगा, वह कल जियेगा, कल वह बनेगा। उसको ध्यान में रखना है। लेकिन हमारा मुल्क, हमारी पूरी चिता उनको ध्यान में रखती है जो जी चुके हैं और जा चुके हैं। यह समादर ठीक है, लेकिन यह समादर मंहगा पड़ा है। आने वाले बच्चे का सम्मान

चाहिए। उस बच्चे के सम्मान, उसके भविष्य, उसके जीवन के लिए विचार चाहिए।

हमें बहुत ही स्पष्ट और आदरपूर्वक अतीत की आलोचना करनी पड़ेगी। आलोचना का अर्थ निन्दा नहीं है। यह भी एक अजीब पागलपन है इस मुल्क में कि आलोचना करने का मतलब निन्दा समझा जाता है। यह हमारी क्षुद्र बुद्धि का सबूत है। इसका मतलब यह है कि हम निन्दा करने को ही आलोचना समझते हैं या आलोचना करने को निन्दा समझते हैं। गांधी की आलोचना, गांधी की निन्दा नहीं है। मेरी बात की आप आलोचना करें वह मेरी निन्दा नहीं है, बल्कि मेरी बात की आलोचना करने से आप खबर देते हैं कि आपने मेरी बात को मूल्य दिया। इस योग्य समझा कि आप उस पर सोच रहे हैं। नहीं, आलोचना निन्दा नहीं है, आलोचना सम्मान है। हम आलोचना हर किसी की नहीं करने बैठ जाते हैं, कोई ऐरे-गैरे की आलोचना करने सारा मुल्क नहीं बैठ जायेगा। जिसकी हम आलोचना करने बैठते हैं, हम यह मानकर चलते हैं कि उस व्यक्ति की आलोचना या उस व्यक्ति का विचार देश के हित या अहित में महत्त्वपूर्ण हो सकता है।

मार्क्स की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु पर थोड़े से मित्र, दस-बीस मित्र ही उसकी कब्र पर इकट्ठे थे। एंजेल्स ने उसकी कब्र पर बोलते हुए एक बात कही। एंजेल्स ने कहा कि मार्क्स एक महापुरुष था। मित्रों को हैरानी हुई, क्योंकि अगर महापुरुष था तो कुल बीस-पच्चीस लोग कब्र पर छोड़ने आये थे। मित्रों ने पूछा कि महापुरुष? एंजेल्स ने कहा कि मैं इसलिए कहता हूं महापुरुष मार्क्स को कि जो भी उसकी बात सुनेगा उसे या तो मार्क्स के पक्ष में होना पड़ेगा या विपक्ष में होना पड़ेगा। दो के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। मार्क्स की उपेक्षा कोई भी नहीं कर सकता है। इसीलिए मैं कहता हूं कि यह महापुरुष है।

यह बड़ी अद्‌भुत बात कही एंजेल्स ने। मार्क्स के महापुरुष होने का कारण यह कि उसके विचार की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आप इंडिफरेंट नहीं हो सकते उसके विचार के प्रति। आपको कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में। जिस मनुष्य के विचार के सम्बन्ध में हमें कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़े उसको एक महापुरुष कहा जा सकता है, और किसी को नहीं। और जब आप अपने महापुरुष के विपक्ष में होने की सामर्थ्य तोड़ देना चाहते हैं तो ध्यान रहे कि उसके पक्ष में होना भी निष्प्राण हो जाता है। इसलिए भारत के महापुरुषों के विपक्ष में कोई नहीं है, और न ही उनके पक्ष में ही कोई है। जब आप ऐसी कोशिश करते हैं कि गांधी के विपक्ष में कोई न हो सके, तो आपको शायद

पता नहीं है कि आप अपने हाथ से गांधी की हत्या कर रहे हैं, क्योंकि जिस आदमी के विपक्ष में कोई नहीं हो सकता, ध्यान रहे उसके पक्ष में भी कभी कोई नहीं होगा। जिसके विपक्ष में कभी कोई नहीं हो सकता उसके पक्ष में भी कोई कभी नहीं होगा। जिसके विपक्ष में होने की जरूरत नहीं पड़ती उसके पक्ष में होने की भी कोई जरूरत नहीं पड़ती और जिसके पक्ष में हमें होने की आवश्यकता नहीं है, हम तब ऊपरी तौर से कहते रहेंगे हम उसके पक्ष में हैं, लेकिन हमारे प्राण कभी उसके पक्ष में नहीं हो सकते। हम पक्ष में उसीके हो सकते हैं, जिसके विपक्ष में होना भी जरूरी मालूम पड़ सकता हो।

एक जमाना था, ईश्वर के विरोध में वे लोग समझे जाते थे जो नास्तिक थे, जो कहते थे कि ईश्वर नहीं है। मैं कहता हूं कि नास्तिक फिर भी ईश्वर को आदर देते थे, क्योंकि वे ईश्वर को विचारणीय मानते थे। इसलिए ईश्वर पर किताबें लिखते थे, तर्क करते थे और सिद्ध करना चाहते थे कि ईश्वर नहीं है। अब जमाना नास्तिक से भी आगे जा चुका है। जब किसी से कहो ईश्वर, तो वह कहता है, छोड़ो, वह कोई बात करने योग्य विषय नहीं है। नास्तिक तो ईश्वर को पूरी तरह सम्मान देता है, हो सकता है आस्तिक से ज्यादा सम्मान देता हो और सच तो यह है कि आस्तिक से ज्यादा सम्मान ही नास्तिक देता है, क्योंकि आस्तिक शायद ही कभी ईश्वर के संबंध में उतना विचार करता हो जितना नास्तिक कर रहा है और यह भी हो सकता है कि आस्तिक वे ही लोग बने बैठे हुए हैं जो ईश्वर के संबंध में विचार नहीं करना चाहते, झंझट में नहीं पड़ना चाहते। कहते हैं ठीक, है, होगा, जरूर होगा, होना ही चाहिए। लेकिन नास्तिक प्राणों की बाजी लगाता है ईश्वर के लिए। उसके लिए ईश्वर एक जीवन्त प्रश्न, एक लिविंग प्रावलम है। उसे तय ही करना है कि ईश्वर है या नहीं, क्योंकि उसी तय करने पर उसका जीवन निर्भर करेगा कि वह किस तरह जिये। आस्तिक कहता है कि है और जीता इस तरह है जैसे नास्तिक को जीना चाहिए। आस्तिक कहता है कि है परमात्मा, मंदिर में पूजा कर आता है और जीता ऐसे है जैसे परमात्मा पृथ्वी पर कहीं भी न हो। यह आस्तिक का सम्मान है या कि उस नास्तिक का सम्मान है जो प्राणों की बाजी लगा लेता है ? सोचता है दिन और रात, विचार करता है, निर्णय करता है, संदेह करता है, सोचता है, खोजता है कि ईश्वर है ? वह उसके प्राणों का सवाल है। अगर होगा तो उसे जिन्दगी बदलनी पड़ेगी, नहीं होगा तो जिन्दगी दूसरे तरह की होगी। लेकिन नास्तिक ईश्वर को उपेक्षा के योग्य नहीं मानता। हमारी नयी सदी में लाखों लोग ऐसे हैं जो नास्तिक भी नहीं हैं। वे कहते हैं ईश्वर होगा या नहीं होगा, कोई प्रयोजन

नहीं है। यह पहली दफा ईश्वर की मौत की खबर है। ईश्वर मरने के करीब पहुंच गया है यह इसकी खबर है। नास्तिक ईश्वर को नहीं मरने देंगे, लेकिन यह उपेक्षा, यह इनडिफरेंस कि ईश्वर की बात उठे और लोग कहें छोड़ो, कोई और बात करो यह इनडिफरेंस ईश्वर की मौत हो सकती है और आप जानकर हैरान होंगे अगर दुनिया में नास्तिक नहीं होते तो आस्तिक कभी के इनडिफरेंट हो चुके होते। उन्होंने कभी की फिक्र छोड़ दी होती ईश्वर की। वह जो नास्तिक विरोध किये जाता है, आलोचना किये जाता है वह आस्तिक को बल देता है। कहता है कि वह सोचे, फिर सोचे, फिर सोचे कि ईश्वर है या नहीं। दुनिया में विचार को जनमाने में, विचार को गतिमान करने में कंफर्मिस्ट जो होते हैं, स्वीकार करने वाले जो होते हैं, आस्थावादी जो होते हैं, उन्होंने कोई भी हाथ नहीं बढ़ाया। आपको शायद पता न हो वेद और उपनिषद् से आकर भारत में विचार की धारा रुक गयी थी, बिल्कुल रुक गयी थी। महावीर और बुद्ध, प्रबुद्ध कात्यायन, मक्खली गौशाल, अजित केशकम्बल, संजय वेलट्ठीपुत्र, इन सारे लोगों ने वह धारा तोड़ी। इन सारे लोगों ने विरोध किया है वेद का, उपनिषद् का। महावीर जैसा आलोचक खोजने को मिलेगा दुनिया में, बुद्ध जैसा आलोचक खोजने से मिलेगा ? बुद्ध और महावीर और दूसरे लोगों ने तोड़ दी सारी परंपरा। एक उफान आ गया सारे मुल्क में। सारे मुल्क में चिंतन पैदा हुआ। उस चिंतन की धारा में फिर वसुबंधु और नागार्जुन और दिग्नाग और धर्मकीर्ति और कुंदकुंद और उमास्वाति और शंकर और रामानुज और निम्बार्क सब पैदा हुए। बुद्ध और महावीर ने जो आलोचना की उस आलोचना को उत्तर देने के लिए, उस आलोचना के पक्ष में खड़े होने के लिए एक हजार साल तक चिन्तन चला, एक हजार साल तक जवाब खोजना पड़ा बुद्ध के लिए, महावीर के लिए। या बुद्ध और महावीर के पक्ष में दलील खोजनी पड़ी। एक हजार साल मुल्क की प्रतिभा ने मंथन किया। अद्‌भुत अनुभव उस मंथन से उपलब्ध हुए। उस मंथन से शंकर जैसा आदमी पैदा हुआ, नागार्जुन जैसा अद्‌भुत आदमी पैदा हुआ उस मंथन से, उस आलोचना के परिणाम से। अगर बुद्ध और महावीर ने आलोचना न की होती तो हिंदुस्तान में शंकर और नागार्जुन के पैदा होने की कोई संभावना नहीं थी। वे उस आलोचना के प्रतिफल थे। लेकिन फिर शंकर के बाद आलोचना क्षीण पड़ गयी, फिर शंकर को स्वीकार कर लिया गया। शंकर के बाद फिर आलोचना नहीं हो सकी। फिर एक हजार साल तक आलोचना करने से भारत में भयभीत हो गये, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने आलोचना की थी तो हमें १५०० साल तक सोचना पड़ा था। आदमी सोचना

नहीं चाहता। आदमी सुस्त और काहिल है। वह समझता है कि बिना सोचे काम चल जाय तो बहुत अच्छा है। १५०० साल तक टक्कर लेनी पड़ी मस्तिष्क को, श्रम करना पड़ा। तो आदमी ने सोचा, अब छोड़ो फिक्र, शंकर पर विश्वास कर लो। शंकर पर विश्वास कर लिया। हजार साल से आलोचना फिर बंद हो गयी, फिर हिन्दुस्तान में हजार सालों में उस तरह के लोग पैदा न हो सके कि नागार्जुन, बुद्ध या महावीर पैदा हो सकते हों। नहीं पैदा हो सके।

अब भारत का पुनर्जारण का युग आया। देश स्वतंत्र हुआ। अगर इस स्वतंत्रता के साथ भारत के मस्तिष्क में आलोचना की शक्ति नहीं जगती है तो हिन्दुस्तान की प्रतिभा का जन्म नहीं होगा, यह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। चाहिए तीव्र आलोचना कि हिन्दुस्तान में पच्चीसों तीव्र आलोचक पैदा हों जो हिन्दुस्तान की जड़ें हिला दें। उसके मस्तिष्क को हिला दें। तो हम आने वाली सदी में फिर बुद्ध और महावीर और शंकर जैसे लोग पैदा कर सकेंगे। नहीं तो हम पैदा नहीं कर सकेंगे। लेकिन हम बिल्कुल नपुंसक, इम्पोटेंट हो गये हैं। हमारी जान निकलती है जरा सा विचार करने में, जरा सा विचार, जरा आलोचना की कि हमारे प्राण कांपते हैं। इतनी कमजोर कौम प्रतिभा पैदा नहीं कर सकती, इतनी कमजोर कौम कैसे प्रतिभा पैदा करेगी ? प्रतिभा तो एक साधना है, प्रतिभा तो एक श्रम है। आपको पता है कि तीन सौ वर्षों में यूरोप में जो भी विकास हुआ है वह किन लोगों की वजह से हुआ है ? आस्तिकों की वजह से ? श्रद्धा करनेवालों की वजह से ? कन्फर्मिस्ट लोगों की वजह से ? आर्थाडाक्स लोगों की वजह से ? रूढ़िचुस्त लोगों की वजह से ? रूढ़िचुस्त लोगों की वजह से दुनिया का कभी कोई विकास नहीं हुआ। किसके द्वारा विकास हुआ है ? उन विद्रोहियों की वजह से जिन्होंने सारी रूढ़ि तोड़ने की हिम्मत की, जिन्होंने सन्देह किया, विश्वास नहीं। जिन्होंने आलोचना की, आस्था नहीं। तीन सौ वर्ष के उन वाल्तेयर, रूसो, नीत्शे, फ्रायड, और मार्क्स ऐसे लोगों की वजह से पश्चिम की प्रतिभा को झकझोड़ मिला। प्रतिभा चौंक गयी। उत्तर खोजना जरूरी हो गया। या तो पक्ष या तो विपक्ष में होना पड़ेगा। कोई विकल्प नहीं रहा कि आप चुपचाप अपनी सुस्ती में और उपेक्षा में बैठे रहें। अब नीत्शे को सुनिएगा तो उसके पक्ष और विपक्ष में, कहीं न कहीं आपको होना पड़ेगा। आप यह नहीं कह सकते कि ठीक है, सुन लिया। आपको यह कहना पड़ेगा कि नीत्शे ठीक है या गलत है। दो के अतिरिक्त तीसरा कोई विकल्प नहीं है। और जब आपको किसी के ठीक या गलत के लिए सोचना पड़ता है तो आपकी प्रतिभा में अंकुर आने शुरू होते हैं। लेकिन जब आप कहते हैं आलोचना करनी ही नहीं है

कि आलोचना विध्वंसात्मक है, हमें तो जो कहना है वह कहना चाहिए। तो दुनिया के सभी श्रेष्ठ विचारक विध्वंसात्मक थे, लेकिन बाद में हमें याद भी नहीं रह जाता कि वे कितने बड़े आलोचक रहे होंगे और कैसी तीव्र आलोचना की होगी। हम तो समझते हैं आलोचना यानी गाली-गलौज हो गयी। यह जो हमारी आज की धारणा है, इस धारणा को बिल्कुल आग लगा देने की जरूरत है। एक-एक बच्चे को संदेह सिखाया जाना चाहिए, डाउट सिखाया जाना चाहिए। एक बच्चे को क्रीटिकल होने की, आलोचनात्मक होने की प्रेरणा देनी चाहिए। एक-एक बच्चे से मां-बाप को, गुरु को कहना चाहिए कि हमारी बात मान मत लेना, विचार करना, सोचना, झगड़ना, हिम्मत से हमसे लड़ना। अगर तुम्हारे विवेक को स्वीकार हो तो ही मानना, अन्यथा मत मानना। अगर हम इतनी हिम्मत दिखायेंगे तो हिन्दुस्तान की प्रतिभा विकसित होगी, अन्यथा नहीं विकसित हो सकती। क्या करूं ? आपकी बात मान लूं ? आलोचना नहीं करनी चाहिए ? या कि यह देखूं कि आनेवाले मुल्क का भविष्य आलोचना से ही पैदा हो सकता है ?

मैंने कल शायद कहा कि श्री राधाकृष्णन् कोई विचारक नहीं हैं। बस चिट्ठियां आ गयीं कि आपने बहुत बुरा काम कर दिया, आपने राधाकृष्णन् को ऐसा कैसे कह दिया ?

श्री राधाकृष्णन् विचारक हैं या नहीं, यह सोचना चाहिए। मैंने कह दिया तो क्या कोई मान लेने की जरूरत है ? मैं कहता हूं कि नहीं हैं विचारक। मैं कहता हूं तो मैं इसलिए दलील देता हूं। आप सोचिए कि हैं विचारक तो दलील खोजिए। बस इतना ही मैं चाहता हूं कि विचार की प्रक्रिया चले। हो सकता है श्री राधाकृष्णन् विचारक सिद्ध हों विचार करने से। और मेरी बात गलत सिद्ध हो। लेकिन मुझे कहना नहीं चाहिए यह कौन सी बात हुई ? मुझे जो लगता है वह मुझे कहना चाहिए। मुझे लगता है श्री राधाकृष्णन् कोई विचारक नहीं हैं। केवल एक टीकाकार हैं, एक व्याख्याकार हैं, एक अनुवादक हैं, एक अच्छे अनुवादक हैं, एक अच्छे कमेंटेटर हैं, एक अच्छे टीकाकार हैं। उन्होंने पूरब की धारणाओं को पश्चिम में जितनी सुन्दरता से पहुंचाया है उतना शायद किसीने नहीं पहुंचाया है। लेकिन विचारक वे नहीं हैं। उन्होंने एक नये विचार को जन्म नहीं दिया है। उनकी सारी किताबों में एक भी ऐसा सूत्र नहीं है जो उनकी मौलिक प्रतिभा से जन्मा हो। वे सब गीता, उपनिषद् और वेदों के उधार सूत्र है। विचारक वे नहीं हैं। विचारक होने का कोई सवाल नहीं है उनका। लेकिन हमने कुछ ऐसी हालत पकड़ ली है कि जिस आदमी की हम प्रशंसा करेंगे उसकी हम सब तरह से प्रशंसा करेंगे। हम फिर कोई हिस्सा नही छोड़ सकते कि वह न हो, वह सभी

होना चाहिए। हिन्दुस्तान में एक पागल भाव पैदा हो गया है कि हमारे महापुरुष में सभी कुछ होना चाहिए। दुनिया के किसी महापुरुष में सभी कुछ नहीं होता। अगर आप महावीर के पास पूछने जायेंगे कि साइकिल का पंचर कैसे सुधारा जा सकता है, तो महावीर नहीं बता सकते। इसके लिए तो सड़क के कोने पर बैठा हुआ, एक टक लगाये हुए बैठा हुआ साइकिल सुधारने वाला जो आदमी है वही बता सकेगा। लेकिन हमारी धारणा यह है कि महावीर सर्वज्ञ हैं। वही सभी कुछ जानते हैं। ऐसा कुछ भी नहीं जिसको वह नहीं जानते। पागलपन की बातें हैं। बुद्ध ने मजाक उड़ाया है जैनियों की इस धारणा का। बुद्ध ने कहा है एक ज्ञानी हैं। उनके भक्त कहते हैं कि वह सर्वज्ञ हैं, वह त्रिकालज्ञ हैं, वह तीनों काल जानते हैं। लेकिन उन्हीं ज्ञानी को मैंने ऐसे घरों के सामने भिक्षा मांगते देखा है जहां बाद में पता चलता है घर में कोई है ही नहीं। मैंने उन्हीं ज्ञानी को रास्ते पर चलते हुए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ते देखा है। बाद में पता चलता है कि अंधेरे में कुत्ता सोया हुआ था और उनके भक्त कहते हैं कि त्रिकालज्ञ हैं, तीनों काल जानते हैं !

कहो कि बुद्ध यह गड़बड़ बातें कर रहे हैं। बुद्ध महावीर की आलोचना कर रहे हैं, यह ठीक नहीं कर रहे हैं। नहीं, बुद्ध को जो ठीक लग रहा है वह कह रहे हैं। शंकर कहते हैं बुद्ध के लिए कि बुद्ध भटके हुए हैं। बुद्ध बड़े महिमाशाली हैं। होंगे। लेकिन शंकर कहते हैं कि भगवान् ने बुद्ध को इसलिए अवतार दिया, वे लोगों को भटका सकें। आह ! किसी आलोचक ने कैसी प्यारी कहानी गढ़ी है। नर्क और स्वर्ग बनाये हैं भगवान् ने, लेकिन नर्क में कोई जाता ही नहीं था तो नर्क का जो अधिकारी था उसने भगवान् से जाकर कहा कि नर्क में कोई आता ही नहीं। तो मुझे किसलिए बैठाया हुआ है ? तो भगवान् ने बुद्ध को अवतार दिया है कि तुम जाकर लोगों को भ्रष्ट करो ताकि वे नर्क जा सकें। तो शंकर गलत कह रहे हैं ? शंकर गलत कह रहे हैं या सही कह रहे हैं यह सोचने की बात है। लेकिन शंकर को कहने का हक है। जो उसे ठीक लगता है वह कह रहे हैं। उसे लगता है कि बुद्ध ने लोगों को भ्रष्ट किया। उस बुद्ध ने, जिनके लिए हम सोचते हैं उनके जैसा महापुरुष जगत में कोई पैदा नहीं हुआ। लेकिन शंकर कहते हैं कि भ्रष्ट किया है। और शंकर की उम्र कितनी है ? शंकर ने जब यह बात कही तब उसकी उम्र तीस साल थी। लेकिन अच्छे लोग रहे होंगे। शंकर की बात भी उन्होंने सुनी। न तो पत्थर मारे, न कहा कि बहिष्कार कर देंगे। शंकर के समय तक बुद्ध तो भगवान् हो चुके थे। और एक गरीब घर के छोकरे ने कहना शुरू कर दिया कि नहीं, यह आदमी भ्रष्ट करने को पैदा हुआ है। इसने

दुनिया को बनाया नहीं, बिगाड़ा। हिम्मतवर लोग थे। जब इतनी हिम्मत होती है तो विचार विकसित होता है। हमने सारी हिम्मत खो दी है। और फिर हम चाहते हैं कि हम विचारशील हो जायं। हम विचारशील नहीं हो सकेंगे। विचार का जन्म होता है सन्देह से, विचार का जन्म होता है संघर्ष से, विचार का जन्म होता है आलोचना से। इसलिए यह मत कहें मुझसे कि मैं आलोचना न करूं ! मैं तो आलोचना करूंगा और जितना आप कहेंगे उतना खोज-खोज कर करूंगा। और एक-एक महापुरुष का पीछा करूंगा कि मुझे जरूरत मालूम होती है, मुझे आवश्यकता लगती है कि इस समय देश के लिए सबसे बड़ी जरूरत अगर कुछ है तो वह यह है कि इस देश का हजारों साल से रुका हुआ विचार का अवरुद्ध प्रवाह उठ जाय, बहने लगे हमारी सरिता का। फिर से हम सोचने लगें, फिर से हम पूछने लगें, फिर से इन्क्वायरी पैदा हो जाय। कैसे अद्भुत लोग रहे होंगे। खोजते थे कितनी दूर-दूर तक, कितनी दूर-दूर की यात्रा करते थे। नालन्दा में दस हजार विद्यार्थी थे। सारे हिन्दुस्तान के कोने-कोने से हिन्दुस्तान के बाहर से अफगानिस्तान से और बर्मा से और चीन से हजारों मील की पैदल यात्रा करके आते थे संदेह सीखने, तर्क सीखने, पूछने, जिज्ञासा करने। एथेंस में जहां विचार का जन्म हुआ यूरोप में, थोड़े से दिनों में एक आदमी ने विचार को जन्म दिला दिया——साक्रेटीज ने। क्या किया साक्रेटीज ने ? साक्रेटीज ने जिन्दगी के सारे मसले फिर से उठा दिये। एक-एक प्रश्न फिर से खड़ा कर दिया। एक-एक प्रश्न को जो हम समझते थे हल हो गया फिर से जिन्दा बना दिया। जब सारे प्रश्न जिन्दा हो गये तो सोचना मजबूरी हो गयी। उस सोचने से अरस्तू पैदा हुआ, प्लेटो पैदा हुआ, प्लटीनेस पैदा हुआ। वे सारे के सारे लोग पैदा हुए, सारे यूरोप की विचारधारा पैदा हुई, एक साक्रेटीज से। क्योंकि उसने प्रश्नावली पैदा कर दी। उसने एक ही उत्तर को निःप्रश्न नहीं रहने दिया। अस्त-व्यस्त कर दिये सारे उत्तर। अतीत ने जो भी उत्तर दिये थे सब गड़बड़ कर दिये। और आदमी को वहां खड़ा कर दिया जहां वह पूछे क्या है सत्य। साक्रेटीज से लोग कहते कि तुम उत्तर तो दो। तुम तो बताओ सत्य क्या है। वह कहता, यह मेरा काम नहीं। मेरा काम यह है बताना कि सत्य क्या नहीं है। सत्य क्या है इसकी तो तुम्हारे भीतर जिज्ञासा पैदा हो जायेगी। यह तो तुम खोज लोगे। असत्य क्या है वह मैं बता दूं। मेरा काम पूरा हो जायेगा। साक्रेटीज ने कहा, मैं तो एक मिडवाइफ, एक दाई की तरह हूं। मेरा काम बच्चों को जन्माना नहीं है, केवल बच्चों के लिए द्वार दे देना है कि वह जन्म जाय। बच्चा तो तुमसे पैदा होगा। मैं बच्चा नहीं पैदा कर सकता। साक्रेटीज ने कहा, मैं तो सन्देह पैदा करूंगा। साक्रेटीज से लोग डरते थे। अगर

रास्ते पर मिल जाय तो नमस्कार करने में डरते थे। क्योंकि उससे नमस्कार किया कि कोई झंझट खड़ा न हो जाय। तो मैंने नमस्कार किया तो वह फौरन पूछेगा कि आपने नमस्कार क्यों किया। जब आप कुछ तो कहेंगे, आप कुछ कहेंगे और डायलाग शुरू हो जायेगा। सात्रेटीज से लोग बचने लगे। वह यह देख लेता कि वह आ रहा है तो वे दूसरी गली से निकल जाते। लेकिन उस अकेले आदमी ने सत्य की आग लगा दी। इसका ही बदला लिया है एथेंस के लोगों ने उससे। हम उस आदमी से बदला लेते हैं जो हमारे अज्ञान को प्रकट कर देता है। क्योंकि वह हमारे अहंकार को चोट पहुंचा देता है। जिस बात को हम समझते थे कि हम जानते हैं वह आकर बता देता है कि नहीं जानते। बहुत गुस्सा आता उस आदमी को कि हम तो मान बैठे थे कि हम जानते थे, निश्चिन्त हो गये थे, खोज पूरी हो गयी थी। इस आदमी ने फिर झंझट खड़ी कर दी। इसने ऐसी बातें उठा दीं जिससे शक पैदा होता है कि हम जानते हैं या नहीं। गुस्सा आता है उस आदमी पर। ऐसे आदमी से हमने हमेशा बदला लिया है। सारे एथेंस के लोग परेशान हो गये, क्योंकि सात्रे-टीज ने सारे पुराने ज्ञान को भस्मीभूत कर दिया, पुराने भवन को गिरा दिया, एक एक आदमी की आस्था की जमीन खींच ली, एक एक आदमी अंधेरे में लटक गया और एक एक आदमी कहने लगा, यह आदमी बहुत खतरनाक है। इस आदमी से छुटकारा चाहिए। यह हमें शांति से नहीं जीने देगा। सात्रेटीज पर उन्होंने मुकदमा चलाया और कहा कि यह सात्रेटीज लोगों का दिमाग खराब करता है। यह हमारे युवकों का दिमाग बिगाड़ता है। इस आदमी को फांसी होनी चाहिए। इसको जहर पिलाना चाहिए। सात्रेटीज से अदालत के अध्यक्ष ने कहा, क्योंकि सात्रेटीज बहुत प्यारा आदमी था। मजिस्ट्रेट ने उससे कहा कि सात्रेटीज अगर तुम यह वचन दे दो कि आगे से तुम सत्य की बातें नहीं करोगे तो हम तुम्हें छोड़ सकते हैं। सात्रेटीज ने कहा कि वह तो मेरा धन्धा है सत्य की बातें करना। अगर वह धंधा ही छूट जाय तो मैं कर भी क्या करूंगा? सात्रेटीज से वह अध्यक्ष कह रहा है अदालत का कि तुम सत्य की बातें और जिज्ञासा और प्रश्न खड़ा न करोगे। सात्रेटीज वहीं अदालत में पूछता है कि महानुभाव क्या मैं पूछ सकता हूं, सत्य क्या है? तो पक्का हो जाय पहले कि सत्य क्या है तो फिर मैं सोचूं भी कि उसे छोड़ना है कि नहीं छोड़ना है। सत्य का अर्थ क्या है? सत्य कहां है? वह अध्यक्ष बोला कि यही तो हम कहते हैं कि यह सब काम पूछने का तुम छोड़ दो। सात्रेटीज ने कहा कि मैं जिन्दगी छोड़ दूंगा, लेकिन यह नहीं छोड़ूंगा। क्योंकि सत्य से ज्यादा प्यारा कुछ भी नहीं है। और सत्य की खोज में जिसे जाना है, उसे झूठे ज्ञान को छोड़ देना पड़ता है। लोग मुझसे नाराज हो गये हैं। क्योंकि मैंने उनसे झूठा

ज्ञान छीन लिया है और सच्चे ज्ञान पर जाने के लिए वे हिम्मत और साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। इसलिए एक वैक्यूम, एक शून्य पैदा हो गया है। लेकिन मैं यह शून्य पैदा करता रहूंगा या मर जाऊं या जिन्दा रहूंगा तो सत्य बोलता रहूंगा। सत्य के बिना मैं कैसे जी सकता हूं? उस आदमी ने मर जाना पसन्द किया, लेकिन उसी आदमी ने एथेंस की संस्कृति को आकाश तक उठा दिया। उस अकेले आदमी ने जिसका खून किया गया, जिसको जहर दिलाया गया उस एक आदमी की वजह से पश्चिम की सारी संस्कृति की गंगा पैदा हुई। उसकी गंगोत्री सात्रेटीज में है।

हिन्दुस्तान में सात्रेटीज, सुकरात जैसे लोगों की जरूरत है ताकि हजारों साल का बंधा हुआ प्रवाह टूट जाय, मुक्त हो सके। हिन्दुस्तान फिर सोच सके, फिर विचार कर सके। हमें ख्याल ही नहीं, हम जितना विश्वास कर लेते हैं उतना ही विचार करना मुश्किल हो जाता है। विश्वास विचार की हत्या है। जितना हम विश्वास करते हैं उतना विचार की कोई जरूरत नहीं रह जाती। विचार की जरूरत तो तब पैदा होती है जब हम विश्वास नहीं करते। जब हम मान लेते हैं कि गांधी महात्मा हैं, काम खत्म हो गया। बच्चे से हमने कह दिया कि वह महात्मा हैं, बात खत्म हो गयी। बच्चों को पूछना चाहिए कि महात्मा वह कैसे हैं, क्यों हैं। वही महात्मा क्यों हैं, और कोई महात्मा क्यों नहीं है? ऐसी बात क्या है जिसे हम महात्मा मानें? लेकिन बात कहेगा कि नहीं, इतनी बातचीत की जरूरत नहीं है। हम जो कहते हैं वह मानो। हमेशा पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी से यही कहती है। कि हम जो कहते हैं वह मानो। यह पुरानी पीढ़ी की कमजोरी बताती है, ताकत नहीं। क्योंकि जब भी कोई आदमी कहता है, मैं जो कहता हूं मानो, तो वह बता रहा है, वह कमजोर आदमी है। उसको अपनी बात मनवाने के लिए विवेक को जगाने का विश्वास वह नहीं कर सकता। वह डंडे के बल पर कह रहा है कि मैं जो कहता हूं वह मानो। मानना पड़ेगा। मेरी उम्र ज्यादा है। मेरा अनुभव ज्यादा है। मैंने जिन्दगी देखी है। देखी होगी जिन्दगी आपने। लेकिन जो जिन्दगी आपने देखी, ये बच्चे उस जिन्दगी को कभी नहीं देख सकेंगे। ये दूसरी जिन्दगी देखेंगे। कृपा करके अपनी जिन्दगी का ज्ञान इनकी छाती पर मत थोपें। इनको मुक्त करो ताकि ये जो नयी जिन्दगी देखेंगे उसको देख सकें। लेकिन नहीं हम भयभीत लोग कहीं ज्ञान न खो जाय, कहीं आस्था न खो जाय, कहीं विश्वास न खो जाय, कहीं श्रद्धा न खो जाय, कहीं सब न खो जाय और है हमारे पास कुछ भी नहीं। सब खोया हुआ है। सिर्फ धुआं धुआं है। कुछ भी नहीं है हमारे पास।

मैंने सुनी है एक कहानी। एक सम्राट के दरबार में एक आदमी ने आकर

कहा था कि मैं स्वर्ग से वस्त्र ला सकता हूं तुम्हारे लिए। उस सम्राट ने कहा, स्वर्ग के वस्त्र ? सुने नहीं कभी, देखे नहीं कभी। उस आदमी ने कहा, मैं ले आऊंगा, देख भी सकेंगे, पहन भी सकेंगे। लेकिन बहुत खर्चा करना पड़ेगा। कई करोड़ रुपये खर्च हो जायेंगे। क्योंकि रिश्वत की आदत देवताओं तक पहुंच गयी। जबसे ये दिल्ली के राजनीतिज्ञ मर-मर कर स्वर्ग पहुंच गये हैं तब से रिश्वत की आदत वहां पहुंच गयी। वहां भी रिश्वत जारी हो गयी है। क्योंकि देवता कहते हैं हम आदमियों से पीछे थोड़े ही रह जाएंगे और यहाँ पांच रुपये की रिश्वत चलती है। वहां तो करोड़ों से नीचे की बात नहीं होती। क्योंकि देवताओं का लोक है। सम्राट ने कहा कोई हर्जा नहीं, लेकिन धोखा देने की कोशिश मत करना। करोड़ों रुपये देंगे तुम्हें, लेकिन भागने की कोशिश मत करना। मुश्किल में पड़ जाओगे। उसने कहा, भागने का सवाल नहीं है। महल के चारो तरफ पहरा कर दिया जाय, मैं महल के भीतर ही रहूंगा। क्योंकि देवताओं का रास्ता सड़कों से होकर नहीं जाता वह तो अंतरिक्ष यात्रा है अन्दर की। वहीं से, अन्दर से कोशिश करूंगा। आप घबराइये मत। तलवारें नंगी लगा दी गयीं। उस आदमी ने छः महीने का समय मांगा और छः महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट से ले लिये। दरबारी हैरान थे और चिंतित थे। लेकिन सम्राट ने कहा, घबराहट क्या है। जायेगा कहां रूपये लेकर महल के बाहर। छः महीने पूरे होने पर सारी राजधानी में हजारों लोग इकट्ठे हो गये, लाखों लोग इकट्ठे हो गये देखने को। वह आदमी ठीक समय बारह बजे एक बहुमूल्य पेटी लिए हुए महल के बाहर आ गया। अब तो कोई शक की बात न थी। वह पूरा जुलूस राजमहल पहुंचा। दूर-दूर के राजा, सम्राट्, धनपति दरबार में इकट्ठे थे देखने को। उस आदमी ने पेटी वहां रखी और कहा, महाराज यह ले आया। ये वस्त्र आ गये। अब आप मेरे पास आ जायं। मैं देवताओं के वस्त्र दे दूं। आप पहन लें। महाराज ने अपनी पगड़ी दी। उसने पगड़ी उस पेटी में डाल दी। वहां से खाली हाथ बाहर निकाला और कहा, महाराज यह पगड़ी दिखायी पड़ती है। हाथ में कुछ भी न था। महाराज ने गौर से देखा। उस आदमी ने कहा, ख्याल रहे। देवताओं ने चलते वक्त मुझसे कहा था यह पगड़ी और ये कपड़े उसीको दिखायी पड़ेंगे जो अपने हीं बाप से पैदा हुआ हो। उस सम्राट् ने कहा, हां, दिखायी पड़ता है। क्यों दिखायी नहीं पड़ेगा ? बड़ी सुन्दर पगड़ी है। ऐसी पगड़ी न तो कभी देखी, न सुनी। दरबारियों ने सुना। किसी को भी पगड़ी दिखायी नहीं पड़ती थी। पगड़ी होती तो दिखायी पड़ती। लेकिन दरबारियों ने देखा कि इस वक्त यह कहना कि नहीं दिखायी पड़ती है, व्यर्थ अपने मरे हुए बाप पर शक पैदा करवाने से क्या फायदा है। पगड़ी

से हमको लेना-देना क्या है। अपने बाप को बचाओ, पगड़ी से प्रयोजन क्या है। वे भी तालियां बजाने लगे और कहने लगे, धन्य महाराज, धन्य ! पृथ्वी पर ऐसा अवसर कभी नहीं आया। ऐसी पगड़ी कभी नहीं देखी गयी। एक-एक आदमी अपने मन में सोच रहा था कि बड़ी गड़बड़ बात है। लेकिन उसने देखा कि सारे लोग कहते हैं कि पगड़ी है तो उसने सोचा कि अपने-बाप गड़बड़ रहे हों, लेकिन यह भी किसी से कहने की बात नहीं है। अपने भीतर जान लिया, यह ठीक है। अपना राज अपने घर में रखो। जब सारे लोग कहते हैं तब ठीक ही कहते होंगे। हमारी यही दलील है कि सारे लोग कहते हैं तो ठीक कहते होंगे। जब पूरा हिन्दुस्तान कहता है कि फलां आदमी महावीर भगवान् है, फलां आदमी बुद्ध अवतार है, फलां आदमी मुहम्मद पैगम्बर है तो ठीक ही कहता होगा। सब लोग कहते होंगे तो ठीक ही कहते होंगे। अकेले क्यों झंझट में पड़ना—उन लोगों ने सोचा। अपनी झंझट का जिसको जितना डर लगा वह उतनी बार आ गया और कहने लगा, अहा महाराज धन्य हैं। क्योंकि उसे लगा कि कहीं मैंने धीरे-धीरे कहा तो आसपास के लोगों को शक न हो जाय कि यह आदमी थोड़ा धीरे-धीरे बोलता है। जितने चोर होते हैं दुनिया में उतने जोर से चिल्लाते हैं कि चोरी किसने की है। चोर को पकड़ो। वह चोर चिल्लाते हैं ये बातें ताकि किसी को शक न हो जाय कि यह आदमी कुछ भी नहीं चिल्लाता है। कहीं चोर न हो। रिश्वतखोर चिल्लाते हैं कि मुल्क से रिश्वत बन्द होनी चाहिए, बेईमान नेता मुल्क के सामने भाषण देते हैं और कहते हैं भ्रष्टाचार नष्ट करना है। और जितने जोर से मंच पर चिल्लाते हैं कि भ्रष्टाचार नष्ट करना है, जनता समझती है यह बेचारा तो कम-से-कम भ्रष्टाचारी नहीं होगा। नहीं तो इतना भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलता ! और जनता को पता नहीं कि भ्रष्टाचारी को भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलना ही पड़ता है।

सम्राट् ने देखा कि जब सारा दरबार कह रहा है तो समझ गया वह कि अपने पिता गड़बड़ रहे हैं। अब कुछ बोलना ठीक नहीं है। जो कुछ हैं कपड़े हैं या नहीं हैं, स्वीकार कर लेना ठीक है। पगड़ी पहन ली उसने जो थी ही नहीं। कोट पहन लिया उसने जो था ही नहीं। एक-एक वस्त्र उसके छिनने लगे, वह नंगा होने लगा। आखिरी वस्त्र रह गया तब वह घबराया कि यह तो बड़ी मुश्किल बात है। कहीं कपड़े मालूम नहीं होते। बस, आखिरी अण्डरवीयर रह गया। अब यह भी जाता है। और उस आदमी ने कहा, महाराज यह अण्डरवीयर देवताओं का पहनिये, इसको निकालिये। अब वह जरा घबराया। यहां तक तो गनीमत थी। और दरबारी हैं कि ताली पीटे जा रहे हैं कि महाराज कितने सुन्दर

मालूम पड़ रहे हैं इन वस्त्रों में आप। और महाराज बिल्कुल नंगे हो गये हैं। वह नंगे खड़े हो गये हैं। वह नंगे खड़े हुए हैं। उस आदमी ने धीरे से कहा महाराज घबराइये मत। सबको अपने बाप की फिक्र है। बिल्कुल निकालिये, नहीं तो झंझट हो जायगी, लोगों को पता चल जायेगा। उन्होंने जल्दी अण्डरवीयर निकाल दिया, क्योंकि यह तो घबराहट का मामला था। वह बिल्कुल नग्न खड़े हो गये और दरबारी तो नाच रहे हैं खुशी में कि धन्य हैं महाराज और एक-एक आदमी को राजा नंगा दिखायी पड़ रहा है। लेकिन अब कोई उपाय नहीं है। रानी भी देख रही है कि राजा नंगा है, लेकिन कुछ कह नहीं सकती। वह भी ताली पीट रही है। कह रही है महाराज, इतने सुन्दर आप कभी नहीं दिखायी पड़े। और जब उस आदमी ने कहा कि महाराज, देवताओं ने मुझसे कहा था कि जब यह वस्त्र महाराज पहन लें तो उनकी शोभा-यात्रा का प्रोसेशन निकाला जाना चाहिए। राजधानी में हजारों लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, रास्तों के किनारों पर। लाखों लोग खड़े हैं। वे कहते हैं कि हम महा-राज के दर्शन करेंगे। रथ तैयार हैं, आप कृपा करके रथ पर सवार होइये। आप बाहर चलिये। अब महाराज और भी घबराये। अभी तक तो कम-से-कम दर-बारी थे, अपने ही मित्र थे, परिचित थे, घर के लोग थे। यह झंझट। उस आदमी ने राजा के कान में कहा, आप घबराइये मत, आपके रथ के पहले ही डुगडुगी पिटती चलेगी और खबर की जायेगी कि यह वस्त्र उसीको दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ है। आप घबराइये मत। जैसे आदमी ये भीतर हैं वैसे ही आदमी बाहर हैं। सब तरफ एक से एक बेवकूफ आदमी हैं। आप घबराइये मत और अगर आपने इनकार किया कि बाहर नहीं जाता हूं तो लोगों को शक हो जायेगा आपके पिता पर। राजा ने कहा, चलो भई एक दफा आदमी झूठ में फंस जाय तो फिर कहां रुके यह बहुत मुश्किल हो जाता है। जो आदमी झूठ के पहले ही कदम पर रुक जाता है वह रुक सकता है। जो दस-पांच कदम आगे चल गया है फिर बहुत मुश्किल हो जाती है। लौटना भी मुश्किल। आगे जाना भी मुश्किल। उस बेचारे गरीब सम्राट् को नंगा जाकर रथ पर खड़ा होना पड़ा। उसके सामने ही डुगडुगी पिटने लगी कि ये वस्त्र सम्राट् के सुन्दर वस्त्र देवताओं के वस्त्र हैं। ये वस्त्र उन्हींको दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं और सबको वस्त्र दिखायी पड़ने लगे। एकदम प्रशंसा होने लगी। गांव में खबर तो पहले ही पहुंच गयी कि सब लोग तैयार होकर आये थे कि अपने बाप की रक्षा करनी है और वस्त्र देखने थे। वस्त्र तो दिखायी नहीं पड़ते थे। राजा नंगा था लेकिन जनसमूह कहने लगा कि ऐसे सुन्दर वस्त्र सपनों में भी नहीं देखे, लेकिन कुछ बच्चे अपने बापों के कंधों पर

चढ़कर आ गये थे। वह अपने बाप से कहने लगे, पिताजी, राजा नंगा है। उनके पिताजी ने कहा, चुप नासमझ, अभी तेरा ज्ञान क्या है, अभी तेरी उम्र क्या है। यह बातें अनुभव से आती हैं, ये बड़ी गहरी बातें हैं। जब मेरी उम्र का हो जायगा, अनुभव मिल जायगा तो वस्त्र दिखायी पड़ने लगेंगे। ये बातें अनुभव से दिखायी पड़ती हैं। जो बच्चे चुप नहीं हुए उनके मां-बाप मुंह बन्द करके भीड़ के पीछे खिसक गये, क्योंकि बच्चों का क्या भरोसा ? आसपास के लोग सुन लें कि इस आदमी के लड़के ने यह कहा है !

हमेशा भीड़ के भय के कारण हम असत्यों को स्वीकार किये बैठे रहते हैं, भीड़ का भय, फियर आफ क्राउड। जिसको हम सत्य मानकर बैठे हैं वह सत्य है ? या सिर्फ भीड़ का भय है कि चारों तरफ के लोग क्या कहेंगे? चारों तरफ के लोग जिसको मानते हैं उसको हम भी मानते हैं। ऐसा आदमी सत्य की खोज में कभी भी नहीं जा सकता है, जो भीड़ को स्वीकार कर लेता है। सत्य की खोज भीड़ से मुक्त होने की खोज है। वह जो पब्लिक ओपीनियन है, वह जो भीड़ का मत है उसको पकड़कर जो बैठ जाता है वह आदमी सत्य की यात्रा में एक कदम भी नहीं उठा सकता, क्योंकि भीड़ एक-दूसरे से भयभीत है। आप जिनसे भयभीत हैं वह आपसे भयभीत हैं, यह म्युचुअल फियर है, इससे छुटकारा बहुत मुश्किल है। और लोग क्या कहेंगे ? दुनिया क्या कहेगी ? जब सब लोग ऐसा मानते हैं तो ठीक ही होगा। सत्य की ये धारणाएं सत्य की धारणाएं नहीं हैं, असत्य को सत्य बनाने की तरकीबें हैं। वह जो फाल्स है, वह जो मिथ्या है उसको भीड़ के द्वारा बिल्कुल इकट्ठा किया जाता है। सत्य तो अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, लेकिन असत्य को भीड़ का मत चाहिए, उसके बिना खड़ा नहीं हो सकता। इसीलिए दुनिया में जब असत्य को फैलाना हो, जब असत्य को प्रचारित करना हो तो एक आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता। भीड़ चाहिए, भीड़ के साथ प्रचार चाहिए, भीड़ के साथ भय चाहिए, क्योंकि भय के बिना भीड़ भी मानने को राजी नहीं होगी। इसलिए वह कहते हैं कि अगर ईश्वर को नहीं मानोगे तो नर्क जाना पड़ेगा। अब नर्क जाने की तैयारी किसी की भी नहीं हो सकती। ईश्वर को नहीं मानने की तैयारी बहुत लोगों की हो सकती है, लेकिन नर्क जाने की तैयारी और फिर नर्क का चित्र कि वहां आग के कड़ाहे जर रहे हैं अनंत काल से, तेल भरा है, उनमें न तेल चुकता है, न आग चुकती है और आदमी उनमें सड़ाये जा रहे हैं, चलाये जा रहे हैं। आदमी मरता भी नहीं है, उस कड़ाहे में सिर्फ जलता है। करोड़ों-करोड़ों कीड़े हैं जो आदमी के जाते ही उसके शरीर में सब तरफ से घुस जाते हैं, हजारों छेद कर देते हैं, चक्कर लगाते हैं उसके शरीर में वे कीड़े। वे कीड़े मरते नहीं, वे कीड़े अमर हैं

और आदमी के शरीर भर में छिद्र हो जाते हैं, छलनी हो जाता है, लेकिन वह भी मरता नहीं है और लाखों-करोड़ों कीड़े उसके शरीर में सब तरफ से घुसते हैं और दौड़ते हैं। इस तरह की घबराहट पैदा करते हैं। वह कहते हैं, अगर नहीं मानोगे तो नर्क जाना पड़ेगा। तो आदमी सोचता है मान ही लो। ऐसा नर्क अगर कहीं हुआ तो कौन झंझट में पड़े। ठीक है हमारे भगवान् हैं, वह कहते हैं और जो भगवान् को मान लेगा हमारे भगवान् को, क्योंकि भगवान् बहुत प्रकार के हैं। भगवान् का कोई एक प्रकार नहीं है, कोई एक क्वालिटी नहीं, बहुत गुण है, बहुत भेद है, बहुत सी वेराइटीज हैं भगवान् की। मुसलमान का भगवान् अलग तरह का है, हिंदू का अलग तरह का है, ईसाई का अलग तरह का है। जितने तरह के लोग हैं उतने तरह के भगवान् हैं। वे सब कहते हैं कि हमारे भगवान् के सिवा अगर दूसरे के भगवान् को मानोगे तो फिर तुम समझ लेना, नर्क के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जायगा, क्योंकि आखीर में जीसस क्राइस्ट ही बचायेंगे, ईसाई कहते हैं। मुसलमान कहता है जब मुहम्मद को पकड़ो तब वही बचायेंगे कोई और बचाने वाला नहीं है। तो ध्यान रखना, अगर मुहम्मद से बचे तो गये दोजख में, अगर जीसस से बचे तो जलना पड़ेगा अनंत काल तक अग्नि में। हां, और जो जीसस को मानेगा, मुहम्मद को मानेगा उसके लिए स्वर्ग में सारी सुख-सुविधाओं का इन्तजाम है। उनके लिए वहां सुंदर महल हैं और स्वर्ग, पता है आपको? यहां तो आप एकाध कमरे को एयरकंडीशन कर पाते हैं, स्वर्ग पूरा-का-पूरा एयरकंडीशंड है, शीतल मंद बहार वहां बहती रहती है सदा। वहां सूरज निकलता है लेकिन तपा नहीं होता है सिर्फ प्रकाश होता है। वहां वृक्ष कभी कुम्हलाते नहीं, फूल कभी मुरझाते नहीं, वहां पत्ते कभी पीले नहीं पड़ते, वहां कभी बुढ़ापा नहीं होता। स्त्रियों की उम्र वहां सोलह वर्ष पर रुक जाती है, ऐसा सुन्दर स्वर्ग है। वहां वृक्ष हैं कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठकर जो भी आप कामना करें वह कामना करते ही पूरी हो जाती है। ऐसा नहीं कि फिर उसके लिए कोई श्रम करना पड़ता हो, ऐसा नहीं कि किसी से कहना पड़ता हो। आप वृक्ष के नीचे बैठ गये और आपने कहा कि एक देवी मौजूद हो जाय, देवी मौजूद हो जायगी। आपने कहा पलंग आ जाय, पलंग आ जायेगी, आंख खुली और पलंग सामने मौजूद। वह कामना की और पूरी हो जाती है ऐसे कल्पवृक्ष हैं। जो हमारे भगवान् को मानेगा उसको ऐसे कल्पवृक्ष मिलेंगे, जो नहीं मानेगा उसको नर्क में डाल दिया जायगा।

इस भय के आधार पर आदमी को कुछ भी मनाने की कोशिश की जाती है। फिर भीड़ का भय, जिनके साथ जीना है उनके अनुकूल न रहो तो बहुत मुसीबत हो जाती है, वे मुसीबत में डाल देंगे, जीना मुश्किल कर देंगे। लड़की का विवाह

होना मुश्किल हो जायगा, समाज की जिंदगी कठिन हो जायगी। उसके भय से मानते चलो जो लोग कहते हैं। भीड़ के भय को मान लो। भीड़ जिसको कहे भगवान् उसको भगवान् भीड़ जिसको कहे शास्त्र उसको शास्त्र। भीड़ कहे रात है अभी तो कहना रात, भीड़ कहे दिन है कहना दिन। लेकिन भीड़ को मानने वाले व्यक्ति कभी भी आत्मा के विकास को उपलब्ध नहीं होते। आत्मा के विकास को वे उपलब्ध होते हैं जो सत्य की सतत चेष्टा करते हैं खोज की, जो सत्य के लिए कुछ भी खोने को तैयार होते हैं, जो सत्य के लिए सब कुछ दांव पर लगाने का साहस जुटाते हैं वे लोग सत्य को उपलब्ध होते हैं। लेकिन इस देश ने तो सत्य को पाने की सामर्थ्य और आकांक्षा ही खो दी है। वह कहता है आलोचना ही मत करना, वह कहता है विचार ही मत करना। नहीं मैं आपसे प्रार्थना करूंगा, विचार करना, संदेह करना, आलोचना करना। आपके महात्मा और आपके महापुरुष इतनी कच्ची मिट्टी के नहीं हैं कि आपकी आलोचना और आपके विचार से नष्ट हो जायेंगे। वे बचेंगे और निखर कर बचेंगे जैसे स्वर्ण आग से गुजर कर और साफ हो जाता है वैसे ही आलोचना की निरंतर धारा से गुजर कर महापुरुष और निखर कर प्रकट हो जाते हैं। उनसे भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं और जो नहीं प्रकट हो सकेंगे उनसे जितनी जल्दी छुटकारा हो जाय उतना ही अच्छा है। उनके साथ कब तक जियेंगे हम। उनको जिलाने की जरूरत क्या है? इसलिए मैंने जान कर एक उदाहरण की तरह गांधी को चुन कर बात की है और अगर मुझे ख्याल आ गया तो मैं एक-एक महापुरुष पर बात करने का विचार करता हूं और एक-एक महापुरुष पर विचार करना पड़ेगा।

मुल्क की प्रतिभा को जगाना जरूरी है। मुल्क के खोये प्राणों को फिर से गति देना जरूरी है, मुल्क के मन में फिर एक मंथन पैदा करना जरूरी है। अगर मंथन पैदा हो जाय, अगर चिंतन पैदा हो जाय, अगर विचार पैदा हो जाय तो हम हजारों साल के अंधकार को मिटाने में समर्थ हो जायेंगे। एक छोटा-से दिये से हजारों साल का अंधकार मिट जाता है। अंधकार यह नहीं कहता कि मैं हजार साल पुराना हूं इसलिए इस छोटे-से दिये से कैसे मिटूंगा, नहीं मिटता। एक दिन का दिया है उससे मैं कैसे मिटूंगा, मैं हजारों साल पुराना हूं। विचार का दिया जले इस देश के प्राणों में तो हजारों साल का अंधकार पलभर में मिट सकता है।

छठा प्रवचन (प्रश्नोत्तर)

उगती हुई जमीन

एक मित्र ने पूछा कि आप गांधीजी की अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं क्या ? और यदि अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं गांधी की, तो क्या आपका विश्वास हिंसा में है ?

पहली बात यह कि मेरा विश्वास हिंसा में तनिक भी नहीं है और दूसरी बात यह कि गांधी की अहिंसा में भी विश्वास नहीं करता हूं। गांधी की अहिंसा में भी बहुत अहिंसा नहीं मालूम देती, इसलिए गांधी की अहिंसा बहुत लचर, बहुत कमजोर है। गांधी की अहिंसा मुझे बहुत अधकचरी इसलिए लगती है क्योंकि पूर्ण अहिंसा में मेरी आस्था है। गांधीजी की अहिंसा के वास्तविक अंतराल में झांकने पर मुझे अचंभा-सा होता है।

गांधी जी अफ्रीका में बोर युद्ध में स्वयंसेवक की तरह सम्मिलित हुए। बोर अपनी आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे और गांधी जी गोरों की आजादी की लड़ाई को दबाने के लिए, जो साम्राज्यशाही प्रयास कर रही थी उस साम्राज्यशाही की ओर से स्वयंसेवक की तरह भरती हुए। गांधी जी पहले महायुद्ध में अंग्रेजों के एजेंट की तरह भारत में लोगों को फौज में भरती करवाने का काम करते रहे। यह बहुत अचंभे की बात मालूम पड़ती है कि पहले महायुद्ध में गांधी ने लोगों को फौज में भरती होने और युद्ध में जूझने की प्रेरणा दी। पंजाब के गांवों में मुसलमानों ने बगावत कर दी। मुसलमानों को दबाने के लिए अंग्रेजों ने गोरखों की फौज भेज दी थी। अंग्रेजों का न्याय था कि अगर हिन्दू किसी गांव में विद्रोह करें तो मुसलमानों की सेना टुकड़ी भेजो और यदि मुसलमानों का गांव विद्रोह करे तो हिन्दुओं की टुकड़ी वहां भेजो ताकि दोनों ही संप्रदायों को आग में झोंककर, उसके हाथ सेकें जा सकें। गोरखों की टुकड़ी ने एक अद्‌भुत ऐतिहासिक कार्य किया। गोरखों की टुकड़ी ने मुसलमान बस्ती पर मुसलमान लोगों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। वे बन्दूकों को जमीन पर टेक कर खड़े हो गये और उन्होंने कहा, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चलायेंगे। यह बड़ी अद्‌भुत और बड़ी अहिंसात्मक घटना थी। उन टुकड़ियों ने अपनी जान बाजी पर लगाकर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। उन्होंने जाकर अपनी बंदूकें छावनी में जमा करवा दीं और जाकर समर्पण

कर दिया और कहा कि हम गोली चलाने से इन्कार करते ह, चाहे जो भी सजा दी जाय हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चला सकते।

हम तो सोच सकते थे कि गांधी जी इन सैनिकों की प्रशंसा करेंगे। लेकिन गांधी जी ने इन सैनिकों की निन्दा की। इंगलैण्ड में जब गांधी जी से पूछा गया कि आश्चर्य की बात है कि आपने अहिंसक होते हुए इन सैनिकों की निन्दा की, जिन्होंने बन्दूकें चलाने से इन्कार किया। तो गांधी जी ने क्या कहा, आपको पता है !

गांधी जी ने कहा—में सैनिकों को आज्ञाहीनता नहीं सिखा सकता हूं क्योंकि कल जब देश आजाद हो जायगा और सत्ता हमारे हाथ में आ जायेगी तो इन्हीं सैनिकों के सहारे हमें शासन करना है।

यह किस प्रकार की अहिंसा है ? यह थोड़ा विचारना है।

वे सैनिक भी दंग रह गये होंगे। अगर गांधी जी ने इन लोगों की प्रशंसा की होती तो हिन्दुस्तान भर का सैनिक यह हिम्मत जुटा सकता था, वह हर हिन्दुस्तानी चाहे वह किसी भी संप्रदाय का हो, पर गोली चलाने के लिए इन्कार कर देता। लेकिन गांधी जी ने इन सैनिकों की निन्दा की, आज्ञाहीनता के आधार पर और कहा कि अहिंसा को तोड़ना उचित नहीं है। सैनिकों का कर्त्तव्य है कि वे आज्ञा मानें। क्यों ? क्योंकि कल जब गांधीजी के लोगों के हाथ में देश जायेगा तो इन्हीं सैनिकों के सहारे शासन चलाना है। अब हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि २२ वर्ष की आजादी के इतिहास में गांधी जी के पीछे चलने वाले लोगों के हाथ में जब से सत्ता आयी है, शासन का दमन बढ़ता ही गया है, गोलियों और संगीनों के आधार पर शासन चलाया जा रहा है। ये गोलियां सत्ता के चलाये जाने के काम में लायी जा रही हैं। अब सत्ता गांधीवादियों के हाथ में है। अंग्रेजों ने भी कभी हिन्दुस्तान में इतनी गोलियां नहीं चलायी थीं जितनी कि जिसको हम अपना शासन कहते हैं, उन्होंने चलायीं और जिस क्रूरता से गोली चलायी और जितने लोगों की हत्या की ! यह बहुत आश्चर्य की बात है। लेकिन यह भी साथ में समझ लेना जरूरी है कि गांधी जी अहिंसात्मक रूप से जो आन्दोलन चलाते थे वह आंदोलन ही दबाव डालने के लिए था और मेरी दृष्टि में जहां दबाव है वहां हिंसा है। चाहे दबाव कहीं से डालाजाय, चाहे आपके घर के सामने आकर अनशन करके बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानोगे। यह दबाव ही हिंसा है। दबाव मात्र हिंसा है। दबाव डालने के ढंग अहिंसात्मक हो सकते हैं लेकिन दबाव खुद हिंसा है। अगर मैं अपनी बात मनवाने के लिए अपनी जान दांव पर लगा दूं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा तो जिसको हम सत्याग्रह कहते हैं और अनशन करते हैं वह क्या है ? वह आत्महत्या की

धमकी है और वह धमकी हिंसा है। चाहे दूसरे को मारने की धमकी हो, चाहे अपने को मारने की धमकी हो। धमकी सदा हिंसात्मक है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह धमकी अपने लिए है या दूसरे के लिए है। कई बार यह भी हो सकता है कि मैं आपको मारने के लिए धमकी दुं तो आप मेरा मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन जब मैं अपने को मारने की धमकी देता हूं तो आपको निहत्था कर देता हूं, आप मुकाबला नहीं कर सकते हैं। यह हिंसा ज्यादा सूक्ष्म है और बहुत टिकी हुई है। इसका पता चलाना बहुत मुश्किल है। अगर अहिंसात्मक सत्याग्रह किसी को करना हो तो न तो खबर करनी चाहिए, न जनता को पता चलना चाहिए, न जिस आदमी के हृदय-परिवर्तन के लिए कोशिश कर रहा हूं उसको खबर करनी चाहिए। मौन, एकांत में मैं अपने को शांत करूं, ध्यानस्थ हो जाऊं, समाधि-मग्न हो जाऊं, अपने को पवित्र करूं, प्रार्थना करूं और हृदय में वे विचार भी हों जो दूसरे व्यक्ति को परिवर्तित करते रहें तब तो यह अहिंसा हुई। लेकिन यदि अखबारों में प्रचार हो, भीड़भाड़ को पता चल जाय, मेरी जान को बचाने वाले लोग खुश हो जायं और जिस आदमी को बदलना चाहता हूं उसके दरवाजे पर बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा। यह अहिंसा नहीं है। यह सब हिंसा है, यह हिंसा का ही रूपान्तरण है, ये हिंसा के ही श्रेष्ठतम छद्म रूप हैं।

मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना है, एक युवक एक युवती से प्रेम करता था और उसके प्रेम में दीवाना था, लेकिन इतना कमजोर था कि हिम्मत भी नहीं जुटा पाता था कि विवाह करके उस लड़की को घर ले आये, क्योंकि लड़की का बाप राजी नहीं था। फिर किसी समझदार ज्ञानी ने उसे सलाह दी कि अहिंसात्मक सत्याग्रह क्यों नहीं करता ? कमजोर कायर, वह डरता था। उसको यह बात जंच गयी। कायरों को अहिंसा की बात एकदम जंच जाती है—इसलिए नहीं कि अहिंसा ठीक है, बल्कि कायर इतने कमजोर होते हैं कि कुछ और नहीं कर सकते। गांधीजी की अहिंसा का जो प्रभाव इस देश पर पड़ा वह इसलिए नहीं कि लोगों को अहिंसा ठीक मालूम पड़ी। लोग हजारों साल के कायर हैं और कायरों को यह बात समझ में पड़ गयी है कि ठीक है, इसमें मरने मारने का डर नहीं है, हम आगे जा सकते हैं। लेकिन तिलक गांधी जी की अहिंसा से प्रभावित नहीं हो सके, सुभाष भी प्रभावित नहीं हो सके। भगतसिंह फांसी पर लटक गया और हिन्दुस्तान में एक पत्थर नहीं फेंका गया उसके विरोध में ! आखिर क्यों !! उसका कुल कारण यह था कि हिन्दुस्तान जन्मजात कायरता में पोषित हुआ है। भगतसिंह फाँसी पर लटक रहे थे, गांधीजी वायसराय से समझौता कर रहे थे और उस समझौते में हिन्दुस्तान के लोगों को आशा थी कि शायद भगतसिंह बचा लिया जायगा, लेकिन गांधीजी

ने एक शर्त रखी कि मेरे साथ जो समझौता हो रहा है उस समझौते के आधार पर सारे कैदी छोड़ दिये जायेंगे लेकिन सिर्फ वे ही कैदी जो अहिंसात्मक ढंग के कैदी होंगे। उसमें भगतसिंह नहीं बच सके, क्योंकि उसमें एक शर्त जुड़ी हुई थी कि अहिंसात्मक कैदी ही सिर्फ छोड़े जायेंगे। भगतसिंह को फाँसी लग गयी। जिस दिन हिन्दुस्तान में भगतसिंह को फाँसी हुई उस दिन हिन्दुस्तान की जवानी को भी फाँसी लग गयी। उसी दिन हिन्दुस्तान को इतना बड़ा धक्का लगा जिसका कोई हिसाब नहीं। गांधी की भीख के साथ हिन्दुस्तान का बुढ़ापा जीता, भगतसिंह की मौत के साथ हिन्दुस्तान की जवानी मरी। क्या भारतीय युवा पीढ़ी ने कभी इस पर सोचा है ?

उस युवक को किसी ने सलाह दी, तू पागल है, तेरे से कुछ और नहीं बन सकेगा, अहिंसात्मक सत्याग्रह कर दे। वह जाकर उस लड़की के घर के सामने बिस्तर लगाकर बैठ गया और कहा कि मैं भूखा मर जाऊंगा, आमरण अनशन करता हूं, मेरे साथ विवाह करो। घर के लोग बहुत घबराये, क्योंकि वह और कुछ धमकी देता तो पुलिस को खबर करते लेकिन उसने अहिंसात्मक आंदोलन चलाया था और गांव के लड़के भी उसका चक्कर लगाने लगे। वह अहिंसात्मक आंदोलन है, कोई साधारण आन्दोलन नहीं है और प्रेम में भी अहिंसात्मक आंदोलन होना ही चाहिए। घर के लोग बहुत घबराये। फिर बाप को किसी ने सलाह दी कि गांव में जाओ, किसी रचनात्मक, किसी सर्वोदयी, किसी समझदार से सलाह लो कि अनशन में क्या किया जा सकता है। बाप गये, हर गांव में ऐसे लोग हैं जिनके पास और कोई काम नहीं है। वे रचनात्मक काम घर बैठे करते हैं। बाप ने जाकर पूछा, हम क्या करें बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। अगर वह छुरी लेकर धमकी देता तो हमारे पास इन्तजाम था, हमारे पास बन्दूक है, लेकिन वह मरने की धमकी देता है, अहिंसा से। उस आदमी ने कहा घबराओ मत, रात मैं आऊंगा, वह भाग जायेगा। वह रात को एक बूढ़ी वेश्या को पकड़ लाया। उस वेश्या ने जाकर उस लड़के के सामने बिस्तर लगा दिया और कहा कि आमरण अनशन करती हूं, तुमसे विवाह करना चाहती हूं। वह रात बिस्तर लेकर लड़का भाग गया।

गांधीजी ने अहिंसात्मक आंदोलन के नाम पर, अनशन के नाम पर, जो प्रक्रिया चलायी थी, भारत उस प्रक्रिया से बरबाद हो रहा है। हर तरह की नासमझी इस आन्दोलन के पीछे चल रही है। किसी को आन्ध्र अलग करना हो तो अनशन कर दो, कुछ भी करना हो, आप दबाव डाल सकते हैं और भारत को टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा है, भारत को नष्ट किया जा रहा है। वह एक दबाव मिल गया है आदमी को दबाने का। मर जायेंगे, अनशन कर देंगे, यह सिर्फ हिंसात्मक रूप है, अहिंसा नहीं है। जब तक किसी आदमी को जोर-जबरदस्ती से बदलना

चाहता हूं चाहे वह जोर-जबरदस्ती किसी भी तरह की हो, उसका रूप कुछ भी हो, तब तक मैं हिंसात्मक हूं। मैं गांधीजी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं––उसका यह मतलब न लें कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं। अखबार यही छापते हैं कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं। मैं गांधीजी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं, क्योंकि मैं अहिंसा के पक्ष में हूं। लेकिन उसको मैं अहिंसा नहीं मानता इसलिए मैं पक्ष में नहीं हूं। गांधीजी की अहिंसा चाहे गांधीजी को पता हो या न हो, हिंसा करेगी। यह हिंसा बड़ी सूक्ष्म है। एक आदमी को मार डालना भी हिंसा है और एक आदमी को अपनी इच्छा के अनुकूल ढालना भी हिंसा है। जब एक गुरु दस-पच्चीस शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करके उनको ढालने की कोशिश करता है अपने जैसा बनाने की, जैसे कपड़े मैं पहनता हूं वैसे कपड़े पहनो, जब मैं उठता हूं ब्राह्म मुहूर्त में तब तुम उठो, जो मैं करता हूं वही तुम करो––तो हमें पता नहीं है, यह चित्त बड़ी सूक्ष्म हिंसा की बात सोच रहा है। दूसरे आदमी को बदलने की चेष्टा में, दूसरे आदमी को अपने जैसा बनाने की चेष्टा में आदमी भी हिंसा करता है। जब एक बाप अपने बेटे को अपने जैसा बनाने की कोशिश करता है तो बाप को पता है, यह हिंसा है। जब बाप बेटे से कहता है कि तू मेरे जैसा बनना तो दो बातें काम कर रही हैं। एक तो बाप का अहंकार और दूसरे कि मेरे बेटे को मैं अपने जैसा बनाकर छोड़ूंगा। यह प्रेम नहीं है। सारे गुरु लोगों को अपने जैसा बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उस प्रयत्न में व्यक्ति हिंसा करता है। जो आदमी अहिंसक है वह आदमी किसी आदमी को अपने जैसा नहीं बनायेगा। जो आदमी अहिंसक है वह कहता है कि तुम अपने ही जैसा बन जाओ बस यही काफी है, मेरे जैसे बनने की कोई जरूरत नहीं है। कोई अहिंसात्मक व्यक्ति किसी को अपना अनुयायी नहीं बना सकता है, क्योंकि अनुयायी बनाना सूक्ष्म हिंसा है। कोई अहिंसक व्यक्ति किसी को अपना शिष्य नहीं बना सकता है क्योंकि गुरु बनने जैसी हिंसा खोजनी दुनिया में बहुत मुश्किल है। लेकिन ये सूक्ष्म हिंसाएं हैं जो दिखायी नहीं देतीं और यह भी ध्यान रहे कि जब कोई आदमी दूसरे के साथ हिंसा करना बन्द कर देता है तो हिंसा की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती, हिंसा की प्रवृत्ति स्वयं पर लौट जाती है। अपने साथ हिंसा करना शुरू कर देता है। जिसको हम तपश्चर्या कहते हैं, तप कहते हैं, त्याग कहते हैं, सौ में ९९ मौके पर अपने पर लौटी हुई हिंसा के दूसरे नाम हैं और कुछ भी नहीं।

एक आदमी दूसरे को सताना चाहता है। अंग्रेजी में एक शब्द सेडिस्ट है, जो आदमी दूसरे को सताना चाहता है उसको वे कहते हैं सेडिस्ट, उसे वे कहते हैं परपीड़नवादी। एक दूसरा शब्द है मेसोचिस्ट, जो आदमी अपने को ही सताने में लग जाता है उसको कहा जाता है मेसोचिस्ट, आत्मपीड़नवादी। हम दूसरों को

सताने वाले को तो हिंसक कहते हैं, लेकिन खुद को सताने वाले को हिंसक नहीं कहते हैं और मजा यह है कि दूसरे को सताने में तो दुनिया बाधा डाल सकती है पर स्वयं को सताने में कोई भी बाधा नहीं डाल सकता है। स्वयं को सताने में प्रत्येक आदमी मुक्त है। यह जो तपश्चर्या करने वाले लोग हैं, ये कांटों में खड़े लोग हैं, धूप में खड़े लोग हैं, भूख और उपवास करने वाले लोग हैं––इनकी पूरी कथा आप समझें। इनके आविष्कारों का आप पता लगायें कि कैसे-कैसे अपने को सताने के, आत्मपीड़ा के उपाय निकालते हैं। कैसे उनको साधु कहें जो अपनी जननेन्द्रियां काट लेते रहे? ऐसे साधु रहे हैं जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ ली और अंधे हो गये और ऐसे साधु भी रहे हैं जो पैर में जूते में कीलें लगाते रहे ताकि पैर में घाव बनते रहें। कमर में पट्टे बांधते रहे और कीलें लगाते रहे ताकि कमर में घाव बनते रहें। शरीर को सब तरह से कोड़े मारने वाले साधुओं की लंबी जमात रही है। वे कोड़े मारने वाले साधु सुबह से उठकर कोड़े मार रहे हैं और जो जितने ज्यादे कोड़े मारेगा उतना बड़ा साधु हो जायेगा।

ये सारे के सारे लोग हिंसक लोग हैं, ये अहिंसक लोग नहीं हैं, केवल अंतर इतना है कि इनकी हिंसा दूसरे पर न जाकर स्वयं पर लौट आयी है। उसने वापस लौटना प्रारंभ कर दिया है। अहिंसा बहुत अद्भुत बात है, लेकिन हिंसा से बचना बहुत मुश्किल है। हिंसा को बदल लेना बहुत आसान है, हिंसा नये रूपों में खड़ी हो जाती है। दूसरों को बदलने की चिंता, दूसरों को बदलने का दबाव, दूसरों को अपने जैसा बनाने की सारी कोशिश हिंसा है और दुनिया के सारे गुरुओं को और दुनिया के इन सारे लोगों जो अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी करते हैं, जमातें खड़ी करते हैं। और अपनी शकल के आदमी पैदा करते हैं। उन सबको मैं एक कतार में हिंसक मानता हूं। अहिंसक व्यक्ति दूसरी बात है। अहिंसक का मतलब है ऐसा व्यक्ति, जो किसी पर भी किसी तरह का दबाव डालने की कामना से मुक्त हो गया है, क्योंकि दबाव डालकर हम दूसरे से श्रेष्ठ हो जाते हैं और आपने कभी ख्याल किया है, छुरा बताकर आप दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होते लेकिन अनशन करके आप दूसरों से श्रेष्ठ हो जाते हैं। नीत्शे ने एक बात कही है मजाक में जीसस के खिलाफ। कहा है कि जीसस ने कहा है कि कोई गाल पर तुम्हारे चांटा मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। नीत्शे ने कहा है, इससे ज्यादा अपमान दूसरे आदमी का और क्या हो सकता है? तुमने उसे आदमी ही नहीं माना, अपने बराबर भी नहीं माना। किसी ने चांटा मारा तुम्हारे गाल पर, तुमने दूसरा गाल कर दिया। उस दूसरे आदमी से देवता हो गया, वह जमीन का कीड़ा हो गया। नीत्शे ने मजाक में कहा है कि दूसरे आदमी का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है और यह हो

सकता है कि कोई आदमी प्रेम के कारण दूसरा गाल न करे, सिर्फ इसलिए दूसरा गाल कर दे कि देख लो, तुम हो जमीन के कीड़े, हम हैं फरिश्ते, हम हैं देवता। दूसरे से ऊंचा होने की तरकीब इतनी बारीक है कि एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है सिंहासन पर बैठकर और एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है त्याग करके। लेकिन दूसरे से ऊंचा होने की कामना अगर भीतर शेष है तो वह कामना हिंसा में ले ली जाती है, अहिंसा में नहीं। जब भी हम दूसरे से ऊंचा होने की कामना में संलग्न हो जाते हैं, चाहे हमें ज्ञात हो और ज्ञात न हो, चाहे हमें कांसेसली पता हो और चाहे अनकांसेस माइंड काम कर रहा हो, चाहे अचेतन मन काम कर रहा हो और हमें पता न हो, लेकिन दूसरे को बदलने की कोशिश में स्वयं ही श्रेष्ठता भीतर अनुभव होनी शुरू हो जाती है।

मैं इस सबके बुनियादी रूप से खिलाफ हूं। मैं मानता हूं कि व्यक्ति प्रार्थना कर सकता है, ध्यान कर सकता है, व्यक्ति अंतस् को शुद्ध कर सकता है और उसके अंतस् की शुद्धि के कारण उसके चारों तरफ के दबावों में परिवर्तन शुरू हो जायेगा। लेकिन वह परिवर्तन उस व्यक्ति की चेष्टा नहीं है, उस व्यक्ति का प्रयास नहीं है। महावीर और बुद्ध भी अहिंसक थे। गांधी की अहिंसा से मैं उनकी अहिंसा को श्रेष्ठतर और शुद्धकर मानता हूं। गांधी के और बुद्ध के बीच हम और करें कुछ बातें तो पता चलेगा। महावीर और बुद्ध किसी को बदलने के लिए कोई अहिंसक आंदोलन नहीं कर रहे हैं, लेकिन भीतर आत्मा प्रविष्ट हुई है, उसकी किरणें आयेंगी और बिना प्रयास के चारों तरफ बदलाहट लानी शुरू करती हैं। अहिंसक आदमी ने दुनिया में पहले भी अपना हिंसा की किरणें दी हैं लेकिन वे किरणें प्यार करके दी गयी हैं और चेष्टा करके नहीं दी गयी हैं। वे किरणें उपलब्ध होती हैं। सूरज निकलता है और अंधेरा विलीन हो जाता है। सूरज कोई घोषणा नहीं करता कि अंधेरे को दूर करने मैं आ गया हूं, अंधेरा सावधान!

अहिंसा कुछ करती नहीं है, अहिंसा से परिवर्तन आता है। अहिंसक परिवर्तन चाहता नहीं। गांधी की अहिंसा में परिवर्तन की चाह बहुत स्पष्ट है इसलिए मैं उसे अहिंसा नहीं मानता हूं। गांधी की अहिंसा में मेरी कोई श्रद्धा, कोई विश्वास नहीं है क्योंकि वह अहिंसा ही मुझे दिखायी नहीं पड़ती। मैं कोई हिंसा का पक्षपाती नहीं हूं, मुझसे ज्यादा हिंसा का दुश्मन खोजना कठिन है, क्योंकि अहिंसा में ही मुझे जहाँ हिंसा दिखायी पड़ती हो उस हिंसा से मैं राजी नहीं हो सकता हूं।

एक दूसरे मित्र ने इसी संबंध में पूछा है कि आप कहते हैं कि क्रांति अहिंसक ही हो सकती है, लेकिन एक मित्र ने पूछा है कि क्रांति तो सदा हिंसक होती है, अहिंसक क्रांति तो कभी नहीं होती।

जिस क्रांति में हिंसा है उसे मैं क्रांति नहीं कहता। वह क्रांति नहीं है, सिर्फ उपद्रव है। उपद्रव और क्रांति में बहुत फर्क है। जिस क्रांति के साथ हिंसा जुड़ गयी वह क्रांति खत्म हो गयी। हिंसा से क्रांति खत्म है क्योंकि क्रांति का अंतिम अर्थ क्या है? क्रांति का अंतिम अर्थ है आत्मिक परिवर्तन, हार्दिक परिवर्तन, लोगों की चेतना का बदल जाना और जब हम लोगों की चेतना को नहीं बदल पाते हैं, जब लोगों की चेतना नही बदलती है तब हम हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी हिंसा पर उतारू हो जाता है वह लोगों की चेतना बदल सकेगा? इस संबंध में एक करोड़ लोगों की कम से कम हत्या की गयी। करोड़ लोगों की हत्या करके भी क्या किसी व्यक्ति की चेतना को बदला जा सका, किसी को रूपान्तरित किया जा सका? हिटलर ने भी करीब अस्सी लाख लोगों की हत्या की, लेकिन क्या रूपान्तरण हो गया? कौन सी क्रांति हो गयी? सामान बांट दिया गया, संपत्ति व्यक्तिगत न रही, जो एक करोड़ लोगों को बिना मारे भी हो सकता था और एक करोड़ लोगों को मारने के कारण जो परिवर्तन हुआ वह इतना तनावपूर्ण है कि जब तक हिंसा ऊपर छाती पर सवार है तभी तक उसको कायम रखा जा सकता है, अन्यथा परिवर्तन विलीन होना शुरू हो जायगा। स्टैलिन के जाने के बाद रूस के कदम विकास की तरफ निश्चित रूप से उठे। स्टेलिन के हटते ही जैसे हिंसा कम हुई है। रूस के कदम विकास की तरफ उठे। रूस में जब से व्यक्तिगत संपत्ति का पुनर्आगमन हुआ, रूस में कारें व्यक्तिगत रूप से रखी जा सकती है, जिसकी वहां कल तक कल्पना नहीं थी। मकान भी व्यक्तिगत हो सकता है, तनख्वाहों में भी फर्क पैदा हुए—जैसे ही हिंसा से लायी हुई क्रांति विलीन हो जायेगी। हिंसा से लायी गयी क्रांति जबरदस्ती है और जबरदस्ती कहीं क्रांति लायी जा सकती है? जबरदस्ती थोड़ा बहुत देर किसी को रोका जा सकता है। जिस चीज को जबरदस्ती से रोकना पड़ता है उसके खिलाफ लोगों का विद्रोह होना शुरू हो जाता है। अच्छे काम भी अगर जबरदस्ती करवाये जायं। आप यहाँ बैठे हैं, आप अपनी मौज से यहां आये हैं और अगर आपको अभी खबर की जाय कि आप दो घंटे तक बाहर नहीं निकल सकते हैं, बस यहां बैठना असंभव हो जायेगा। आदमी के साथ आत्मा है, आदमी की आत्मा दबाव को इन्कार करती है और करनी चाहिए चाहे वह दबाव अच्छे के लिए ही क्यों न डाला गया हो। दबाव दबाव है। आदमी के अच्छे के लिए भी दबाव डालने पर आदमी विद्रोह करता है। आपको पता है, अच्छे मां बाप अपने बेटों को बिगाड़ने का बुनियादी कारण बनते हैं। पता है आपको क्यों? दुनियां में अच्छे मां-बाप जबरदस्ती बच्चे को अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं। दुनियां में कभी किसी को जबरदस्ती अच्छा नहीं बनाया गया है और जो मां बाप अपने बच्चे

को जबरदस्ती अच्छा बनाते हैं वह मां बाप बच्चों के दुश्मन हैं और अपने बच्चे को बिगाड़ने का काम करते हैं क्योंकि बच्चे विद्रोह करना शुरू करते हैं। बच्चे के पास जो आत्मा है वह इन्कार करना चाहती है जबरदस्ती को और अगर अच्छे के लिए जबरदस्ती की गयी तो फिर अच्छे को इन्कार करनाचाहते हैं क्योंकि जबरदस्ती को इन्कार करने से हिंसा शुरू हो जायगी। क्योंकि कोई भी बात जबर-दस्ती से नहीं लायी जा सकती और जबरदस्ती से लाने का मतलब यह है कि लाने वाला बहुत कमजोर है, लोगों को समझा नहीं पाता है, लोगों के हृदय को, मस्तिष्क को राजी नहीं कर पाते हैं। और जब आप लोगों को राजी नहीं कर पाते हैं उनके अच्छे के लिए भी, तो फिर आपकी वह अच्छाई बड़ी संतुलित है। दुनिया में कोई क्रांति हिंसा से नहीं हो सकती है। हाँ, क्रांति के नाम से हिंसा पलती रही है, लेकिन अब तक कौन सी क्रांति हो गयी है दुनिया में ?···नहीं हिंसा से क्रांति हो ही नहीं सकती है। क्योंकि क्रांति जबरदस्ती नहीं हो सकती है। क्रांति होगी तो हृदय से होगी। हिंसा तो अति जटिल है और क्रांति अति सरल। मैं उस क्रांति के पक्ष में हूँ जिस क्रांति में दमन नहीं होगा, जिस क्रांति में छाती पर दबाव नहीं होगा, जो क्रांति भीतर से फूल की तरह खिलेगी और व्यक्तित्व को बदल देगी। मनुष्य में उस क्रांति की प्रतिष्ठा चाहिए है। फ्रांस की क्रांति असफल हो गयी क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। रूस की क्रांति सफल नहीं हो सकी क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। माओ जो क्रांति करवा रहे हैं चीन में वह सफल नहीं होगी, क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी है। गांधी की क्रांति जो कि बड़ी अहिंसात्मक दिखायी पड़ती थी वह भी असफल हो गयी क्योंकि बुनियाद में उसके हिंसा थी। हम देख रहे हैं अपने मुल्क में, गांधी की क्रांति, जो कि एक तरह से लाख दरजे बेहतर क्रांति है, माओ से, जिसका कि अहिंसा की तरफ रुख है, झुकाव है, यद्यपि जो अहिंसात्मक नहीं है बुनियाद में, वह भी असफल हो गयी है। बाईस साल की आजादी के बाद की दुःखद कथा बताती है कि गांधी की क्रांति असफल हो गयी है।

गांधी तक की क्रांति असफल हो जाती है, क्योंकि मेरा मानना है कि एक दबाव है, बदलने की तीव्र आकांक्षा है। तो फिर लेनिन और स्टेलिन और माओ की क्रांति कैसे सफल हो सकती है ? दुनिया प्रतीक्षा करती थी एक क्रांति की जो क्रांति चेतना की और अहिंसा की क्रांति होती, लेकिन क्रांति की तैयारी में सबसे बड़ी बाधा क्या है ? सबसे बड़ी बाधा हिंसा में आस्था है। जिन लोगों की हिंसा में आस्था है वे लोग दुनिया के चित्त को बदलने के अहिंसात्मक विधान में कूदते भी नहीं, विचार भी नहीं करते, चिंता भी नहीं करते। उस दिशा में कोई काम नहीं करते। हमें यह ख्याल ही नहीं है। एक गाँव में एक हजार लोग, पचास लाख लोगों में से एक

हजार लोग भी अगर अहिंसात्मक हों तो पचास लाख लोगों के चित्त में बुनियादी रूपांतर शुरू हो जायगा, लेकिन हमें इसका कुछ पता नहीं।

अभी रूस में एक वैज्ञानिक फयादोव ने एक प्रयोग किया है। फयादोव रूस का एक मनोवैज्ञानिक है और चूंकि प्रयोग रूस में हुआ है इसलिए महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुस्तान में योगी तो बहुत दिन से यह कहता है, लेकिन कोई सुनता नहीं है। हिन्दुस्तान का योगी यह कहता है कि विचार इतनी बड़ी शक्ति है कि अगर कोई विचार किसी व्यक्ति के हृदय में पूर्ण संकल्प से स्थापित हो जाय तो चारों तरफ उस विचार की तरंगें फैलनी शुरू हो जाती हैं और हजारों लोगों को अहिंसा में रूपांतरित कर देती हैं। एक बुद्ध का पैदा होना, एक महावीर का खड़ा होना इतनी बड़ी क्रांति है जिसका कोई हिसाब नहीं, जिसका कि हमें कोई पता नहीं चलता। क्योंकि लाखों लोगों के प्राण-कमल उनकी किरणों से खिलने शुरू हो जाते हैं। फयादोव ने एक प्रयोग किया रूस में विचार-संक्रमण का, टेलीपैथी का, विचार को दूर भेजने का। उसने मास्को में बैठकर एक हजार मील दूर विचार का संप्रेषण किया। मास्को में बैठा है वह अपनी लेबोरेटरी में और एक हजार मील दूर किसी गाँव के बगीचे में, पब्लिक पार्क में दस नम्बर की बेंच पर एक आदमी बैठा है, उसके पीछे एक भाई छिपकर बैठे हैं। उन्होंने उठाकर फोन किया कि दस नम्बर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है, आप अपने विचार से प्रभावित करके उसे सुला दें। फयादोव एक हजार मील दूर से कामना करता है अपने मन में कि वह जो आदमी दस नम्बर की बेंच पर बैठा है वह सो जाय, सो जाय, सो जाय। यहाँ वह पूर्ण संकल्प से, पूर्ण एकाग्र चित्त से कामना करता है। वह आदमी तीन ही मिनट के भीतर वहाँ बेंच पर आँख बन्द करके सो जाता है। लेकिन हो सकता है, यह संयोग की बात हो। दोपहर तक का थका-मांदा आदमी ऐसे ही सो सकता है। झाड़ियों में छिपे उसके मित्र ने फौरन फोन करके कहा कि यह सो गया है जरूर। तुमने कहा, तीन मिनट में सो जाओ तो तीन मिनट में सो गया। लेकिन यह संयोग भी हो सकता है। अब उसे ठीक पाँच मिनट के भीतर वापस उठा दो तो हम समझेंगे। फयादोव फिर सुझाव भेजता है कि उठो, उठो, उठो, जागो, जाग जाओ, ठीक पाँच मिनट में जाग जाओ। वह आदमी पाँच मिनट में आंख खोलकर बैठ जाता है। मित्र उसके पास जाकर पूछते हैं कि आपको कुछ अजीब-सा तो नहीं लगा। वह आदमी कहता है, अजीब-सा से मतलब ? मैं जब आया और कुछ विश्राम करने लगा तो जैसे मेरे पूरे प्राण कह रहे हैं कि सो जाओ। मैं रात अच्छी तरह सोया हूँ, थका-मांदा नहीं हूँ। पूरा व्यक्तित्व कहता है कि सो जाओ। फिर मैं सो गया। लेकिन अभी क्षण भर पहले दूर से एक आवाज आयी कि उठो, एकदम जाग जाओ।

में बहुत हैरान हुआ कि यह क्या हुआ। तो, एक हजार मील दूर भी विचार संक्रमित हो सकता है।

अभी अमरीका की एक प्रयोगशाला में एक और अद्‌भुत प्रयोग हुआ जो मैं आपसे कहना चाहूंगा। वह प्रयोग भी बहुत बहुमूल्य है आनेवाले भविष्य में। अंतरिक्ष में किये जाने वाले प्रयोग भी इसके मुकाबले कम मूल्य के सिद्ध होंगे। एटम और हाइड्रोजन के प्रयोग भी कम मूल्य के सिद्ध होंगे। वह प्रयोग बहुत अद्‌भुत है। एक प्रयोगशाला में उन्होंने विचार का चित्र पहली बार लिया था। विचार का चित्र, जो विचार आपके भीतर चलता है उस विचार का आपका नहीं। एक आदमी को बहुत ठीक से कैमरे के सामने बिठाया गया। बहुत ही संवेदनशील फिल्म लगायी गयी है और उस आदमी से कहा गया है कि एक विचार पर सारे चित्त को एकाग्र कर सोचता रह, बस एक ही चित्र पर सोचता रह और उस आदमी ने एक ही चित्र पर विचार किया, वह आदमी एक छोटे से चित्र पर अंदर विचार करता रहा और उस चित्र को फोटो की फिल्म के भीतर पकड़ लिया। इसका क्या मतलब ? इसका मतलब है कि विचार में जो चित्र था भीतर, उसका संप्रेषण, उसकी किरणें, उसकी तरंगें बाहर फिंक रही हैं जो कि फोटो की फिल्म पकड़ सकती थी।

अहिंसात्मक क्रांति का क्या अर्थ है ? अहिंसात्मक क्रांति का अर्थ है अहिंसात्मक लोग। थोड़े से भी लोग अहिंसात्मक हों तो उनके व्यक्तित्व से अहिंसा की, प्रेम की, भीतरी परिवर्तन की जो किरणें पहुंचेंगी वे लाखों के जीवन में क्रांति ले आयेंगी, इसका हमें पता भी नहीं होगा। मेरी मान्यता है कि मनुष्य जाति अहिंसात्मक क्रांति की प्रतीक्षा कर रही है और यह प्रतीक्षा जारी रहेगी जब तक कि अहिंसात्मक क्रांति नहीं हो जाती है। हम कोई भी हिंसात्मक क्रांति करें, उससे कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। जैसे कोई आदमी मुर्दे को मरघट ले जाते हैं। मुर्दे को मरघट ले जाते वक्त अर्थी को कंधे पर लेते हैं। रास्ते में एक कंधा थक जाता है तो अर्थी उठाकर दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। बस इसी तरह क्रांति में भी फर्क पड़ता है। एक कंधा दुखने लगता है, दूसरे कंधे पर बोझ रख लिया। थोड़ी देर राहत मिलती है। फिर बोझ शुरू हो जाता है। दूसरे कंधे पर बोझ शुरू हो जाता है। अब तक जितनी क्रांतियां हुई हैं, वह अब तक बोझ बदले हैं, बोझ मिटाया नहीं, आदमी के समाज को रूपांतरित नहीं किया, आदमी के समाज को पुराने गठन में नया ढंग दे दिया है। फिर जिन्दगी बड़ी गड़बड़ हो गयी, पुरानी जिन्दगी आना फिर शुरू हो जाती है। नयी सपने देखती है। रूस में क्रांति हुई, शायद सबसे महत्त्वपूर्ण क्रान्ति दुनिया की वही है। रूस की क्रांति ऐसी थी कि वर्ग मिटा

दिये जायेंगे, क्लासेस नहीं रहेंगे। वर्ग मिटा दिये गये, निश्चित मिटा दिये गये। अमीर आज ऊंचे नहीं, गरीब आज नीचे नहीं, लेकिन नया वर्ग पैदा हो गया—वह कम्युनिस्ट आफिसर, कम्युनिस्ट पार्टी का आदमी और वह जो आदमी कम्युनिस्ट पार्टी का नहीं है, यों दो वर्ग पैदा हो गये। अधिकारी सत्ताधिकारी और सत्तापूर्ण। कल था वनिक और निर्धन और आज है सत्ताधिकारी, सत्तापूर्ण, उसके बीच स्थापना हुई। वर्ग फिर नये खड़े हो गये। रूस में जो क्रांति हुई उस क्रांति से वर्ग मिटा नहीं, सिर्फ वर्ग बदल गये। पूंजीपति की जगह मैनेजर आ गया। व्यवस्थापकों की क्रांति थी, व्यवस्थापक बदल गये, जहां मालिक था वहां मैनेजर बैठ गया, सत्ताधिकारी बैठ गया; धनी की जगह। और ध्यान रहे, धनी के पास उतनी ताकत कभी नहीं थी जितनी सत्ताधिकारी के पास। धनी के हाथ में लोगों की गर्दन कभी उतनी नहीं थी जितनी कि आज कम्युनिस्ट पार्टी के पास रूस में है—उतनी बिड़ला के पास थोड़े ही है, न हो सकती है। सत्ता बदल गयी, वर्ग बदल गये, नये वर्ग आ गये, क्रांति मर गयी, क्रांति का कोई अर्थ न हुआ। फिर कंधा बदल गया।

दुनिया में अब तक क्रांति के नाम पर कंधे बदलते रहे हैं। क्या हम कंधे ही बदलते रहेंगे या सचमुच कोई क्रांति करेंगे ? अगर क्रांति करनी है तो हिंसा पर से आस्था छोड़नी ही पड़ेगी, क्योंकि जो आदमी हिंसा करता है वह आदमी जब मालिक हो जाता है तब हिंसा जारी रखता है और उसकी जो हिंसा जारी रहती है और जिस आदमी ने हिंसा की है और उसके हाथ में हिंसा की ताकत है उस आदमी से ज्यादा हम कभी आशा नहीं रख सकते। वह आदमी हिंसा को छोड़ देगा, हिंसा को बदल देगा ? वह आदमी वही रहेगा। रूस में जिन लोगों के हाथ में ताकत आयी वे लोग अच्छे थे। क्रांति के पहले सभी लोग अच्छे होते हैं, क्रांति के बाद जब ताकत हाथ में आती है, तब पता चलता है कि कौन आदमी अच्छा है, कौन आदमी बुरा है। संभावना इस बात की है कि स्टैलिन ने लेनिन को जहर देकर मारा और इस बात की संभावना है कि जितने लोग क्रांति के अग्रणी थे धीरे-धीरे करके एक-एक मारे गये। मैक्सिको में जाकर ट्राटस्की की हत्या की गयी। जिन लोगों ने क्रांति की थी स्टैलिन ने चुन-चुन कर एक-एक को मारा, क्योंकि अब सत्ता का खिलवाड़ शुरू हो गया। हिन्दुस्तान में कितने अच्छे लोगों ने गांधी के साथ क्रांति की थी। कितने अच्छे और भले ओग मालूम पड़ते थे, एकदम सफेद, धुले हुए मालूम पड़ते थे। लेकिन जब सत्ता हाथ में आयी तो पता चला कि वे लोग बदल गये, वे दूसरे आदमी साबित हुए, वे कपड़े ही सफेद थे, वे आदमी भीतर सफेद नहीं थे। क्या हो गया सत्ता के हाथ में आते ही ? सत्ता के हाथ में आते ही भीतर का असली

आदमी प्रकट होता है। जब तक हाथ में ताकत नहीं होती तब तक असली आदमी प्रकट नहीं होता। अगर आपके पास पैसे नहीं हैं तो आप फिजूल खर्च हैं, इसका कोई पता नहीं चलता। पैसा हो तो पता चलता है कि फिजूल खर्च हैं या नहीं। अगर आपके हाथ में छुरा हो मारने को तब पता चलेगा कि आप हिंसक हैं या नहीं। जब हाथ में ताकत नहीं है तब तो सभी लोग अहिंसक होते हैं। अहिंसक का पता चलता है अवसर मिलने पर, हिंसा का अवसर मिलने पर। जिन लोगों के हाथ में इस मुल्क की ताकत गयी, ताकत जाने के बाद ही पता चला कि उनके असली तत्त्व क्या थे। तो जिन लोगों के हाथ में ताकत जायेगी, अगर वे हिंसा के द्वारा ताकत को पहुंचे हैं तब तो उनकी तस्वीर पहले से ही हिंसा की है और बाद में उनकी क्या हालत होगी? अहिंसकों की हालत क्या हो जाती होगी? नहीं, हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकती, सिर्फ बोझ बदल जाते हैं, सिर्फ शकल बदल जाती है, नाम बदल जाते हैं, समाज पुराना का पुराना ही जारी रहता है। पांच हजार वर्ष के लंबे प्रयोगों के बाद भी हमें दिखायी नहीं पड़ता कि हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकी। आगे भी नहीं हो सकेगी और अगर आदमी हिंसा से जाग जाय कि हिंसा से कुछ भी नहीं हो सकता, दबाव से कुछ भी नहीं हो सकता और आदमी की आत्मा प्रेम चाहती है और आदमी की आत्मा रूपांतरित होना चाहती है, लेकिन उन लोगों के द्वारा जो रुपांतरित करने के लिए उत्सुक, आतुर नहीं हैं, जिनका कोई आग्रह नहीं है, जो जीते हुए सत्य हैं, जो जीते हुए प्रेम हैं और उनके जीने के कारण दूसरे में फैलते हैं, उनसे रूपांतरण होता है। ऐसे रूपांतरण की प्रतीक्षा मनुष्यता को है। ऐसी क्रांति अहिंसात्मक ही हो सकती है। यह बहुत स्पष्ट रूप से मेरी बात समझ लेना जरूरी है। मैं हिंसा के बिल्कुल विरोध में हूं। हिंसा के कौन पक्ष में हो सकता है? कौन बुद्धिमान, कौन विचारशील व्यक्ति हिंसा के पक्ष में हो सकता है? हिंसा के पक्ष में होने का मतलब है आदमी में बुद्धि नहीं है। क्योंकि लाठी वे ही लोग उठाते हैं जिनके पास बुद्धि नहीं होती है। जिनके पास बुद्धि होती है उन्हें लाठी पर उतरने की जरूरत नहीं पड़ती। जो लोग हाथ की ताकत में और तलवार की ताकत में विश्वास करते हैं, वे मनुष्य से नीचे दर्जे के मनुष्य हैं, उनके भीतर पापी मौजूद है, पशु ही हिंसा में विश्वास करता है। आदमी हिंसा में कैसे विश्वास कर सकता है और पशुओं के हाथ में बहुत बार सत्ता दी गयी है और आदमी ने हर बार भोगा है। आगे भी पशुओं के हाथ में सत्ता नहीं जानी चाहिए, पाशविक हाथों में, हिंसात्मक हाथों में सत्ता नहीं जानी चाहिए। इसलिए आदमी जितना सजग हो, जितना अहिंसा के सार को समझे, जितना अहिंसा के रहस्य को समझे उतना अच्छा है। अहिंसा का सार है, एक शब्द में

प्रेम, शुद्ध प्रेम। अहिंसा शब्द बहुत गलत है, क्योंकि नकारात्मक है। उससे पता चलता है हिंसा का। वह शब्द अच्छा नहीं है। शब्द है वास्तविक प्रेम। क्योंकि प्रेम पोजीटिव है, प्रेम विधायक है। जब हम कहते हैं अहिंसा, तो उससे मतलब है हिंसा नहीं करेंगे। लेकिन हिंसा नहीं करनी है इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि प्रेम करना है। हिन्दुस्तान में धार्मिकों की एक लंबी कतार है। वह सब अहिंसा को मानते हैं। इनकी अहिंसा का मतलब है पानी छानकर पीना, उनकी अहिंसा का मतलब है रात खाना नहीं खाना है, उनकी अहिंसा का मतलब है किसी को चोट नहीं पहुंचाना। लेकिन ऐसी अहिंसा बड़ी अहिंसा नहीं है जो कि सिर्फ दूसरे को दुख पहुंचाने से बचती है। असली अहिंसा वही है जो दूसरे को सुख पहुंचाना चाहती है। दूसरे को दुख नहीं पहुंचाना है। यह ठीक है, लेकिन यह काफी नहीं है। वह बहुत लचर, अधकचरी अहिंसा है। दूसरे को सुख पहुंचाना है और क्यों पहुंचाना है? दूसरे को सुख इसलिए कि मोक्ष जाना है, इसलिए कि स्वर्ग पाना है। जो आदमी दूसरे को इसलिए दुख नहीं दे पाता है क्योंकि स्वर्ग जाना है, मोक्ष जाना है वह आदमी हद दर्जे का चालाक है, वह आदमी हद दर्जे का हिसाबी-किताबी है। उस आदमी को दूसरे से कोई मतलब नहीं है। वह दूसरे को दूसरे की अहिंसा को सीढ़ियां बना रहा है अपने स्वर्ग जाने की।

मैंने सुना है, चीन के एक गाँव में एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। एक कुआं था मेले के पास जिस पर पाट नहीं था और एक आदमी भूल से उस कुएं के भीतर गिर गया। वह आदमी जोर-जोर से चिल्लाने लगा। किन्तु मेले में बहुत भीड़ थी, कौन उसकी सुनता। एक बौद्ध भिक्षु कुएं के पास पानी पीने को रुका। नीचे से आदमी चिल्लाया कि भिक्षु जी, मुझे बचाइये। उस भिक्षु ने कहा, पागल किस किस को बचाया जा सकता है, सारा संसार कुएं में पड़ा है। जीवन ही दुख है। भगवान् ने कहा है, जीवन दुख का मूल है। हम सभी डूब मरेंगे, हम किसको बचा सकते हैं। उस आदमी ने कहा, ज्ञान की बातें, पहले मुझे निकाल लें, फिर पीछे करना, क्योंकि ज्ञान की बातें कुएं में गिरे आदमी को अच्छी नहीं मालूम पड़तीं। कृपा करो, मुझे बाहर निकालो। भिक्षु ने कहा, पागल, कौन किसको निकाल सकता है। अपना ही अपना संभाल ले आदमी तो काफी है, क्योंकि भगवान् ने कहा है, कोई किसी का सहारा नहीं है, अपने सहारे रहो। उसने कहा, वह मैं समझता हूँ लेकिन अभी मैं अपना सहारा ढूंढ़ रहा हूँ। तैरना नहीं जानता हूँ। मुझे किसी तरह बाहर निकाल लो तो तुम्हारा शास्त्र भी सुनूंगा, तुम्हारा प्रवचन भी सुनूंगा। उस भिक्षु ने कहा, शायद तुम्हें पता नहीं कि भगवान् ने शास्त्र में यह भी कहा है कि अगर मैं तुझे बचा लूं और कल तू हत्या कर दे, चोरी कर ले, तो मैं भी

तेरे कर्म का भागी हो जाऊँगा । मैं अपने रास्ते पर, तू अपने रास्ते पर । भगवान तेरा भला करे । वह भिक्षु चला गया । शास्त्रों को मानने वाले लोग कितने खतरनाक होते हैं ! उनका शास्त्र ही महत्त्वपूर्ण है, मरता हुआ आदमी ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है । उसके पीछे ही कंफ्युशस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आकर रुका । उसने भी नीचे झांक कर देखा । उस आदमी ने चिल्लाया कि मुझे बचाओ, मैं मर रहा हूँ । बस मेरी स्थिति है, सांसें टूटी जाती हैं, हिम्मत नहीं रखी जाती है। कंफ्युशस के शिष्य ने कहा, देख, तेरे गिरने से साबित हो गया कि कंफ्यु-शस ने जो लिखा है वह सही है । उसने लिखा है कि हर कुएं पर पाट होनी चाहिए और जिस कुएं पर पाट नहीं होगी और जिस राज्य में कुएं पर पाट नहीं होती वह राज्य ठीक नहीं है । तू घबरा मत, हम आंदोलन करेंगे और कुएं पर पाट बनवाकर रहेंगे । उस आदमी ने कहा कि बनेगा बनेगा, लेकिन मैं तो गया । आंदोलन करनेवाले को आदमी से कोई मतलब नहीं है । उन्हें आंदोलन से मतलब है । वे आंदोलन करेंगे । और वह जो आदमी डूब रहा है, वह गया । उसने बहुत चिल्लाया लेकिन आन्दोलनकारी किसी की सुनते हैं ? वह जाकर मंच पर खड़ा हो गया और मेले में लोगों को समझाने लगा कि देखो, कंफ्युशस ने जो लिखा है ठीक लिखा है । सबूत ? वह कुआं सबूत है । हर कुएं पर पाट होना चाहिए । जब तक कुएं पर पाट नहीं है तब तक राज्य सुराज्य नहीं है । उसके पीछे ही एक ईसाई मिशनरी वहाँ आया । उसने भी झाँककर देखा । वह आदमी चिल्ला भी नहीं पाया कि उसने अपनी झोली से रस्सी निकाली और कुएं में डाली और कुएं के नीचे गया । उस आदमी को निकाल कर बाहर लाया । उस आदमी ने कहा, आप ही एक भले आदमी मालूम पड़ते हैं । लेकिन आश्चर्य कि आप झोली में रस्सी पहले से ही रखे हुए थे । उसने कहा, हम सब इन्तजाम करके निकलते हैं क्योंकि सेवा ही हमारा कार्य है और हमें पहले से पता रहता है कि कोई न कोई तो कुएं में गिरेगा और जीसस ने कहा है कि अगर मोक्ष जाना है, अगर स्वर्ग का राज्य पाना है तो लोगों की सेवा करो । सेवा के बिना कोई मोक्ष नहीं जा सकता है । हम मोक्ष की खोज कर रहे हैं । तुमने बड़ी कृपा की जो कि कुएं मे गिरे । अपने बच्चों को भी समझा जाना ताकि वे कुएं में गिरते रहें और हमारे बच्चे उनको निकालते रहें ।

यह जो आदमी है, यह जो मोक्ष में जाने के लिए लोगों के कुएं में गिरने की प्रतीक्षा कर रहा है, यह आदमी हद दर्जे का पापी है । इन्हें न कोढ़ियों से मतलब है, न बीमारों से । ये सबको सीढ़ियाँ बनाकर अपना मोक्ष खोज रहे हैं । यह आज तक जो लोग अहिंसा की बात करते रहे हैं, उनके लिए अहिंसा भी एक सीढ़ी है । नहीं, अहिंसा जो सीढ़ी बनती है वह अहिंसा नहीं है । अहिंसा शब्द ठीक नहीं है ।

शब्द तो ठीक है प्रेम, ज्वलंत प्रेम और प्रेम का मतलब है दूसरे को सुख देने की कामना । लेकिन क्यों ? इसलिए नहीं कि मोक्ष जायेंगे, इसलिए नहीं कि पुण्य होगा, बल्कि सिर्फ इसलिए कि जो आदमी जितना दूसरे को सुख दे पाता है उतना ही प्रतिक्षण सुखी हो जाता है, तत्क्षण, आगे पीछे नहीं, कभी भविष्य में नहीं । जो आदमी जितना दूसरे को दुख देता है तत्क्षण उतना ही दुखी हो जाता है । जीवन में जो हम दूसरे के लिए करते हैं वही हम पर वापस लौट आता है । जिन्दगी एक बड़ी प्रतिध्वनि है, एक इकोप्वाइंट है ।

मैं एक पहाड़ पर गया था । कुछ मित्र मेरे साथ थे । उस पहाड़ पर एक 'इकोप्वाइंट' था जहाँ आवाज की जाती तो बार बार वापस लौटती थी हम लोगों के बीच । वहाँ जो मित्र मेरे साथ थे वे कुत्ते की आवाज करने लगे । सारा पहाड़ कुत्तों की आवाज से गूँज गया । मैंने उनसे कहा, रुको भी । अगर आवाज ही करनी है तो कोयल की करो या कोई गीत गाओ । कुत्ते की आवाज करने से क्या फायदा । वह मित्र गीत गाने लगे प्रेम का । उन्होंने कोयल की आवाज की और पहाड़ियाँ कोयल की आवाज से गूँज गयीं । फिर हम लौटे तो वह मित्र कुछ सोचने लगे और उदास हो गये और रास्ते में कहने लगे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने इशारा किया हो कि यह जो घाटी है,यह जो इकोप्वाइंट है वह भी प्रतीक है जिन्दगी का । जिंदगी का ही वह एक रूप है । जिन्दगी में भी जो कुत्ते की आवाज फेंकता है, चारों तरफ उसके कुत्ते भोंकने लगते हैं । जिन्दगी में भी जो गीत गाता है चारों तरफ गीत की शहनाइयाँ बजने लगती हैं । जिन्दगी में जो हम फेंकते हैं जिन्दगी की तरफ वही हम पर वापस लौटना शुरू हो जाता है--हजार हजार गुना होकर । प्रेम को जितना बाँटता है उतना प्रतिध्वनित होकर उसके ऊपर बरसने लगता है ।

एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा । रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है । बहुत प्यारा गीत है और उस गीत में लिखा है कि एक भिख-मंगा सुबह सुबह उठा है भीख माँगने के लिए । अपनी झोली निकाल कर कंधे पर डाला है । आज त्योहार का दिन है और भीख मिलने की आशा है । ऐसा मालूम होता है कि त्यौहारों की ईजाद भिखमंगों ने ही की होगी, क्योंकि खोज उन्होंने की होगी । झोली कंधे पर डालकर उसने अपनी पत्नी से कुछ अनाज चावल के दाने झोली में डालने के लिए कहा । जब भी कोई भिखमंगा अपने घर से निकलता है, चालाक भिखमंगा, क्योंकि भिखमंगों में भी नासमझ भिखमंगे होते हैं, समझदार भी होते हैं । सब तरह की दूकानों में समझदार नासमझ सभी तरह के लोग होते हैं । भिखमंगों की भी एक दूकान है । उसने कुछ दाने घर से डाल लिये हैं और भिखमंगे कुछ दाने डालकर निकलते हैं ताकि जिसके सामने झोली फैलायें उसे दिखायी पड़े

कि भीख पहले भी दी जा चुकी है। इन्कार करने में मुश्किल होती है अगर भीख पहले दी जा चुकी हो, क्योंकि अहंकार को चोट लगती है कि किसी दूसरे आदमी ने दान कर दिया है और अगर हम नही करते हैं तो उस आदमी के सामने छोटे हो जाते हैं। इसलिए भिखमंगे पैसे हाथ में बजाते हुए निकलते हैं। वह भिखमंगा रास्ते पर, राजपथ पर आकर खड़ा ही हुआ था, कुछ सोचता था कि किस दिशा में जाऊं, कि देखा कि सामने से सूरज निकलता है और राजा का स्वर्ण रथ आ रहा है। राजा अपने रथ पर सवार है। सूरज की किरणों में उसका रथ चमक रहा है। भिखमंगे के तो भाग्य खुल गये। उसने कभी राजा से भीख नहीं माँगी थी। राजाओं से भीख मांगना मुश्किल है, क्योंकि द्वार पर पहरेदार होते हैं, वे भीतर प्रवेश करने नहीं देते। आज तो राजा रास्ते पर मिल गया है, आज तो झोली फैला दूँगा और भीख से छुटकारा जन्म जन्म के लिए मिल जायगा। फिर आगे भीख नहीं मांगनी पड़ेगी। इसी सपने में, कल्पना में था और भिखमंगों के पास सिवाय सपने के और कुछ भी नहीं होता। सपने में ही जीना पड़ता है, क्योंकि जिनके पास कुछ भी नहीं है वे सपने में ही जीने का रास्ता खोज लेते हैं। वह महलों में निवास करने लगा सपने में और तभी रथ आकर खड़ा हो गया। सारे सपने टूट गये और हैरान हो गया भिखारी। राजा नीचे उतरा और राजा ने अपनी झोली भिखारी के सामने फैला दी। भिखारी ने कहा, क्या कर दिया? राजा ने कहा, क्षमा करना। अशोभन है, लेकिन ज्योतिषियों ने कहा है कि राज्य पर खतरा है दुश्मन का और कहा है कि अगर मैं आज त्योहार के दिन जो पहला आदमी मुझे मिल जाय उससे भीख माँग लूं तो राज्य खतरे से बच सकता है। तुम्हीं पहले आदमी हो। दुखी न होओ, तुमने कभी भिक्षा दी न होगी, इसलिए बड़ी मुश्किल पड़ेगी देने में। लेकिन कुछ भी थोड़ा सा दे दो, इन्कार मत कर देना, पूरे राज्य के भाग्य का सवाल है। भिखमंगा कितनी कठिनाई में पड़ गया होगा? उसने हमेशा मांगा था, दिया कभी नहीं था। देने की आदत न थी। झोली में हाथ डालता है और खाली हाथ बाहर निकाल लेता है। इन्कार भी कर नहीं सकता। सामने राजा खड़ा है। पूरे राज्य के संकट का सवाल है। हाथ भीतर चला जाता है, मुट्ठी बंधती नहीं। राजा कहता है, इन्कार मत कर देना, क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर पहले आदमी ने इन्कार कर दिया तो संकट निश्चित है। तो एक दाना ही दे दो। भिखारी ने बामुश्किल एक चावल का दाना निकाल कर राजा की झोली में डाल दिया। राजा अपने रथ पर बैठा और चला गया। धूल उड़ती रह गयी। भिखारी के सब कपड़े धूल से भर गये। उल्टा मिला तो कुछ भी नहीं, पास से कुछ चला गया। उसका दुख आप जानते हैं? दिन भर भीख मांगी, बहुत मिली उस दिन

भीख। इतनी कभी नहीं मिली लेकिन मन प्रसन्न नहीं हुआ, क्योंकि जो मिलता है उससे प्रसन्न नहीं होता है मन। जो छूट जाता है उससे दुखी होता है। एक दाना खटकता रहा जो दिया था। सबके मन की यही हालत है, क्योंकि सब छोटे-मोटे भिखारी हैं। जो छूट जाता है वह खटकता रहता है, जो मिल जाता है उसका पता नहीं चलता। भिखारी के मन का लक्षण यह है। जो मिल जाय उसका पता न चले, जो न मिले, जो छूट जाय, उसकी पीड़ा कसकती रहे। वह घर पहुंचा है रात, झोली पटक दिया, पत्नी तो पागल हो गयी। इतना कभी न मिला था। झोली खोलने लगी। पति तो उदास दीखता था। उदास हैं आप? पति ने कहा, तुझे पता नहीं है पागल, झोली में थोड़ा कम है। आज थोड़ा देना भी पड़ा है। ऐसा जिन्दगी में कभी नहीं किया आज वह करना पड़ा। पत्नी ने झोली खोली, दाने बिखर गये और पति छाती पीटकर रोने लगा। अब तक उदास था, आंसुओं की धारा बहने लगी। पत्नी ने पूछा, क्या हुआ? पति ने नीचे के दाने उठाये और एक दाना सोने का हो गया था। एक चावल का दाना सोने का हो गया है। चिल्लाने लगा कि भूल हो गयी, अवसर निकल गया। मैंने अगर सारे दाने दे दिये होते तो सब सोना हो गया होता। लेकिन अब कहां खोजूं उस राजा को, कहां मिलेगा वह रथ। अवसर चूक गया है वह।

मुझे पता नहीं, यह कहानी कहां तक सच है, लेकिन यह मुझे पता है कि जिन्दगी के अंत में आदमी ने जो दिया है वही सोने का होकर वापस लौट आता है। जो दिया है वही स्वर्ण का हो जाता है, जो रोक लिया है वही मिट्टी का हो जाता है। प्रेम का अर्थ है दान, प्रेम का अर्थ है बांटना। जितना बंट जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही स्वर्ण की हो जाती है, और जितना अनबंटा रह जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही मिट्टी हो जाती है। ●

सातवां प्रवचन (प्रश्नोत्तर)

लकीरों से हटकर

एक मित्र ने पूछा है कि गांधीजी ने दरिद्रों को दरिद्रनारायण कहा, इससे उन्होंने दरिद्रता को कोई गौरव मंडित तो नहीं किया है ?

शायद आपको पता न हो, हिन्दुस्तान में एक शब्द चलता था, वह था लक्ष्मी-नारायण। दरिद्रनारायण शब्द कभी नहीं चलता था, चलता था लक्ष्मीनारायण। मान्यता यह थी कि लक्ष्मी के पति ही नारायण हैं। ईश्वर को भी हम ईश्वर कहते हैं, ऐश्वर्य के कारण। वह शब्द भी ऐश्वर्य से बनता है। लक्ष्मीपति जो है वह नारायण है। समृद्धि-नारायण, ऐसी हमारी धारणा थी हजारों साल से। धारणा यह थी कि जिनके पास धन है उनके पास धन पुण्य के कारण है, परमात्मा की कृपा के कारण है। हजारों वर्षों से धन का एक महिमावान् रूप था, धन गौरव-मण्डित था। दरिद्र दरिद्र था पाप के कारण, अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण ही वह दरिद्र था। धनी धनी था अपने पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण। धन प्रतीक था उसके पुण्यवान् होने का, दरिद्रता प्रतीक था उसके पापी होने का। यह हमारी धारणा थी।

इस धारणा में गांधी ने जरूर क्रांति की और बहुमूल्य काम किया कि उन्होंने लक्ष्मीनारायण शब्द के सामने दरिद्रनारायण शब्द गढ़ा और उन्होंने कहा, दरिद्र भी नारायण है। लेकिन जैसा अक्सर होता है, जब भी किसी शब्द, किसी विचार, किसी धारणा की प्रतिक्रिया में कोई धारणा गढ़ी जाती है तो जो भूल इस तरफ होती थी, अतिशय में वही भूल दूसरी तरफ हो जाती है। दरिद्र नारायण है। एक समय था समृद्ध नारायण था। नारायण तो सभी हैं। न समृद्ध नारायण है न दरिद्र नारायण है। एक अति यह थी कि समृद्धि नारायण है, समृद्धि को ग्लोरीफाई किया गया था। उसकी प्रतिक्रिया में दूसरी अति यह हो गयी कि दरिद्र नारायण है। अब दरिद्र को ग्लोरीफाई किया गया। वह जो ग्लोरी, वह जो महिमा समृद्धि के साथ जुड़ी थी, वही महिमा समृद्धि को छोड़कर दरिद्रता के साथ जोड़ दी गयी है।

रवीन्द्रनाथ ने एक गीत लिखा है—कहां खोजते हो प्रभु को, कहां खोजते हो भगवान् को, कहां खोजते हो परमात्मा को, मंदिरों में ? नहीं है मंदिरों में,

नहीं मूर्तियों में, नहीं आकाश में, नहीं चांद-तारों में। भगवान् वहां है जहां राह के किनारे मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति हो गयी। चांद-तारों में भी परमात्मा है, फूलों में भी, सब जगह मंदिरों में भी, जो भी है वही पर-मात्मा है। लेकिन कल तक एक अति थी कि इस दीन और दरिद्र में परमात्मा को नहीं देखा जा रहा था। आज उसकी प्रतिक्रिया में दूसरी अति हो गयी कि नहीं है वहां। यहां है, जहां मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति है। बस महिमा बदल दी गयी है। घड़ी का पेंडुलम बाईं ओर से दाईं ओर चला गया है।

गांधी ने एक क्रांतिकारी कदम उठाया दरिद्र को नारायण कहकर, लेकिन जैसा कि सदा होता है, एक अति से दूसरी अति पर व्यक्ति चला जाता है, एक अति से दूसरी अति पर विचार चला जाता है। मैंने सुना है कि गांधी इंगलैंड गये और गांधी के एक भक्त बर्नार्ड शा से मिले और बर्नार्ड शा से उन्होंने पूछा, आपकी गांधी के संबंध में क्या धारणा है। बर्नार्ड शा ने कहा, और सब तो ठीक है, लेकिन दरिद्र नारायण शब्द मेरे बर्दाश्त के बाहर है। दरिद्र को तो मिटाना है, उससे तो घृणा करनी है, उसे तो समाप्त कर देना है, दरिद्र को बचने नहीं देना है। और सब तो ठीक है, यह दरिद्र नारायण शब्द मेरी समझ के बाहर है। पं० नेहरू ने भी कहीं लिखा है कि गांधी की बहुत सी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। यह दरिद्र नारायण शब्द मेरी समझ में नहीं आ सका है। यह शब्द ठीक नहीं है। दरिद्र को तो मिटाना है, दरिद्र को तो समाप्त करना है, दरिद्र को तो बचने नहीं देना है। और उसे जब हम नारायण जैसी महत्त्वपूर्ण महिमा से मंडित करेंगे तो जाने अनजाने जिसे हम महिमा देना शुरू करते हैं उसे हम मिटाना बन्द कर देते हैं। वह मनो-वैज्ञानिक घटना है, जिसे हम महिमा देते हैं उसे नष्ट करने का विचार छूटना शुरू हो जाता है। अगर दरिद्रता को महान् रोग कहा तो मिटाने का ख्याल आयेगा, दरिद्र को नारायण कहा तो पूजा का ख्याल आयेगा। यह तो मनोवैज्ञानिक प्रति-फलन होगा उसका। सवाल यह नहीं है कि गांधी महिमा मंडित करते हैं या नहीं। दरिद्रनारायण कहने से दरिद्रता महिमामंडित होती है और दरिद्रनारायण कहने से ऐसा नहीं लगता है कि इसको मिटाना है, दरिद्रनारायण कहने से ऐसा लगता है कि मिटाना नहीं, पूजा करनी है। नारायण की हम सदा से पूजा करते रहे हैं, लेकिन हम कहेंगे कि दरिद्र महान् रोग है तो सीधा ख्याल उठता है कि मिटाना है, नष्ट करना है, समाप्त कर देना है। यह प्रश्न तो हमारे मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन का है कि हमारे मन का क्या प्रतिफलन होता है। छोटे-छोटे शब्द भी हमारे मानस को गतिमान करते हैं और हमारे मानस में, हमारे कलेक्टिव

मानस में, हमारे अचेतन में, हमारे समूह मन में शब्दों की करोड़ों वर्ष की परंपरा है और स्थान है। नारायण को मिटाने की हमने कभी कल्पना ही नहीं की है, मनुष्य जाति के इतिहास में। नारायण को सदा हमने पूजा है, मंदिर में उसके चरण पर सिर रखा है। नारायण को हमने सदा हाथ जोड़े हैं। नारायण को मिटाने की कल्पना ही असंभव है हमारे चित्त से। जब भी हम किसीके साथ नारायण जोड़ देंगे तो स्वभावतः वह जो हमारा हजारों वर्षों का बना हुआ मन है वह नारायण को मिटाने को आतुर नहीं रह जायेगा। दरिद्रनारायण शब्द दुर्भाग्य-पूर्ण है। उससे समृद्ध नारायण शब्द को उत्तर तो मिल गया, लेकिन घड़ी का पेंडु-लम एक कोने से दूसरे कोने पर पहुंच गया। एक बीमारी से दूसरी बीमारी पर पहुंच गया। न तो समृद्ध नारायण है और न दरिद्र है। नारायण तो सभी हैं, इसलिए किसीको विशेष रूप से नारायण कहना खतरनाक है। लेकिन प्रतिक्रिया में ऐसा होता है। अब तक ब्राह्मण प्रभु के लोग थे, परमात्मा के लोग थे, गॉड चूजेन थे, ईश्वर के चुने हुए लोग थे। गांधी जी ने उसकी प्रतिक्रिया में हरिजन शब्द चुना। शूद्रों के लिए जो कि प्रभु के कृपापात्र नहीं रहे, जिनपर प्रभु की कृपा होने का कोई सवाल नहीं था। कृपापात्र थे सवर्ण, कृपापात्र थे ब्राह्मण, क्षत्रिय। शूद्र ? शूद्र तो बाहर था। उस पर कृपा की कोई किरण परमात्मा की कभी नहीं पड़ी। ठीक किया गांधी ने। हिम्मत की कि उसको कहा हरिजन, लेकिन हरिजन कहने से वही भूल फिर दोहरा दी गयी। हरिजन थे अब परमात्मा के लोग। तब ब्राह्मण, परमात्मा के लोग थे। उनसे छीनकर महिमा हमने शूद्र को दे दी। लेकिन जरूरत इस बात की है कि महिमा किसी के पास बंधी न रह जाय। महिमा वितरित हो जाय और सबकी हो जाय। हरिजन हैं सब। जब तक ब्राह्मण हरिजन थे तब तक शूद्र हरिजन न था। और अगर हम शूद्र को हरिजन कहते हैं तो हम दूसरी भूल करते हैं। ब्राह्मण के प्रति एक विरोध और वैमनस्य पैदा होगा। वह जो दक्षिण भारत में ब्राह्मण के प्रति वैमनस्य और विरोध पैदा हो रहा है वह दूसरी प्रतिक्रिया है कि अब नीचे जो शूद्र हैं वह हो गया हरि-जन। वह अब चूजन पिपुल हो गये। तो अब ब्राह्मण को नीचे, अपदस्थ करना है। यह खेल कब तक चलेगा ? इस खेल को हम समझेंगे, इसके राज को, तो यह समझना जरूरी है कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा है। चाहे वह दरिद्र हो, चाहे समृद्ध हो, चाहे बीमार हो, चाहे स्वस्थ हो, चाहे काला हो, चाहे गोरा हो, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। किसी भी वर्ग विशेष को परमात्मा का नाम देना उसे महिमामंडित करना है। मैं जानता हूं कि गांधी की मजबूरी थी। एक प्रतिक्रिया में, एक विरोध के लिए उन्होंने

एक बात चुनी होगी। लेकिन अब चालीस-पचास साल के बाद उस शब्द को तत्काल छोड़ देना जरूरी है। अब उस शब्द को पकड़े लिये जाना ठीक नहीं है। और यह भी ध्यान रहे कि दरिद्र को न तो महिमा देनी है और न दरिद्र के साथ सहानुभूति प्रकट करनी है। यह भी ध्यान रहे, दरिद्र के साथ सहानुभूति, दया खतरनाक बात है। दरिद्र के साथ दया नहीं करनी है, दरिद्रता को मिटाना है ताकि दरिद्र न रह जाय। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता मिटती नहीं है। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता पलती है, पोषित होती है। भिखमंगे को हम रोटी दे देते हैं, इससे भिखमंगापन नहीं मिटता। भिखमंगे को दी गयी रोटी भिखमंगेपन को दी गयी रोटी सिद्ध होती है। वह रोटी भिखमंगे के पेट में ही नहीं पहुंचती है, भिखारीपन के पेट में पहुंच जाती है। और भिखारीपन जीता है और मजबूत होता है। भिखारी को मिटाना है। दया पर्याप्त नहीं है, दया बहुत तरकीब की बात है। शोषक समाज ने हजारों वर्षों में दया का आविष्कार किया है, दान और दया का। ये तरकीबें हैं जिससे नीचे के पीड़ित वर्ग को राहत देने का उपाय किया जाता है अन्यथा बलवा हो सकता है, बगावत हो सकती है, क्रांति हो सकती है। इसलिए दया और दान की थोड़ी सी व्यवस्था बनाये रखनी पड़ती है ताकि वह जो नीचे पीड़ित है उसको ऐसा न लगे कि मुझे बिलकुल छोड़ दिया गया है। ताकि उसे लगे कि नहीं दया की जरूरत है, दान किया जाता है, धर्म किया जाता है। यह दया, दान और धर्म गरीब का अपमान है। और जिस समाज में दान दया धर्म की जरूरत पड़ती है वह समाज स्वस्थ सुन्दर समाज नहीं है, वह समाज रुग्ण है। और जब तक दुनिया में दया, दान और सहानु-भूति की जरूरत हम पैदा करते रहेंगे, तब तक हम अच्छे मनुष्य को पैदा नहीं कर सकेंगे। एक ऐसा समाज चाहिए जहां कोई दया मांगने के लिए दीन न हो। एक ऐसा समाज चाहिए जो ऐसे लोगों को पैदा न करे, जिनको आपकी सहानु-भूति की जरूरत पड़े। कभी आपने ख्याल किया है कि जिस पर आप दया करते हैं वह दया आपके अहंकार को मजबूत कर जाती है कि मैं कुछ हूं, मैंने कुछ किया ? और जिस पर आप दया करते हैं, उसका मन पश्चाताप, ग्लानि और चोट से भर जाता है कि मेरा अपमान किया गया है। आप ध्यान रखना, जिस पर भी आपने दया की उसको आपने बहुत गहरे में अपना शत्रु बना लिया है, मित्र नहीं। वह आपसे बदला लेगा, क्योंकि कोई भी आदमी अपमानित होता है, जब उसे दया मांगनी पड़ती है, पीड़ित होता है, ऊपर से मुस्कुराकर कहता है कि भगवान् तुम्हें खुशी रखे, लेकिन वह जानता है, वह भलीभांति जानता है कि उसे इस हालत में कौन ले आया है। कैसे वह इस हालत में आ गया है। ऊपर से धन्य-

वाद देता है। लेकिन भीतर ? भीतर उसके भी ईर्ष्या पलती है और अपमान पलता है।

नहीं, दया के आधार पर दो व्यक्तियों के बीच मैत्री कभी पैदा नहीं होती। इसलिए अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि मैंने उस आदमी के साथ भला किया और वह मेरे साथ बुरा कर रहा है। नेकी का फल बदी से मिल रहा है। हमेशा मिलेगा। क्योंकि नेकी अपमान करती है किसी का, और नेकी तुम्हारे अहंकार को मजबूत करती है और दूसरे मनुष्य को पीड़ित करती है। नहीं, अब हम दया और धर्म पर नहीं जी सकते हैं। और न जीने की जरूरत है। अब तो हमें समझना होगा कि दरिद्र क्यों पैदा होता है? दरिद्रता कहां से जन्म लेती है? उस जड़ को काट देना जरूरी होगा। एक तरफ जड़ को मजबूत किये चले जाते हैं और शाखाओं और पत्तियों को काटते हैं, यह कैसा पागलपन है। एक आदमी रोज पानी देता हो एक वृक्ष में। और फिर पत्तों को काटता हो और रोज पानी देता हो वर्ष में। हम जो कर रहे हैं सब मिलकर उससे दरिद्र पैदा हो रहे हैं। फिर एक-एक दरिद्र को हम भिक्षा देते हैं, धर्मशाला बनवाते हैं, औषधालय खोलते हैं। इधर ऊपर से हम यह व्यवस्था करते हैं और जो हम कर रहे हैं सारा समाज मिलकर, उससे दरिद्र पैदा हो रहा है। यह बड़ी अजीब बात है कि सारा समाज मिलकर, रोग पैदा करे और रोग के इलाज के लिए अस्पताल खोले। यह कुछ समझ में आने जैसी बात नहीं है। लेकिन अब तक हमें समझ में नहीं आती थी, क्योंकि हमने प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों का फल समझा हुआ था। यह बात गलत है। कर्मों के फल हैं, जन्म है, पुनर्जन्म है, लेकिन सम्पत्ति कर्मों के फल से उपलब्ध नहीं। सम्पत्ति समाज के वितरण की व्यवस्था पर निर्भर है। लेकिन अब तक हमारी धारणा यही थी कि गरीब गरीब है अपने कर्मों के कारण, अमीर अमीर है अपने कर्मों के कारण। इस दृष्टिकोण ने, इस कंसेप्ट ने, इस सिद्धान्त ने हिन्दुस्तान की गरीबी को तोड़ने के सब उपाय मुश्किल कर दिये थे। और आज तक हिन्दुस्तान में गरीबी नहीं टूटी है तो उसके पीछे हमारी फिलोसफी है, हमारा दृष्टिकोण है। वह हमारा दृष्टिकोण यही है कि गरीब समझते हैं वे भी गरीब हैं अपने कर्मफल के कारण। अमीर अमीर है अपने कर्मफल के कारण। हम दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। अपने-अपने कर्मफलों से सम्बन्ध है। यह तरकीब बहुत होशियारी की साबित हुई। इससे मेरे पिछले जन्मों से मुझे जोड़ दिया गया है। लेकिन समाज से मुझे तोड़ दिया गया है। समाज के ऊपर मेरी गरीबी अमीरी का कोई सवाल न रहा, कोई प्रश्न न रहा।

धर्म की इस धारणा ने निश्चित ही व्यक्तिगत सम्पत्ति को बचाने का

अद्‌भुत उपाय किया है। इसीलिए सारे धर्म-शास्त्र दुनिया के कहते हैं, चोरी पाप है, लेकिन दुनिया का एक भी धर्म-शास्त्र नहीं कहता है कि शोषण पाप है। दुनिया का कोई धर्मशास्त्र कैसे कह सकता है कि शोषण पाप है? वे कहते हैं, चोरी पाप है। कभी आपने सोचा है कि इसके इम्प्लीकेशन्स क्या हैं, इसके मतलब क्या हैं? इसका मतलब यह है कि चोरी हमेशा गरीब का कृत्य है, अमीर के खिलाफ चोरी हमेशा उनका कृत्य है जिनके पास सम्पत्ति नहीं। उनके खिलाफ जिनके पास सम्पत्ति है। धर्म सम्पत्तिशाली की रक्षा कर रहा है। वह कहता है चोरी पाप है। लेकिन वह यह नहीं कहता कि शोषण पाप है। शोषण अमीर का कृत्य है दरिद्र के खिलाफ। धर्मग्रन्थ कोई भी नहीं कहता कि शोषण पाप है। इस अर्थ में मार्क्स की किताब दुनिया का एक नया धर्मग्रन्थ है जो शोषण को पाप कहता है। और अगर मार्क्स हिन्दुस्तान में पैदा हुआ होता तो हमने अपने अवतारों में वृद्धि की होती। हम निश्चित उसको अपने अवतारों में गिनते। क्योंकि उसने धर्म और समाज के सम्बन्ध में एक नये सूत्र को स्थापित किया है और वह यह कि शोषण पाप है और जब तक शोषण का पाप जारी है तब तक चोरी जैसे छोटे पाप पैदा होते रहेंगे। चोरी उसकी बाई प्रोडक्ट है। वह उससे आयेगी और मिट नहीं सकेगी। मैं यही नहीं कहता हूं कि चोरी पाप है। मैं कहता हूं शोषण पाप है।

एक मित्र ने पूछा है कि पूंजीपति और पूंजीवाद में क्या फर्क होता है? क्या मैं कहना चाहता हूं कि पूंजीवाद जिम्मेवार है, पूंजीपति जिम्मेवार नहीं है? हां, मैं फर्क करता हूँ और कहना चाहता हूं कि पूंजीपति और पूंजीहीन, शोषक और शोषित, दोनों शोषण के यंत्रों के परिणाम हैं। शोषण का यंत्र जारी है। उस शोषण के यंत्र में सारे लोग श्रम कर रहे हैं। जिसके पास धन नहीं है, वह धन पाने के लिए श्रम कर रहा है। निर्धन धन पाने के लिए श्रम कर रहा है। धनी भी और धन पाने के लिए श्रम करता है। जो गरीब है वह अमीर होने की कोशिश नहीं कर रहा है? नहीं हो पा रहा है यह दूसरी बात है। जो धनहीन है वह भी धनाकांक्षी है, जो धनवान है वह गरीब होने से बचने की कोशिश नहीं कर रहा है? वह धनवान है लेकिन गरीब न हो जाय इसकी पूरी तरह कोशिश में लगा हुआ है। जो गरीब है वह अमीर कैसे हो जाय इसकी पूरी कोशिश में लगा हुआ है। कुछ लोग सफल हो गये हैं, कुछ लोग असफल हो गये हैं यह दूसरी बात है। हम सारे लोग इस कमरे में दौड़ने की कोशिश करें और हमारे इस भवन का यह नियम हो कि जो प्रथम आ जायगा वह सर्वश्रेष्ठ होगा। हम सारे लोग दौड़ेंगे लेकिन प्रथम तो एक ही आ सकता है। जो आ जायगा वह जिम्मेवार है प्रथम आने के लिए या कि वह व्यवस्था जो कहती है कि प्रथम आना श्रेयस्कर है, जिम्मेवार है?

जो नहीं आ सके उनका कोई बड़ा पुण्य कर्म है कि वह नहीं आ सके ? उन्होंने भी दौड़ने की पूरी कोशिश की है जी जान से। वह नहीं आ सकें यह दूसरी बात है। जिनके पास धन है या जिनके पास धन नहीं है उन दोनों की दौड़ समान है। दोनों धनाकांक्षी हैं—धनाढ्य भी, धनहीन भी। धनाकांक्षा का यह जो समाज है वह जिम्मेवार है। धनपति जिम्मेवार नहीं है। पूंजीवाद के लिए पूंजीवाद जिम्मेवार है, धनपति को पैदा करने के लिए हमारी जो चिन्तना है पूंजी को संग्रहीत करने की, हमारा जो विचार है कि पूंजी को उपलब्ध कर लेना, पूंजी का मालिक हो जाना, पूंजी पर कब्जा कर लेना श्रेयस्कर है। जीवन में यह जो हमारी पूरी व्यवस्था है। फिर जो आदमी पूंजी को उपलब्ध कर लेता है उसे हम देते हैं सम्मान। बड़े मजे की बात है, दरिद्र भी सम्मान देता है उसे जो पूंजी उपलब्ध कर लेता है। दरिद्र भी हाथ बंटा रहा है पूंजी के सम्मान में। दरिद्र पूरा आदर देता है उसे जो जीत जाता है। दरिद्र खुद उसे अपमानित करता है जो उससे दरिद्र है। वह उसको स्वीकार नहीं करता। सम्राट सम्राटों से मिलता है, पूंजीपति पूंजीपतियों से मिलते हैं, चमार चमारों से मिलते हैं। चमार भी भंगी से मिलना पसंद नहीं कर सकते। वह नीचे उनसे और भी ज्यादा दरिद्र है। उससे मिलने को वह भी राजी नहीं है। वह उसके साथ भी चाहते हैं कि रास्ते पर नमस्कार वह उन्हें करे। पूरे समाज की मनोवृत्ति धनाकांक्षी है, पूरे समाज का चित्त पूंजीवादी है। गरीब का भी, भिखमंगे का भी, सम्राट का भी, धनपति का भी, इसमें धनपति को जिम्मा देने की जरूरत नहीं है। हम सब जिम्मेवार हैं, हम इकट्ठे जिम्मेवार हैं। निकृष्टतम, दरिद्रतम और श्रेष्ठतम और धनवान, हम सब इकट्ठे जिम्मेवार हैं इस समाज को निर्मित करने में और इसलिए यह बात गलत है कि कहे कोई कि पूंजीपति जिम्मेवार है। पूंजीपति भी उसी व्यवस्था की पैदाइश है जिस व्यवस्था की पैदाइश गरीब है। वे दोनों एक ही व्यवस्था से उत्पन्न हो रहे हैं और गरीब भी पूंजीवाद को जमाये रखने में उतना ही सहयोगी है जितना अमीर। पूंजीवाद जिस दिन जायगा उस दिन अमीरी ही नहीं जायेगी, गरीबी भी चली जायगी। पूंजीवाद के जाने के साथ ही गरीब, अमीर दोनों चले जायेंगे। दोनों पूंजीवाद के हिस्से हैं। उसमें गरीब उतना ही जिम्मेवार है, यह हमें कभी-कभी दिखायी नहीं पड़ता है। हमें यह दिखायी पड़ता है कि एक ताकतवर आदमी एक कमजोर आदमी की छाती पर पैर रखकर खड़ा हो गया है तो हम कहते हैं कि यह ताकतवर आदमी बुराई कर रहा है, लेकिन हम नहीं जानते कि कमजोर आदमी बुराई क्यों करने दे रहा है। दोनों जिम्मेवार हैं। वह कमजोर है और वह सहने को राजी है छाती को किसी की छाती पर। तो छाती पर पैर रखने वाला जितना जिम्मेवार

है, वह इस कार्य में, छाती पर जिसने पैर रखने दिया है, वह भी उतना ही जिम्मेवार है। कमजोर हमेशा से ही जिम्मेवार हैं जितने कि ताकतवर। कायर हमेशा से उतने ही जिम्मेवार हैं जितने बहादुर। हम कहते हैं कि हमारे ऊपर मुसलमान आये और उन्होंने हमें गुलाम बना दिया। मुसलमान जिम्मेवार हैं और आप जिम्मेवार नहीं हैं जो गुलाम बने ? गुलाम उतना ही जिम्मेवार है जितना गुलाम बनाने वाला और जब तक गुलाम ऐसा सोचता है कि गुलाम बनाने वाले जिम्मेवार हैं तब तक वह बिल्कुल गलत बात सोचता है। गुलामी दोनों के हाथ का जोड़ का परिणाम है—और जब तक दुनिया में गुलाम बनने के लिए लोग मौजूद हैं, तब तक गुलाम बनाने वाले लोग भी मौजूद रहेंगे।

स्त्रियां कहती हैं कि पुरुषों ने हमें दबा लिया है, लेकिन स्त्रियों को जानना चाहिए कि वह दबने को तैयार हैं और इसलिए पुरुषों ने दबा लिया है अन्यथा कौन किसको दबा सकता है। कोई किसी को नहीं दबा सकता। लेकिन हम हमेशा यह देखते हैं कि दूसरा जिम्मेवार है। अंगरेज जिम्मेवार है, हमको गुलाम बना लिया और हम चालीस करोड़ नपुंसक क्या करते थे कि अंगरेज हमें गुलाम बना सके ? हम कम-से-कम मर तो सकते थे—अगर और कुछ नहीं कर सकते थे। मुर्दों को तो गुलाम नहीं बनाया जा सकता था ? कम-से-कम आखिरी रूप में एक ताकत तो आदमी के हाथ में है कि वह मर सकता है, एक च्वायस तो कम-से-कम हाथ में है हर आदमी के कि वह आत्महत्या कर सकता है।

मैंने सुना है कि जर्मनी ने हालैंड पर हमला करने का विचार किया। हालैंड तो बहुत समृद्ध मुल्क नहीं है और हालैंड के पास बहुत सुसज्जित सेनाएँ भी नहीं हैं। हालैंड के पास बड़ी शक्ति भी नहीं है। जर्मनी से जीतने का तो कोई उपाय नहीं है उसके पास। लेकिन हालैंड ने तय किया कि चाहे हम मर जायेंगे, लेकिन हम गुलाम नहीं बनेंगे। पर लोगों ने पूछा कि हम करेंगे क्या ? कैसे गुलाम नहीं बनेंगे ? तो हालैंड का आपको पता होगा, उसकी जमीन नीचे है समुद्र की सतह से। समुद्र के चारों तरफ दीवालें और परकोटे उठाकर उसको अपनी जमीन को बचाना पड़ता है। तो हालैंड के एक-एक कम्यून ने एक गांव की कौंसिल ने यह तय किया कि जिस गांव पर हिटलर का कब्जा हो जाय वह गांव अपनी दीवालें तोड़ दे और समुद्र को गांव के ऊपर आ जाने दे, पूरा गांव डूब जायगा। हिटलर की फौजें भी डूब जायेंगी। हालैंड को हम पूरा डुबा देंगे समुद्र के नीचे, लेकिन इतिहास यह नहीं कह सकेगा कि हालैंड गुलाम हुआ।

ऐसी कौम को गुलाम बनाना कठिन है। क्या करियेगा, आखिर गुलाम बनाने के लिए आदमी का जिन्दा रहना जरूरी है। कमजोर आदमी को भी मरने का हक

तो है। कमजोर आदमी भी मरना नहीं चाहता, इसलिए गुलाम बनने को राजी होता है और गुलामी में उसका हाथ है। वह कोई अपने को बचा नहीं सकता। यह जो पूंजी की व्यवस्था है, यह जो शोषण की व्यवस्था है, इसमें गरीब आदमी का हाथ उतना ही है जितना अमीर आदमी का हाथ है। इसमें भिखमंगे का हाथ उतना ही है जितना शाहंशाहों का। यह तो दोनों के जोड़ का फल है।

इसलिए मैं नहीं कहता कि पूंजीपति का हाथ है,मैं कहता हूं हम सबका हाथ है और जब तक हम यह नहीं समझेंगे कि हम सबका हाथ है, तब तक हम इस शोषण की व्यवस्था को नहीं बदल सकेंगे। अगर पूंजीपति का हाथ है तो किसी पूंजीपति को गोली मार दो तो कोई फर्क पड़ेगा ? दूसरा पूंजीपति पैदा हो जायगा, क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। किसी पूंजीपति को समझा-बुझा कर उसकी संपत्ति बंटवा दो तो कोई फर्क पड़ेगा ? संपत्ति बंट जायेगी और दूसरा पूंजीपति खड़ा हो जायगा, क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। उस व्यवस्था से सारी चीजें पैदा हो रही हैं इसलिए जो समाजवादी पूंजीपति के प्रति घृणा फैलाते हैं वे गलत काम करते हैं। वह काम ठीक नहीं है। समाजवाद पूंजीपति के प्रति घृणा नहीं है। समाजवाद पूंजीपति, दरिद्र, धनवान सबको मिटाने का उपाय है। समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में है, पूंजीपति के विरोध में नहीं है। पूंजीपति के विरोध से कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन है पूंजीवाद से, वह जो कैपिटलिज्म है, वह जो हमारी पूंजी के प्रति निष्ठा है, वह जो पूंजी को मनुष्य ज्यादा मूल्य देते हैं, वह जो हम पूंजी को जीवन का परमात्मा बनाये हुए हैं, वह जो हम पूंजी के लिए ही जीते और मरते हैं, गरीब भी, अमीर भी, यह जो पूंजी का सारा इन्तजाम है--इस पूंजी के केन्द्र को तोड़ देना समाजवाद है। समाजवाद गरीब की लड़ाई नहीं है, पूंजीपति के खिलाफ। समाजवाद पूंजीपति की, गरीब की, सबकी लड़ाई है पूंजी के खिलाफ; यह समझ लेना जरूरी है और जिस दिन हम यह समझ सकेंगे कि पूंजीवाद के खिलाफ हमारी लड़ाई है, पूंजीपति के खिलाफ नहीं, तो पूंजीपति भी इस लड़ाई में साथी और सहयोगी होगा। समाजवादियों की इस गलत धारणा ने कि हम पूंजीपति के खिलाफ लड़ रहे हैं समाज को अजीब हालत में डाल दिया है। उन्होंने एक ऐसी हालत पैदा कर दी कि लड़ाई पूंजीपति के खिलाफ है। तो पूंजीपति समाजवाद का नाम लेते ही भयभीत होता है। वह सुनता है कि समाजवाद, यानी उसका दुश्मन। समाजवाद पंजीपति का दुश्मन नहीं है। समाजवाद गरीब से गरीबी छीन लेगा, अमीर से अमीरी छीन लेगा और गरीब भी ठीक अर्थ में नारायण नहीं हो पाता, अमीर भी ठीक अर्थों में नारायण नहीं हो पाता। अमीर नारायण भी तकलीफ में रहता है पूंजी की, गरीबनारायण भी तकलीफ में रहता है गरीबी की। जिस दिन

हम गरीब की गरीबी छीन लेंगे, अमीर की अमीरी छीन लेंगे, उस दिन हम प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य होने का पूरा हक देंगे, उस दिन मनुष्य-नारायण का जन्म होगा, नहीं तो समृद्ध-नारायण की पूजा की जाती है, पूजा की जरूरत है नारायण की और नारायण प्रकट नहीं हो पा रहा है, क्योंकि पूजा पूंजी की चल रही है। नारायण की पूजा कैसे हो सकती है ? इसलिए मैंने कहा कि मैं उस शब्द को पसन्द नहीं करता हूँ।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि समाजवाद की समानता की मैं जो बात करता हूँ क्या उसका यह अर्थ है कि सबकी संपत्ति बिल्कुल समान कर दी जाय ? क्या उसका अर्थ है कि सबको तनखाहें बिल्कुल बराबर दी जायं ? क्या उसका अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को एक-सा मकान दे दिया जाय ?

नहीं, उसका यह अर्थ नहीं है। उसका यह अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को जीवन में विकास का समान अवसर दिया जाय। अभी हम पूंजी के इतने प्रभाव में हैं कि जब भी हम समानता की बात सोचते हैं, तो तत्काल हमारे सामने जो पहला सवाल उठता है वह यह कि बराबर नौकरी, बराबर तनखाह, बराबर मकान। यह पूंजी का प्रभाव है कि तत्काल हमें पूंजी को समान करने का ध्यान आता है, क्योंकि हम पूंजी से प्रभावित हैं, हम पूंजी के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकते। हमें मनुष्य का सवाल ही नहीं है, सवाल पूंजी का है। हजार-हजार साल से पूंजी की धारणा के नीचे जीने से जब भी समाजवाद की दृष्टि उठती है तो हम समझते हैं कि पूंजी। नहीं, सवाल मूलतः यह नहीं है कि सब आदमी को बराबर तनखाह मिल जाय। तनखाह का मूल्य नहीं है, मूल्य इस बात का है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का समान अवसर मिल जाय। अब एक घर में एक आदमी मोटा है और एक आदमी दुबला है तो समान रोटी खिलाने से बड़ी झंझट पैदा हो जायगी। समाजवाद का मतलब यह नहीं है कि सब लोगों को बराबर रोटी खानी पड़ेगी। अब एक मोटा आदमी है, उसकी कम रोटी में जान निकल जायेगी और दुबले आदमी को ज्यादा रोटी खिलाने से जान निकल जायेगी। यह मतलब नहीं है। लेकिन प्रत्येक आदमी को जीवन का समान अवसर उपलब्ध हो सके, जीवन के विकास का, परमात्मा तक पहुंचने का, संगीत तक, साहित्य तक, धर्म तक जीवन की सुविधा का समान अवसर मिल सके और जितने दूर तक यह संभव हो सके, जितने दूर तक यह उचित हो सके उतने दूर तक वर्गों का फासला निरंतर कम-से-कम होता चला जाय।

अब हिन्दुस्तान में एक आदमी एक रुपया कमा नहीं पा रहा है रोज और दूसरा आदमी रोज पांच लाख रुपये कमा रहा है। यह फासला ? यह घबरा देने वाला फासला है। यह अमानवीय है और हम कहते हैं कि हम धार्मिक लोग हैं ! धार्मिक

लोग हम होते तो इतने अमानवीय, इतने अधार्मिक फासले सह सकते थे ? लेकिन हमारा धर्म इसमें है कि हम माला फेरते हैं। अभी एक बहन ने आकर कहा कि किसी धार्मिक को वह साथ में लायी होंगी। उन्होंने कहा, अरे, यह तो ब्रह्म की कोई बात ही नहीं कर रहे हैं, यह तो सब संसार की ही बातें कर रहे हैं।

ब्रह्म की बातों से लोग समझते हैं धार्मिक हो गये, ब्रह्म की बात कर ली तो धार्मिक हो गये। ब्रह्म की बात करने से धार्मिक कोई नहीं हो सकता। धार्मिक होता है इस जगत् में ब्रह्म को उतारने की संभावना बढ़ाने से। इस जगत् में ब्रह्म अवतरित हो। ब्रह्म की बकवास तो ग्रंथों में बहुत लिखी है, परिभाषाएं बहुत लिखी हैं और कोई भी मूढ़ जन उन्हें याद कर सकता है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। इसको याद करने में कोई बहुत बुद्धिमानी की जरूरत नहीं है। लेकिन ब्रह्म सत्य हो कहां पाया है। जगत् ही सत्य बना हुआ है। ब्रह्म तो बिल्कुल असत्य है। ब्रह्म सत्य हो सकता है जब हम इस जगत् में ब्रह्म के विकास की अधिकतम सुविधा और समान सुविधा जुटा सकेंगे। तभी ब्रह्म सत्य होगा और जगत् मिथ्या होगा। बुद्ध के लिए, महावीर के लिए ब्रह्म सत्य होगा, जगत् मिथ्या होगा; लेकिन हमारे लिए ? हमारे लिए रोटी सत्य है और ब्रह्म मिथ्या है, हमारे लिए शरीर सत्य है और आत्मा मिथ्या है। सूत्र रटने से कुछ भी नहीं होगा, बल्कि हम सूत्र रटते ही इसलिए हैं कि जिस आदमी को यह पता चल चुका हो कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है वह रोज सुबह उठकर आंख बन्द करके यह कहेगा कि ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या, ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या ? पता चल गया हो तो पागल हो गया होगा, उसको कहने की जरूरत ? एक पुरुष एक कोने में बैठ कर कहे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं तो सबको शक हो जायगा कि यह आदमी पुरुष नहीं है ? तुम पुरुष हो यह तुम्हें पता है, बात खत्म हो गयी। अब इसको रोज रोज दोहराने की और सत्संग करने की जरूरत नहीं समझने जाने के लिए कि मैं पुरुष हूं या नहीं। जब तक संदेह है तब तक इस तरह की बातों की पुनरुक्ति है। जो लोग सुबह उठकर दोहराते हैं ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या, उनको जगत् सत्य दिखायी पड़ता है, ब्रह्म मिथ्या दिखायी पड़ता है। इस स्थिति को उलटाने के लिए बेचारा जोर-जोर से उसे रट रहा है कि नहीं नहीं जगत् असत्य है, ब्रह्म सत्य है। जो दिखायी पड़ रहा है उसको मिटा डालने के लिए, पोंछ डालने के लिए, उल्टा करने के लिए ये सारी बातें कर रहे हैं। इन बातों से ब्रह्मज्ञान का कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रह्मज्ञान का संबंध ब्रह्म की चर्चा से नहीं है।

इस जगत् में ब्रह्म की कैसे अवतारणा हो, कैसे डिसेण्ड हो सके, वह जो डिव्हाइन है, वह जो दिव्य है, वह कैसे इस पृथ्वी पर आ सके अधिकतम प्राणों में

कैसे आकर वह स्पर्श कर सके, अधिकतम प्राणों में कैसे उसका संगीत गूंज उठे। लेकिन जिन प्राणों को शरीर से ही मुक्त होने का उपाय न मिलता हो उन प्राणों को ब्रह्म के अवतरण की संभावना कहां ? इसलिए मैं कहता हूं कि समाजवाद आने पर जगत् में ब्रह्मवाद आने के द्वार खुल जायेंगे। अब तक दुनिया में व्यक्ति हो गया है ब्रह्मवादी, समाज नहीं हो सका। अरबों-खरबों व्यक्तियों में अगर एकाध व्यक्ति ब्रह्मवादी हो जाता है, तो इसका मूल्य कितना हो सकता है ? अगर हम इतिहास उठाकर देखें दस हजार वर्ष का तो हम दस-बीस नाम गिना सकेंगे मुश्किल से कि यह ब्रह्मवादी है। कितने अरबों लोग पैदा हुए हैं, कितने अरबों लोग मरे, कितने अरबों लोग जिये, कितने अरबों लोग समाप्त हुए, वे सब कहां गये ? वे ब्रह्मवादी नहीं हो पाये, दस-पांच लोग ब्रह्मवादी हुए। यह सफलता की बात है ? एक माली एक करोड़ पौधे लगाये और पौधे में फूल आ जायं तो हम माली की प्रशंसा करेंगे ? हम कहेंगे कि धन्य हो माली, बड़े कुशल हो, बहुत कारीगर हो, बड़े महान् हो, गजब कर दिया ! सिर्फ एक करोड़ पेड़ लगाये और एक पेड़ में फूल आ गये ! हम उस माली से कहेंगे कि इस माली के कारण तो एक में फूल नहीं आये होंगे माली के बावजूद आ गये होंगे, यह हो सकता है। क्योंकि माली ने तो एक करोड़ पौधे लगाये, एक करोड़ में नहीं आये, एक में आये तो यह साबित होता है कि माली की नजर चूक गयी दीखती है एक पर और फूल आ गये। माली के कारण नहीं आये, इन्स्पाइट आफ, उसके बावजूद आ गये होंगे। करोड़ों-करोड़ों लोग पैदा हों और एक आदमी शंकर हो जाय, करोड़ों-करोड़ों लोग पैदा हों और एक आदमी जीसस हो जाय, यह कथा कोई सौभाग्यपूर्ण है ? नहीं, होना उल्टा चाहिए। करोड़-करोड़ लोग पैदा हों और कभी एकाध आदमी अधार्मिक हो जाये तो हम समझेंगे कि पृथ्वी ब्रह्म की तरफ जा रही है। लेकिन हम अपने देश में यह भ्रम लिये हुए बैठे हैं कि हम सब धार्मिक लोग हैं और इतने फासले हैं जीवन में ! नहीं मैं यह कहता हूं कि सारे फासले आज टूट सकते हैं। लंबे अर्थों में एक दिन सारे फासले भी टूट सकते हैं, लेकिन आज फासला हम जितना कम कर सकें उतना मनुष्यता का पुनरुत्थान होगा, उतनी मनुष्यता परमात्मा की ओर उठ सकती है। इसलिए जो बातें मैं कर रहा हूं कोई भूल कर यह न समझ ले कि मैं संसार की बातें कर रहा हूं। संसार की बात करने की मुझे सुविधा नहीं, फुर्सत नहीं है। मैं जो बात कर रहा हूं वह धर्म की ही बात कर रहा हूं, मैं जो बात कर रहा हूं वह ब्रह्म ज्ञान की ही बात कर रहा हूं, संसार की बात करने की मुझे रुचि नहीं है और जो संसार है ही नहीं उसकी बात की भी कैसे जा सकती है। ब्रह्म ही है, उसीकी बात की जा सकती है और ब्रह्म बड़ी मुश्किल में पड़ा है और पूंजीवाद ने ब्रह्म

को बहुत झंझट में डाल रखा है। इस पूंजीवाद से ब्रह्म का छुटकारा होना जरूरी है।

यह जो हमारी दृष्टि है, वह रहे कि नहीं ? संसार असार है, उसकी बात नहीं करनी है। यह बात पूंजीवाद के बहुत पक्ष में है। पूंजीवाद चाहता है कि साधु संत यही समझाते रहें कि संसार असार है। इसमें कुछ भी मतलब नहीं है।वह गरीब ? अरे सह लो इसमें कुछ भी सार नहीं है। गरीबी-अमीरी सब बराबर है। भूख सह लो, अकाल सह लो, दरिद्रता सह लो, संतोष रखो, सांत्वना रखो, यह सब सपना है। पूंजीवाद पसंद करता है कि यह बात, यह जहर, यह पायजन लोगों के दिमाग में डाला जाता रहे कि यह सब तो असार है, इसकी फिक्र ही मत करो।

एक आदमी आपको लूट रहा है और एक ज्ञानी आपको समझा रहा है, घबराओ मत, लुटते रहो, यह सब असार है, लेकिन वह लूटने वाला बिल्कुल नहीं सुनता, वह लूटता चला जाता है, उसमें असार से कोई फर्क नहीं पड़ता। यह लूटने वाला सुन लेता है कि असार है और खड़ा रह जाता है। वह लूटता है, वह लूटने वाला प्रसन्न होता है। लूट में से थोड़ा हिस्सा वह ज्ञानी को भी देता है, क्योंकि वह जानता है। यह आपको पता है ? वह लूट में से थोड़ा हिस्सा उसको देता है। सारे पंडित, सारे ज्ञानी, सारे साधु संन्यासी उस लूट में हिस्सेदार होते हैं और उस हिस्से में होने की वजह से वे बेचारे निरंतर ही यह कहते रहते हैं कि सब असार है, सब असार है, कोई सार नहीं है। यह सब माया है, यह सब सपना है। यह सब सपना है, जो चारों तरफ चल रहा है ? और अगर यह सपना है तो ज्ञानी छोड़ कर क्या भागता है, अगर पत्नी सपना है तो पत्नी से भागने की जरूरत ? और धन अगर सपना है तो धन से भागने की जरूरत ? और अगर जीवन सपना है तो त्याग किसका करते हो ? सपने के त्याग किये जा सकते हैं ? नहीं, लेकिन छोड़ने और भागने के लिए ज्ञानी मानता है कि सपना नहीं है। लेकिन यह जो चल रही है समाज की व्यवस्था, यह जो समाज की सनातन व्यवस्था चल रही है यह बदल जाय, इसके बदलने की बात करूंगा। वह कहेगा, कहां संसार की और माया की बात करते हो। उसे पता नहीं कि और संसार को उसकी बातें सुरक्षा दे रही हैं। इस माया और संसार को तोड़ा जा सकता है, इस पृथ्वी को परमात्मा की खोज का एक अपूर्व संसार बनाया जा सकता है, लेकिन आज तक मनुष्य ने जो समाज निर्मित किया है उस समाज में अधिकतम लोगों की जीवन-ऊर्जा रोटी जुटाने में, शरीर की व्यवस्था करने में ही नष्ट हो जाती है। वह कभी भी इसके ऊपर नहीं उठ पाती है, इसके बियांड, इसके अतीत नहीं जा पाती। एक समाज चाहिए संपत्तिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समृद्धिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समान

अवसर वाला, एक ऐसा समाज चाहिए जहां पूंजी केन्द्र न हो, परमात्मा केन्द्र हो, जहां हम जीवन में जियें सिर्फ इसलिए कि जीवन और ऊपर जा सके। एक वैसा समाज जिस दिन दुनिया में होगा उस दिन धर्म का जन्म होगा, उस दिन ब्रह्म हमारे निकट आ सकेगा। अभी शरीर के अतिरिक्त, पदार्थ के अतिरिक्त हमारे निकट कुछ भी नहीं है।

एक अन्य प्रश्न, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक बहन ने पूछा है—बहुत ही मजेदार बात पूछी है। मेरे साधना-शिबिरों के अभी अखबारों ने कुछ फोटो छाप दिये हैं। एक बहन मेरे गले से आकर लगी हुई है, अखबारों ने ऐसा भी एक फोटो छाप दिया है। उन्होंने वह फोटो देख लिया होगा तो उन्होंने मुझसे पूछा है कि शिविर में आप स्त्रियों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार करते हैं। गांधी जी ने तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी नहीं किया !

अगर स्त्रियों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार दुर्व्यवहार है तो मैं जरूर दुर्व्यवहार करता हूं। अब तक साधु-संत स्त्रियों के साथ घृणा का व्यवहार करते रहे हैं, इसलिए वही व्यवहार हमें सद्व्यवहार मालूम होने लगा है। साधु-संतों ने आज तक स्त्रियों को मनुष्य होने की हैसियत नहीं दी है। साधु-संतों ने उसे नरक का द्वार समझा है, साधु-संतों ने उसे कीड़े-मकोड़ों से बदतर बताया है, साधु-संतों ने उसे सांप-बिच्छू से खतरनाक समझा है। साधु-संतों का अगर वह पैर भी छू ले तो साधु-संत अपवित्र हो जाते हैं और उन्हें उपवास करके पश्चात्ताप करना पड़ता है और ये साधु-संत स्त्री से ही पैदा होते हैं। इनका सारा देह स्त्री से ही निर्मित होता है। इनका खून स्त्री का, इनकी हड्डी स्त्री की, इनके जीवन की सारी ऊर्जा स्त्री से आती है और वही स्त्री नरक का द्वार हो जाती है ! मनुष्य-जाति जब तक स्त्रियों के साथ ऐसा असम्मानपूर्ण और ऐसा मूढ़तापूर्ण व्यवहार करेगी, तब तक मनुष्य-जाति के जीवन में कोई ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता है। स्त्री के साथ दुर्व्यवहार अब तक रहा है और उस दुर्व्यवहार का कारण ? उसका कारण स्त्री की कोई खराबी नहीं है, क्योंकि जिन बातों के कारण स्त्री को पाप, दोष देते हैं आप उन बातों में स्त्री के सहयोगी नहीं हैं, यह बड़े मजे की बात है। पुरुष नरक का द्वार नहीं है, स्त्री अकेले दुनिया में कामवासना ले आती है, पुरुष नहीं ! सचाई उलटी है। स्त्री इतनी कामुक कभी भी नहीं, जितना पुरुष कामुक है और स्त्री की कामवासना को अगर न जगाया जाय तो स्त्री कामवासना के लिए बहुत आतुर भी नहीं होती और सारी स्त्रियां जानती हैं कि कामवासना में कौन उन्हें रोज घसीटता है—उनका पति या वे स्वयं ! कौन उन्हें घसीटता है ? पुरुष चौबीस घंटे सेक्सुअल है। प्रतिदिन सेक्सुअल है, लेकिन दोष है स्त्री का। वह उसे नरक ले जाती है। यह भी ध्यान

रखना जरूरी है कि स्त्री तो पुरुष पर कोई बलात्कार नहीं कर सकती है, स्त्री तो पैसिव है, स्त्री तो निष्क्रिय है, वह कोई हमला तो कर नहीं सकती पुरुष पर। पुरुष हमला कर सकता है। जो निष्क्रिय है उसको नरक का द्वार कहता है और जो सक्रिय है वासना में, वह अपने को, शायद स्वर्ग का द्वार समझता है! स्त्री को दी गयी ये गालियां, ये अपमान, ये अशोभन शब्द अब तक सद्व्यवहार समझे गये हैं और स्त्री इतनी मूढ़ है कि पुरुष की इन दुष्टतापूर्ण बातों में सहयोगी रही है और उसने भी इन बातों का साथ दिया है। उसने कोई इनकार नहीं किया, उसने कोई बगावत नहीं की, उसने कोई विद्रोह नहीं किया। उसने यह नहीं कहा कि यह तुम क्या कह रहे हो। उसे सह लिया उसने चुपचाप। उसको उसने मान लिया है चुपचाप, क्योंकि उसका न कोई अपना गुरु है, न उसका अपना कोई शास्त्र है, न उसका अपना कोई धर्म है। वह सब पुरुषों के निर्मित हैं, वह पुरुषों के पक्ष में लिखे गये हैं। वह सब पुरुषों ने अपने पक्ष में ग्रंथों में लिख दिया है कि अगर पति मर जाय तो स्त्री को सती होना चाहिए। लेकिन किसी पति को भी कभी सती होना चाहिए, यह बात उन्होंने नहीं लिखी। स्वभावतः वर्गीय दृष्टिकोण है, वह पुरुषों का अपना दृष्टिकोण है। वह उसने लिख लिया है। साधु और संन्यासी स्त्री के प्रति क्यों इतने दुर्व्यवहारपूर्ण रहे हैं? उसका एकमात्र मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि साधु और संन्यासी को, भीतर उसकी कामना की स्त्री बहुत पीड़ित और परेशान करती है। उसके भीतर स्त्री घूमती है। वह बेचारा परमात्मा को बुलाना चाहता है। जब भी परमात्मा को बुलाता है तभी पत्नी आ जाती है। वह राम-राम जपता है तभी भीतर काम-काम-काम-काम वासना चलती है। वह घबराया हुआ है भीतर की स्त्री से। वह उस भीतर की स्त्री से परेशान है, उसके बदले में बाहर की स्त्री को गाली देता है, उसके बदले में बाहर की स्त्री से भयभीत होता है कि बाहर की स्त्री ने अगर हाथ छू दिया तो मर गये, जान निकल गयी क्योंकि भीतर जो स्त्री बैठी है वह जाग जायगी, वह खड़ी हो जायगी। बाहर की स्त्री के हाथों में ऐसा क्या है जिन्हें छू देने से किसी संन्यासी में कुछ अपवित्र हो जाय और संन्यासी के शरीर में ऐसा कुछ क्या है जो स्त्री के शरीर से ज्यादा पवित्र है और छूने से अपवित्र हो सकता है? शरीर में क्या है? इतना भय क्या है? इतना भय स्त्री का भय नहीं है, अपने भीतर छिपी हुई सेक्सुआलिटी का, काम वासना का भय है। इसलिए संन्यासी भागता रहा है, घबराता रहा है, दूर-दूर भागता रहा है। स्त्री छू ले तो पाप, स्त्री छू ले तो अपवित्रता और इसको बाकी पुरुष बहुत आदर देते रहे हैं, क्योंकि बाकी पुरुषों का मन स्त्री को छूने के लिए लालायित है। वह देखते हैं कि एक आदमी स्त्री को नहीं छूता है, दूर-दूर भागता है, वह कहते

हैं, है महापुरुष, है तपस्वी, क्योंकि हमारा तो मन नहीं मानता है बिना छुए हुए। हमारा मन होता है कि छुएं-छुएं-छुएं। किसी तरह रोकते हैं, संस्कार, शिष्टाचार सब तरह से अपने को सम्हालते हैं, लेकिन मौका मिल जाय, भीड़ मिल जाय, मंदिर हो, मस्जिद हो, गिरजा हो, तो थोड़ा-बहुत धक्का दे ही देते हैं, वह दूसरी बात है। लेकिन सामने शिष्टाचार रखते हैं, दूर-दूर बचकर चलते हैं। इतना बचकर चलना सबूत किस बात का है? इतना बचकर चलना छूने की इच्छा का सबूत है और किसी बात का सबूत नहीं है। इतनी घबराहट किस बात की है? —वासना की और दमित वासना की। किंतु शेष पुरुष देखते हैं कि यह हैं संन्यासी, यह है महाराज। ये स्त्री को छूने नहीं देते हैं। ये स्त्री से सदा दूर रहते हैं। "स्त्री! दस कदम दूर रहना"—ऐसा साइनबोर्ड जो हाथ में लिये है, वह संन्यासी है!

अभी मैंने सुना है कि एक महाराज को यहां बंबई में किसी स्त्री ने छू दिया तो उन्होंने तीन दिन का उपवास किया। और उससे उनकी इज्जत बहुत बढ़ी। क्योंकि काम-वासना से भरे हुए समाज में ऐसे लोगों की जरूर ही इज्जत हो सकती है, क्योंकि हम काम-वासना से भरे हैं। हमें लगता है कि कितना महान् त्याग किया कि एक स्त्री ने छुआ और उन्होंने इनकार कर दिया कि नहीं छूने देंगे। यह हमारी सेक्सुअल मैंटेलिटी का सबूत है और इसको अगर सद्व्यवहार समझते हैं तो मैं स्त्रियों के साथ ऐसा सद्व्यवहार करने से इनकार करता हूं। लेकिन बड़े मजे की बात है, बड़े आश्चर्य की कि एक बहन ने पूछा है, किसी पुरुष ने पूछा होता तो मेरी समझ में आ सकता था। यह बहन बड़ी मर्दानी होगी। इसकी बुद्धि पुरुषों के शास्त्रों से जो निर्मित है!

वह कैंप में जो बहन आकर मेरे हृदय से लग गयी, उस क्षण उसकी प्रार्थना, उसका प्रेम, उसका आनंद, उसकी पवित्रता अद्भुत थी अन्यथा हजार लोगों के सामने वह मेरे हृदय से आकर जुड़ जाने की हिम्मत भी नहीं कर सकती थी। उसका पति बगल में खड़ा था। वह घबराता रहा, अभी उनके पति मुझे मिले और कहने लगे कि मैंने उससे पूछा कि पागल तूने यह क्या किया? उसने कहा कि मुझे तो पता ही नहीं था। यह तो जब मैं अलग हट गयी तब मुझे ख्याल आया कि लोग क्या सोचेंगे, लेकिन उस क्षण मुझे सोच-विचार भी नहीं था। उस क्षण मुझे लगा कि कोई दूर की पुकार मुझे खींच रही है और मैं पास चली गयी। उस स्त्री को मैं धक्का दे दूं इस ख्याल से कि कोई अखबार का रिपोर्टर, फोटो नहीं उतार ले। उसे कह दूं कि नहीं दूर, उसे दूर कह कर सिर्फ मैं इतना सिद्ध करूंगा कि मेरे भीतर भी वासना उद्दाम वेग से खड़ी है, अन्यथा भय क्या है, अन्यथा डर क्या है, अन्यथा

चिन्ता क्या है। वह स्त्री कहीं कोई एकांत अंधेरे कोने में मुझसे गले आकर नहीं मिली थी। और मिलती तो भी मैं तो मना करनेवाला न था। हजार-हजार लोग चारों तरफ खड़े थे, वहाँ फोटो उतारे जा रहे थे। मुझमें भी थोड़ी बुद्धि तो है, लेकिन इस निर्बुद्धि समाज के सामने ऐसा लगता है कि चाहे कुछ भी सहना पड़े, जो ठीक है, जो सही है, चाहे अनादर सहना पड़े, चाहे अपमान सहना पड़े—जो ठीक है, सही है वही करना है, वही किये चले जाना है। मुझे नहीं लगता कि कोई पुरुष प्रेम से जब गले आकर मिलता है तब उसे मैं नहीं रोकता तो एक स्त्री को मैं कैसे रोक सकता हूं। जब किसी पुरुष को मैं नहीं रोकता तो स्त्री को कैसे रोक सकता हूँ और स्त्री और पुरुष के बीच इतना फासला करने की जरूरत क्या है, प्रयोजन क्या है? क्या हमें शरीर के अतिरिक्त कभी कुछ दिखायी ही नहीं पड़ता? जिस फोटोग्राफर ने वह चित्र उतारा होगा और जिस संपादक ने छापा होगा वह फोटो मेरे और उस स्त्री के बाबत कम, उस फोटोग्राफर और संपादक के संबंध में ज्यादा बताते हैं। उसकी बुद्धि वहीं अटकी रही है। उस घंटे भर के ध्यान के बाद उसे यही दिखायी पड़ा, इतना ही दिखायी पड़ा।

उन बहन ने यह भी पूछा कि गांधी जी तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी स्त्रियों के साथ नहीं करते थे तो शायद बहन को गांधी का कुछ पता नहीं। गांधी इस दुर्व्यवहार को शुरू करनेवाले पहले नैतिक महापुरुष हैं। हिन्दुस्तान में गांधी ने पहली बार स्त्री को वह सम्मान दिया है। हिंदुस्तान के नैतिक महापुरुषों में स्त्री को गांधी की भांति सम्मान देनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति ही नहीं हुआ है। हां, धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्ति जरूर हुए हैं। जैसे कृष्ण। लेकिन उनकी बात ही अलग है। और शायद इसीलिए भारत के कुछ नीतिवादियों ने कृष्ण को नर्क तक में डाल रखा है। कृष्ण को समझना अति कठिन है, क्योंकि उनका चितन और चेतना यौन-केन्द्रित बिल्कुल भी नहीं है। महावीर ने जब स्त्रियों को संन्यास की दीक्षा दी, तो तब भी नीतिवादी चिंतित हुए होंगे। महावीर के भिक्षु थे केवल १२ हजार और भिक्षुणियां थीं ४० हजार। न मालूम कितने लोगों ने महावीर पर एतराज किया होगा; कि चालीस हजार स्त्रियों से घिरा हुआ है यह आदमी, जरूर एतराज किया होगा क्योंकि आदमी सदा हम ही जैसे हमेशा से थे। हमसे भी बदतर और शायद बुद्ध ने इन नासमझों के कारण ही स्त्रियों को दीक्षा देने में सोच-विचार किया था। क्राइस्ट पर लोगों ने शक किया कि मेरी मेग्दालिन नाम की वेश्या इसके चरणों में आकर चरण छूती है, लोगों ने कहा, नहीं इस स्त्री को चरण मत छूने दो। क्राइस्ट ने कहा, लेकिन स्त्री का पाप क्या है कि चरण न छुए? लोगों ने कहा स्त्री भी हो तो ठीक, यह वेश्या है। क्राइस्ट ने कहा, वेश्या मेरे

पास नहीं आयेगी तो कहां जायेगी? अगर मैं वेश्या को इनकार कर दूँगा तो फिर वेश्या के लिए उपाय क्या है, मार्ग क्या है।

विवेकानंद हिन्दुस्तान लौटे। निवेदिता साथ आ गयी और बस हिन्दुस्तान का दिमाग फिर गया और सारे बंगाल में बदनामी फैल गयी कि ये स्वामी और संन्यासी और यह निवेदिता कैसे साथ? निवेदिता की पवित्रता को, निवेदिता के प्रेम को, किसीने भी नहीं देखा। आज जो सारी दुनिया में विवेकानंद का काम फैला हुआ दिखायी पड़ता है, उसमें विवेकानंद का हाथ कम और निवेदिता का हाथ ज्यादा है। निवेदिता भी दंग रह गयी होगी। कैसे ओछे लोग थे, कैसी छोटी बुद्धि थी! इतना ही नहीं उन्हें दिखायी पड़ा, विवेकानंद को इतना ही समझ पाये वे सिर्फ।

गांधी ने तो बहुत हिम्मत की। स्त्रियों को गांधी हिन्दुस्तान के घरों से पहली दफा बाहर लाये, स्त्रियों को पुरुषों के साथ खड़ा किया। आपको शायद पता नहीं होगा, वह मेरी ही फोटो छप गयी है, ऐसा नहीं, मैंने सुना है कि गांधी की एक फोटो यूरोप और अमरीका में खूब प्रचारित की गयी थी। एक फोटो तो उनकी वह प्रचारित की गयी जिसमें वह अपने ही घर की बच्चियों के, नातनी-पोतियां होंगी, उनके कंधे पर हाथ रखे हुए दिखाये गये हैं। वह फोटो प्रचारित की गयी कि यह गांधी बुढ़ापे में भी छोकरियों के साथ रास-रंग करता था। यह मत सोचना कि यह फोटो मेरी छाप दी गयी। वह फोटो हमेशा से छापने वाले लोग रहे हैं और रहेंगे। अपनी बुद्धि के अनुकूल ही वे कुछ कर सकते हैं, इससे ज्यादा करने का उपाय भी तो नहीं है। उन पर नाराज होने का कोई कारण भी तो नहीं है और शायद उस बहन को पता नहीं होगा कि गांधी अपनी अंतिम उम्र में, बुढ़ापे में, एक बीस वर्ष की युवती को लेकर ६ महीने तक विस्तर पर सोते रहे। तब उनको पता चलेगा। उतना दुर्व्यवहार अभी मैंने किसी तरह से नहीं किया है। ६ महीने तक एक युवती के साथ गांधी विस्तर पर सोते रहे, किसलिए? स्वचित्त में छिपी वासना के परीक्षण के लिए। और उस युवती की हिम्मत को दाद देनी चाहिए। और गांधी की ऐसा प्रयोग करने की हिम्मत को भी। वह भी जीवन भर की नैतिकता की दमनवादी धारा में बहने के बाद? इसीलिए मैं कहता हूँ कि गांधी में धार्मिक क्रांति की बड़ी संभावनाएँ थीं। फिर जल्दी नतीजे लेना ठीक नहीं है। जिन्दगी बहुत गहरी है और समझने को है। जहां हम खड़े हैं जिन्दगी वहीं नहीं है, जिन्दगी और आगे है। हम मिट्टी के दिये हैं, जिन्दगी की ज्योति मिट्टी के दिये से बहुत ऊपर जाती है। जिनको ऊपर की ज्योति नहीं दिखायी पड़ती, उन्हें सिर्फ मिट्टी के दिये ही दिखायी पड़ते हैं!

गांधी के उपरोक्त प्रयोग को लेकर भी खूब बातें चलीं। पक्के गांधीवादियों ने विरोध भी किया। रात में पहरे भी दिये। खुद गांधी के पत्रों ने गांधी के वक्तव्य नहीं छापे। और फिर उस घटना को लीप-पोतकर पोंछ डालने की भी चेष्टा की कि कहीं उनके महात्मा मिट्टी में न मिल जायें। लेकिन गांधी के इस प्रयोग पर बहुत ध्यान दिया जाना चाहिए... क्योंकि इससे उनकी दमनवादी प्रवृत्तियों से बिल्कुल विपरीत एक नये आयाम का उद्‌घाटन होता है। गांधी का यह प्रयोग मूलतः तांत्रिक है। इससे उनके जीवन भर की नैतिकता और संयम की भी गहरी टीका हो जाती है। मेरी दृष्टि में तो गांधी दमन से जो मुक्ति नहीं पा सके, वह मुक्ति उन्हें इस तांत्रिक प्रयोग से मिली। लेकिन इसे स्वीकार करना गांधीवादी के लिए तो बहुत महंगा पड़ सकता है, क्योंकि तब गांधी के जीवन भर के संयमवादी रुख और उपदेशों का क्या होगा? दमन और तथाकथित संयम की तो इस प्रयोग ने असफलता ही सिद्ध कर दी है। इसीलिए इस घटना को गांधीवादी दुर्घटना से ज्यादा नहीं मानना चाहता है। और उस पर चुप्पी साधे हुए हैं। ये गांधीवादी गांधी के सामने भी जाकर उस घटना के ऊपर गंदे इशारे करते थे और गंदी हंसी हंसते थे। शायद उनका खयाल रहा होगा कि बुड्‌ढा हमें धोखा दे रहा है! ●

आठवां प्रवचन (प्रश्नोत्तर)

अंधेरे कूपों में हलचल

एक मित्र ने पूछा है कि क्या महापुरुष भी कभी भूलें करते हैं?

हां, करते हैं। महापुरुष भी भूलें करते हैं। एक बात है कि महापुरुष कभी छोटी भूल नहीं करते और जब भी भूल करते हैं, बड़ी ही करते हैं। अतः इस भ्रम में रहने की आवश्यकता नहीं है कि महापुरुष भूल नहीं करते। कोई भी महापुरुष इतना पूर्ण नहीं है कि वह भगवान् कहलाने लगे। महापुरुष भूल करता है और कर सकता है। अतः यह आवश्यक नहीं है कि आने वाले लोग उनकी भूलों पर विचार न करें। यह आवश्यक नहीं है कि हम हिन्दुस्तान के पांच हजार वर्षों के इतिहास पर विचार करें, वरन् यदि हिन्दुस्तान के पांच महापुरुषों पर ही ठीक से विचार कर लें तो आने वाले लोग जिस गलत रास्ते पर चलने वाले हैं—उसकी ओर संकेत हो सकेगा। ठीक समय पर भूल सुधार हो जावेगी। महापुरुष ऊंचाइयों पर चलते हैं, उन उंचाइयों पर, जहां आनेवाली पीढ़ियां हजारों सालों तक चलेंगी। लेकिन इतना आगे चलने में महापुरुष भी न जाने हजारों साल पहले ही कितनी भूलें कर डालता है और उन भूलों को दुर्भाग्यवश हजारों साल तक आने वाली पीढ़ियां आत्मसात् करती रहेंगी। महापुरुष की जातीय भूलें दिखलायी नहीं पड़ती हैं—जातीय भूलों को देखना और समझना कठिन भी है। मैंने गांधी वर्ष को गांधी की जातीय भूलों की आलोचना का वर्ष माना है। इस एक वर्ष में गांधी पर हम जितनी आलोचना कर सकें, हमें करना चाहिए। हम गांधी की जितनी आलोचना करेंगे, उतना ही परोक्ष रूप से उनके प्रति हमारा प्रेम प्रकट होगा। आलोचना द्वारा हम यह प्रकट करेंगे कि हम गांधी को मुर्दा नहीं समझते हैं, उसे जिन्दा समझते हैं। वह और उसके विचार जीवित प्रतीक हैं, तभी तो उस पर विचार करेंगे, उसे समझेंगे और उसकी विचार-परम्परा को आगे बढ़ायेंगे। हम उनकी पूजा नहीं करेंगे। पूजा मरे हुए आदमी की की जाती है, जीवित की नहीं। अतः हम गांधी के विचारों की पूजा नहीं करेंगे।

मैं गुजरात में नहीं था, पंजाब में था। जब लौटा तो मेरी बातों को बड़े-बड़े अजीब अर्थ दे दिया गया था। इन गलतफहमियों की वजह से मुझे गालियां भी दी जा रही हैं। वैसे गालियों का मुझे कोई भय नहीं है। लेकिन यदि इन गालियों

के साथ साथ गांधीजी के विचारों को लेकर कुछ तर्क हुए हों, कुछ विचार-विनिमय हुआ, तो प्रसन्नता की बात अवश्य हो सकती है और उससे गांधी जी की आत्मा भी शान्ति अनुभव करेगी।

आज की चर्चा में जिन बिन्दुओं पर मैं अपनी बात केन्द्रित रखना चाहूंगा, उनमें से पहली बात हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की है। कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति का इतिहास कोई दस हजार वर्ष पुराना है। पांच हजार वर्ष की कथा तो हमें ज्ञात है···जो भी हो, लेकिन इस दस हजार वर्ष के इतिहास में भारत ने खाने और पहनने में कभी भी योग्यता प्राप्त नहीं की। हमारे दस हजार वर्ष के इतिहास की उपलब्धि यह है कि पृथ्वी पर आज सबसे ज्यादा दरिद्र, दीन, हीन और दुःखी लोग हम ही हैं। ऐसा आकस्मिक नहीं हो सकता है। इसमें पीछे हमारे सोचने के ढंग में कोई बुनियादी भूल होनी चाहिए। यह सोचने की बात है कि दस हजार वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी हम श्रम कर रहे हैं, हर प्रकार से सोच रहे हैं, निरन्तर कुछ नया प्रयास कर रहे हैं; फिर भी हम रोजी-रोटी नहीं जुटा पाते हैं। यह बात गंभीर है, विचारणीय है। यदि हमारे मूलभूत दृष्टिकोण में दोष नहीं होता तो इतने धन-धान्य से पूर्ण हमारा देश इतना दरिद्र नहीं होता। अतः हमारे तत्त्वचिन्तन की मूलभूत त्रुटि को हमें अच्छी तरह से समझ लेना है।

भूल यह है कि हिन्दुस्तान का मस्तिष्क आज तक वैज्ञानिक एवं तकनीकी नहीं हो पाया है। हिन्दुस्तान का मरितष्क सदा से अवैज्ञानिक रहा है तकनीक-विरोधी रहा है। दुनिया में संपत्ति तकनीक और विज्ञान से पैदा होती है। संपत्ति आसमान से नहीं टपकती। अमेरिका ३०० वर्ष के इतिहास में जगत् का सबसे समृद्ध एवं शक्तिशाली देश बन गया। हम दस हजार वर्ष का इतिहास लिये हुए भी अमेरिका जैसे नये देश के सामने हाथ जोड़कर भीख मांग रहे हैं। हमें शरम भी नहीं मालुम हुई। हमसे ज्यादा बेशरम कौम भी खोजनी मुश्किल है। मैंने सुना है सन् १९६२ के करीब चीन में एक अकाल पड़ा था। इन अकाल-पीड़ितों की सहायतार्थ इंग्लैंड से उसके कुछ मित्रों ने खाद्य सामग्री, कपड़े, दवाइयां आदि भेजीं वह जहाज जब चीन भेजा तो किनारे से ही भरा हुआ जहाज लौटा दिया गया और उस जहाज पर लिख दिया कि धन्यवाद, हम मर सकते हैं लेकिन किसी भी हालत में भीख मांगने को तैयार नही हैं। होगा चीन कैसा ही देश, होगा माओ कैसा ही और होंगी उनकी नीतियां कितनी ही घातक! लेकिन बात उन्होंने स्वाभिमान की कही। अमेरिका की कौम तीन सौ वर्ष पुरानी है और इन तीन सौ वर्षों में उन्होंने पृथ्वी पर संपत्ति का ढेर लगा दिया। आज वे सारी पृथ्वी के

अन्न-दाता बन बैठे हैं और हम भिखारियों की तरह खड़े हैं। यूरोप-निवासियों के आने के पहले अमेरिका में वही जमीन थी, वही आसमान था, वही खेत थे, वैसे ही वर्षा होती थी, वैसे ही सूरज चमकता था, लेकिन अमेरिका का आदिवासी संपत्ति पैदा क्यों नहीं कर सका? जब देश वही था तो संपत्ति पैदा क्यों नहीं हुई? अमेरिका का आदिवासी भूखा मर रहा था, लंगोटी लगाये हुए था और यूरोप के लोगों के पहुंचने से यह संपत्ति कहां से पैदा हो गयी? यह संपत्ति आयी थी टेकनालाजी से, योरोपीय लोगों के तकनीकी एवं वैज्ञानिक मस्तिष्क से। हिन्दुस्तान का मस्तिष्क प्रारंभ से ही अवैज्ञानिक रहा है। गांधीजी ने हिन्दुस्तानियों के इस अवैज्ञानिक मस्तिष्क में भरी भूलों को और मजबूत किया है, फिर से उन्होंने तकली और चर्खे की बातें की हैं और किसी भी गंभीर व्यक्ति के लिए यह बात बर्दाश्त के बाहर की है। अतः हिन्दुस्तान को यदि प्रगति करनी है तो चर्खा और तकली से मुक्त होना पड़ेगा। मैं आशा करता हूं मेरे कहे का सही अर्थ लगाया जाय और उसे सही माने में समझा भी जाये। मैं यह नहीं कहता हूं जो चर्खा तकली से कमा रहे हैं उनकी कमाई पर हम लात मार दें, यह भी मैं नहीं कहता हूँ कि खादी का उत्पादन हम बंद कर दें। मैं कहना यह चाहता हूं कि खादी-तकली हमारे चिन्तन का प्रतीक न बनें। हमारे चिन्तन के प्रतीक यदि इतने पिछड़े हुए होंगे तो हम आने वाली दुनिया में ऊपर नहीं उठ सकते हैं। हिन्दुस्तान यदि भूखा मरेगा तो उसका जुम्मा तकनीक-विरोधी दृष्टिकोण पर होगा। यदि गांधी की पूरी बात मान ली जाय, तो भारत में ही करीब २५ करोड़ लोगों को मृत्यु के फंदे में ढकेलना पड़ेगा। वह मृत्यु अहिंसक गांधी के सिर पड़ेगी। आल्डुअस हक्सले ने कहीं कहा है कि यदि गांधी की बात सारी दुनिया मान ले तो पृथ्वी की आधी आबादी को नष्ट हो जाना पड़ेगा। ३॥ अरब लोगों में से पौने दो अरब लोगों को मरना पड़ेगा। क्योंकि तकनीक के विकास के कारण ही मनुष्य की आबादी बढ़ी है। जब तक तकनीकी विकास नहीं हुआ था तब तक दुनिया की आबादी इस भांति बढ़ ही नहीं सकती थी। शायद बुद्ध के समय सारी दुनिया की आबादी २-२॥ करोड़ से ज्यादा नहीं थी। यदि हमें पीछे रामराज्य की तरफ लौटना हो तो यह जागतिक आत्मघात (univarsal suicide) ही कहा जा सकता है। चंगीज, तैमूर, सिकंदर, नेपोलियन, हिटलर, स्टालिन, माओ-सब मिलकर भी इतने लोगों को नहीं मार सकते हैं जितनों को अकेले गांधी-दर्शन मार डाल सकता है!

गांधी का विचार तकनीक-विरोधी है और गांधी का यह तकनीक-विरोधी विचार ही भारत को दरिद्र बनाये रखने का कारण बनेगा। इसी कारण इस पर

ठीक से सोच-समझ लेना आवश्यक है। यह तकनीक-विरोधी हमारी परंपरा तो पांच हजार वर्ष पुरानी है और इसीलिए हमें हमारे चारों ओर का सिलसिला भी ठीकठाक ही लगता है। इसीलिए लगता भी है कि क्या करना है जरूरतें बढ़ाकर, क्या करना है बड़ी मशीनें बनाकर, क्या करना है केन्द्रियकरण से ? .... लेकिन हमें यह मालूम होना चाहिए कि केन्द्रियकरण के बिना, बिना बड़े उद्योगों के, संपदा पैदा हो ही नहीं सकती है। संपदा पैदा करनी है तो केन्द्रीकरण की व्यवस्था करनी ही होगी। गांधी विकेन्द्रीकरण के पक्ष में हैं तो मैं यही कहता हूं कि यह विकेन्द्रीकरण ही आत्मघातक सिद्ध होगा। सच बात तो यह है कि यदि गांधी को छोड़कर किसी अन्य आदमी ने विकेन्द्रीकरण की और चरखा-तकली की बातें की होतीं तो हम उस पर हंसते। हम उस आदमी को बेवकूफ कहते। लेकिन गांधी इतने महिमापूर्ण व्यक्ति हैं कि उनकी नासमझी की बातें भी हमें पवित्र मालुम होती हैं। गांधी के व्यक्तित्व में ही कुछ ऐसी बात थी कि वे हमसे यदि दोषपूर्ण एवं असंगत बातें भी कहेंगे तो भी हम उसे परम, सिद्ध मंत्र की तरह स्वीकार करेंगे। गांधी की ये बातें यदि और कोई करता तो हम उसको सपने में भी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि हम जानते थे कि वे न तो विवेकपूर्ण हैं, न बुद्धिमत्ता पूर्ण हैं और नहीं भविष्य में उनसे देश का कोई भला ही होनेवाला है। इससे सिद्ध होता है कि गांधी अद्‌भुत व्यक्ति थे जो हर प्रकार की बात चाहे वह गलत हो या उल्टी, सही प्रमाणित कर सकते थे। यदि कोई साधारण आदमी कहे कि तकली कातो और देश आजाद हो जायेगा तो हम मानेंगे ही नहीं, बल्कि उसकी बात पर हंसेंगे। लेकिन गांधी जैसे आदमी पर हंसना कठिन है। गांधी इतने सच्चे थे, नीयत के इतने साफ कि देश के लिए अपना सब-कुछ अर्पित करके मरे। वे ऐसे व्यक्ति थे कि उनके रोम रोम में, प्राण प्राण में देश की उन्नति के सिवाय और कुछ नहीं बसा था। यही कारण है कि हम यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि गांधी कुछ गलत भी कह सकते हैं। गांधी की गलतियों पर किसीने ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं समझी, क्योंकि गांधी की नियत पर कभी भी किसीको भी शक नहीं था।

गांधीजी को जो ठीक लगा उन्होंने ईमानदारी से उसे निभाया और दृढ़ता पूर्वक उसका पालन भी किया। लेकिन गांधी जी ने जो सोचा वह ठीक भी हो सकता है और त्रुटिपूर्ण भी। यह कोई अनिवार्यता नहीं है कि गांधीजी ने जो कुछ सोच लिया, वह ध्रुव सत्य है और वह त्रुटिपूर्ण हो ही नहीं सकता। दुनिया में अनिवार्यता किसी भी चीज की नहीं है। न्यूटन को जो ठीक लगा वह न्यूटन ने किया। आइन्स्टीन को जो ठीक लगता है वह आइन्स्टीन करता है। दोनों का विरोधाभास

यदि हो भी जाये तो इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों एक-दूसरे के शत्रु हो जायेंगे। आइन्स्टीन तो न्यूटन के सिद्धांतों को आगे बढ़ाने वाला होगा, उसे गति प्रदान करने वाला होगा और प्रगति का यही क्रम भी रहता है। मैं कोई गांधी का शत्रु नहीं हूं। मेरे हृदय में उनके प्रति जितना प्रेम है, श्रद्धा है, शायद ही अन्य किसी पुरुष के प्रति हो। लेकिन कठिनाई यह है कि उनके थोथे अनुयायी यह प्रचारित करते हैं कि मैं उनका शत्रु हूं तो यह बच्चों जैसी नादानी और मूर्खता ही कही जायेगी। गांधी के व्यक्तित्व पर मुझे कोई शक नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि गांधी जो कहते हैं वह सब सही हो सकता है, सब उपयोगी हो सकता है। ऐसा सोचना स्वयं को धोखा देना होगा, खतरनाक होगा ।

कई लोग व्यक्तित्व के साथ कृतित्व को जोड़ने के आदी हो गये हैं। किसी भी महापुरुष ने मनुष्य के, समाज के रूपान्तरण के संबंध में इतना गहरा विचार नहीं किया जितना कि मार्क्स ने किया है। लेकिन मार्क्स सुबह से लेकर शाम तक सिगरेट पीता था। अब अगर कोई समाजवादी यह समझे कि मुझे भी सुबह से शाम तक सिगरेट पीनी चाहिए केवल इसलिए क्योंकि मार्क्स सिगरेट पीता था और मार्क्स ने जो भी व्यक्तिगत स्तर पर गलत काम किये वह भी उन्हें दोहरायेगा तो उसे कोई भी संगतिपूर्ण नहीं कहेगा। हर बड़े आदमी की अपनी कुछ व्यक्तिगत रुझान होती है, अपने जीने का ढंग होता है। उसे जो प्रीतिकर होता है, वह करता है। लेकिन पीछे आने वाले लोगों को निरंतर सचेत होकर सोचना जरूरी है कि क्या उसके और देश के लिए, भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

मुझे ऐसा दीख पड़ता है कि यदि हम गांधी के इस तकली-चर्खा के जीवन-दर्शन में डूबे रहे, उसीमें अपनी शक्ति और समय नष्ट करते रहे तो यह देश औद्योगिक क्रांति में से नहीं गुजर सकेगा। यह स्मरण रहे कि आनेवाले पचास वर्षों में सारी दुनिया से इतनी बड़ी क्रांति गुजरने वाली है कि हमारे बीच और पश्चिम के बीच इतना बड़ा फासला हो जायेगा कि शायद इस फासले को हमारी आनेवाली पीढ़ियां कभी पूरा न कर सकेंगी। हमें जो भी करना है वह आनेवाले बीस वर्षों में अत्यंत तीव्रता से तकनीक के मामले में आधुनिक दुनिया के समक्ष खड़ा होना है। अन्यथा हम हमेशा के लिए पिछड़ जायेंगे जैसा अब तक होता रहा है। तकनीक यानी मनुष्य की इन्द्रियों और समताओं का विस्तार। आंख थोड़ी दूर ही देख सकती है, लेकिन दूरबीन बहुत दूर तक देख सकती है। वह आंख का ही विस्तार है। अब तो राडार आंखें भी हैं। और जिन्हें चांद-तारों पर पहुंचना है, उनके लिए खाली आँखें काफी नहीं

हो सकती हैं। ऐसे ही शेष सारी तकनीक का भी दर्शन है। हमारा मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है। और हमारे हवाई जहाज हमारे पैरों के। मनुष्य तकनीक के माध्यम में विराट् हो गया है। और जो भी उस आयाम में यात्रा करने से इनकार करेंगे वे व्यर्थ ही बौने रह जायेंगे। गांधी की बातें भारत को बौना करनेवाली हैं। उनका चले तो हमें आदि-गुफा-मानव की दुनिया में पहुंचा दें। माना कि कोई इतनी दूर तक उनकी बातें नहीं मानेगा। बुद्धि रहते ऐसा करना सुगम भी नहीं है। लेकिन लम्बी पराजय और आलस्य से भरी जाति ऐसी बातें अपने अहंकार को बचाने के लिए भी मान सकती है। भारत में कुछ ऐसा ही हो रहा है। जिन अंगूरों तक हम नहीं पहुंच पा रहे हैं उन्हें खट्टे कहकर स्वयं का चेहरा बचाया जा रहा है! लेकिन इसमें किसी और का कोई नुकसान नहीं है। हानि होगी तो बस हमारी ही होगी! क्योंकि चाहे झूठे ही सही, बिना स्वाद लिये ही सही, जिसे हम खट्टा मान लेते हैं, उसे पाने की मात्रा बंद हो जाती है। और हमारे खट्टे की घोषणा से दूसरे तो उसे पा नहीं सकते हैं। बल्कि जब उनके चेहरे कहते हैं कि नहीं जो हमने छोड़ा वह खट्टा नहीं था, तो हमारे प्राण और भी संकट में पड़ जाते हैं। लेकिन तब स्वाभिमान बचाने को हम अंगूरों के खट्टे होने का और भी शोरगुल मचाने लगते हैं। यह एक दुष्ट-चक्र है। और भारत इसमें बुरी तरह उलझ गया है। हिन्दुस्तान की दीनता और दरिद्रता की कथाएँ यह बतला रही हैं कि हमने कभी टेकनालॉजी विकसित करने का प्रयास ही नहीं किया। हम यही कहते रहे कि हम झोपड़ों में रह लेंगे, अपना चरखा कात लेंगे, अपना कपड़ा बुन लेंगे और हमें क्या आवश्यकता है अन्य चीज़ों की? हम अपनी जगह बैठे रहे और दुनिया तेजी से विकसित होती चली गयी। चीन ने हम पर हमला किया तो हम पीछे हट आये और जितनी जमीन हमने छोड़ी उस पर चीन ने कब्जा कर लिया, वह जमीन उसीकी हो गयी। अब हम उसकी कोई बात ही नहीं करते। करने की हिम्मत भी करना कठिन है। यह सब इसलिए, क्योंकि तकनीक की दृष्टि से हम चीन से पिछड़े हुए हैं, उससे लड़ने में असमर्थ हैं। एक बड़े गांधीवादी नेता से इस संबंध में मेरी बात होती थी तो उन्होंने कहा: "वह जमीन बिलकुल बेकार है। उसमें घास-फूस भी पैदा नहीं होता है।" यह वही खट्टे अंगूरों वाली बात है न?

मनुष्य ने जितनी सभ्यता विकसित की है वह श्रम से मुक्त हो जाने के लिए की है। जब भी कुछ लोग श्रम से मुक्त हो गये तो उन्होंने काव्य रचे, गीत लिखे, चित्र बनाये, संगीत का सृजन किया, परमात्मा की खोज की। इस प्रकार आदमी जितना श्रम से मुक्त होता है उतना ही उसे धर्म, संगीत और साहित्य को विकसित करने का अवसर मिलता भी है। कभी आपने सोचा है कि जैनों के चौबीस

तीर्थंकर राजाओं के ही लड़के क्यों हुए? बुद्ध राजा के ही लड़के क्यों हुए? राम और कृष्ण राजा के लड़के क्यों हुए? हिन्दुस्तान के सब भगवान् राजाओं के लड़के क्यों हुए? उसका भी कारण है। एक दरिद्र आदमी जो दिन भर मजदूरी करके भी पेट नहीं भर सकता है, खाना नहीं जुटा सकता है, थका मांदा रात को सो जाता है, सुबह उठकर फिर अपनी मजदूरी में लग जाता है——उसके लिए कहां का परमात्मा, कहां की आत्मा, कहां का दर्शन? दरिद्र समाज कभी धार्मिक समाज नहीं हो सकता है। हिन्दुस्तान दो-ढाई हजार वर्ष पूर्व समृद्ध था तो वह उस समय धार्मिक भी था। लेकिन आज हिन्दुस्तान इतना गरीब और दरिद्र है कि वह धार्मिक नहीं हो सकता है। मैं आपसे दावे से कह सकता हूं कि रूस और अमेरिका आने वाले पचास वर्षों में एक नये अर्थ में धार्मिक होना शुरू हो जायेंगे। उनके धार्मिक होने की प्रक्रिया भी प्रारंभ हो गयी है। जब आदमी के पास अतिरिक्त संपत्ति होती है, जब उसके पास श्रम की कमी के कारण समय बचता है, तब पहली बार आदमी की चेतना पृथ्वी से ऊपर उठती है और आकाश की ओर देखती है।

संतोष एक बहुत ही घातक शब्द है, हमें जड़ करने के लिए। हमारा दर्शन यह है कि हम अपनी चादर में ही संतुष्ट हैं। हमारे हाथ पांव बढ़ते जायेंगे, लेकिन हम अपने को सिकोड़ते जायेंगे। चादर तो उतनी ही रहेगी—छोटी की छोटी। तुम भीतर बड़े होते जा रहे हो। रोज कभी हाथ उघड़ जावेगा, कभी पांव उघड़ जावेगा, कभी पीठ उघड़ जावेगी और इस तरह सिकुड़ते-सिकुड़ते जिन्दगी कठिन हो जावेगी। सिकुड़ना तो मरने का ढंग है। तो मेरा यह कहना है कि जीवन के विस्तार का नियम यह नहीं है। जीवन के विस्तार का दर्शन यही कहता है कि हमें चादर का विस्तार करना है। हमेशा चादर के बाहर पैर फैलाओ, ताकि बाहर जाये और हमें यह चुनौती मिले कि चादर को हमें बड़ा करने का निरंतर प्रयास करना है। हिन्दुस्तान कायर और सुस्त अकारण नहीं हो गया। हिन्दुस्तान के सुस्त एवं कायर होने के पीछे तथाकथित बड़े-बड़े लोगों का दर्शन है। अतः हिन्दुस्तान के हर व्यक्तित्व को फैलाव चाहिए। हमें तकनीक विरोधी दर्शन छोड़ना है और प्रतिभाओं को खुला अवसर देना है, साहसपूर्वक उनका फैलाव करना है।

मेरा विरोध गांधी से नहीं, गांधीवादी दर्शन से है। हिन्दुस्तान के राजनीतिज्ञों को गांधी से कोई मतलब नहीं है, मतलब है गांधीवाद से। इसलिए गांधीवाद की इतनी भीमकाय तस्वीरें और रंगमंच खड़े कर दिये हैं ताकि उसके पीछे सब-कुछ खेला जा सके, सब-कुछ सही गलत किया जा सके। बीस वर्ष से गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है, गांधीवाद के नाम पर देश का शोषण चल रहा है और गांधी-

वादियों ने इन बीस वर्षों में देश को नर्क की यात्रा करा दी है। गांधीवाद से हम जितनी जल्दी मुक्त हो जावें उतना ही अच्छा होगा और उसी दिन हम सच्चे अर्थों में गांधी को ज्यादा प्रेम और आदर देने में समर्थ हो सकेंगे। इन गांधीवादियों की वजह से ही गांधी का इतना अनादर हो रहा है।

गांधी ने जिस दिन चरखे-तकली की बात की थी तब संभवतः उसकी जरूरत रही होगी। लेकिन वह जरूरत दूसरी थी—न तो औद्योगिक थी, न आर्थिक थी, वरन् वह राजनैतिक थी। वे राजनैतिक स्तर पर देश को एकता का प्रतीक देना चाहते थे। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाला तबका अभी भी इसी प्रयास में लगा है कि गांधी का वही पुराना प्रतीक हमेशा बना रहे। यह कैसे संभव हो सकता है? आगे चलकर भी वह हमारा प्रतीक कैसे हो सकता है। गांधी के समय की परिस्थितियां उनके साथ ही समाप्त हो गयीं और वह बात उन्हींके साथ चली गयी। अब परिस्थितियां और आवश्यकताएं बिल्कुल भिन्न हैं। लेकिन एक गांधीवादी वर्ग अभी भी गांधी के इस चरखे-तकली को हमारी आर्थिक योजनाओं के साथ जोड़ना चाहता है। ऐसा षड़यंत्र देश को सदा के लिए अवैज्ञानिक बना देगा। वैसे ही हमारे पास वैज्ञानिक बुद्धि का नितांत अभाव है। मैं कलकत्ता में एक डॉक्टर के घर मेहमान था। डॉक्टर के पास बहुत डिग्रियां हैं। वे कलकत्ते के एक प्रख्यात फिजीशियन हैं। शाम को जब वे एक मीटिंग में मुझे ले जाने के लिए निकले तो उनकी लड़की को छींक आ गयी। वह डॉक्टर मुझसे बोले कि दो मिनट रुक जाइये, लड़की को छींक आ गयी है। मैंने उस डॉक्टर से कहा कि यदि मेरे हाथ में हो तो मैं अभी तुम्हारे सारे सर्टीफिकेट्स में आग लगा दूं और घोषणा कर दूँ कि इस आदमी से किसीको भी दवा नहीं लेनी चाहिए। यह आदमी खतरनाक है। इसके पास वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है। तुम डॉक्टर हो और भलीभांति जानते हो कि छींक आने का भीतरी शारीरिक कारण है। उसका, मेरे जाने से कोई संबंध भी नहीं है। हिन्दुस्तान वैज्ञानिक शिक्षा तो ले रहा है, लेकिन उसके पास वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है। हम वैज्ञानिक पैदा कर रहे हैं। विज्ञान की बड़ी-बड़ी डिग्रियां बांट रहे हैं, फिर भी वैज्ञानिक बुद्धि हम पैदा नहीं कर पाये। अतः हिन्दुस्तान के लोगों को आनेवाले समय में तकनीकी मस्तिष्क का बनाना है, जीवन के लिए अधिक से अधिक साधन पैदा करने हैं ताकि यह देश जो हजारों साल से गरीब रहा है, गरीब न रह सके। यह जो मुल्क हजारों वर्षों से मानसिक रूप से गुलाम रहा है, गुलाम न रह सके। उसकी दरिद्रता का बोध टूटे। देश में नये सिरे से प्रतिभाओं का विकास हो और संसार के अन्य देशों के समकक्ष खड़ा हो सके। गांधी जिस दिन देश को इस नयी हालत में देखेंगे उनकी आत्मा अवश्य ही

प्रसन्न होगी। गांधीजी की आत्मा के पास अब कोई उपाय नहीं कि वह आपको आकर कह दे कि चर्खा-तकली से मुक्त हो जाओ। अतः यह काम हम लोगों को ही करना होगा। मैं यह मानता हूं कि जो बात मैं आपसे कह रहा हूं, यदि गांधीजी से कहता तो गांधी उसे आपसे ज्यादा सहानुभूति से सुनने में समर्थ हो सकते थे। लेकिन गांधीवादी मेरी बातों का अजीब अर्थ लगाते हैं, मेरे बारे में न जाने क्या क्या कहते हैं। कोई कहने लगा मैं चीन का एजेन्ट हूं, कोई कहता है मुझे रूस से पैसे मिलते हैं, कोई कहता है पुलिस से मेरी जांच करवानी चाहिए। कोई कहता है कि यह व्यक्ति गुरु गोलवलकर से अधिक खतरनाक है, यह निश्चय ही कोई खतरनाक षड़यंत्र रच रहा है।.... तब मुझे एक ही बात कहनी है कि गांधी जिस देश का निर्माण कर गये हैं, जिसके लिए उन्होंने ४०-५० वर्ष मेहनत की, जिसके लिए वे मरे-खपे, जिनके लिए उन्होंने इतना श्रम किया, उस सब पर अनेक अनुयायी एकदम पानी फेरे दे रहे हैं। क्योंकि वे देश को विचार तक करने की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते हैं। वे विचार का किसी भी भांति गला घोंटने के लिए उत्सुक हैं। विचार करने को वे देशद्रोह बतलाते हैं और विचार के लिए आमंत्रण देने को वे षडयंत्र की भूमिका बतलाते हैं। बहुत-से गांधीवादी मेरे मित्र रहे हैं, लेकिन जब मैंने गांधीवाद की आलोचना की, तो मैंने सोचा भी नहीं था कि वे मेरे शत्रु हो जावेंगे। मुझे अनेक पत्र आये हैं और उन पत्रों में यही लिखा है कि मैं आत्मा-परमात्मा की ही बात करूं और कोई अन्य बात नहीं और न ही किसी तरह की राजनीति की बात। आह! तब मुझे ज्ञात हुआ कि आत्मा-परमात्मा की ही बात करवाना भी कैसी राजनीति है! राजनीतिज्ञ मुझे सलाह देते हैं कि मैं सिर्फ धर्म की ही बात करूं! आह! कैसे कुशल राजनीतिज्ञ हैं! वे मुझे कहते हैं कि देश की और समस्याओं पर बोलने में मेरी प्रतिष्ठा को हानि पहुंचेगी! अर्थात् वे मुझे भी राजनीतिज्ञ बनाना चाहते हैं। क्योंकि जो प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर जीता है, वही तो राजनीतिज्ञ है! मैं ठहरा एक फकीर—मुझे प्रतिष्ठा से क्या प्रयोजन है? सत्य से जरूर प्रयोजन है—लोक-मंगल से जरूर प्रयोजन है और उसके लिए यदि मेरी कुर्बानी भी हो जावे तो कोई हानि नहीं है। सच तो यह है कि मेरे पास अब कुर्बान करने को भी तो कुछ नहीं है। मैं भी तो नहीं बचा हूं। उसे भी तो प्रभु को दे चुका हूं। इसलिए अब मैं कुछ कह रहा हूं ऐसा भी नहीं है। प्रभु की जो मर्जी। वह जो करवाये, मैं उसीके लिए राजी हूं। मैं जो बोलता हूँ वह भी तो अब उसीका है। और सलाह ही लेनी होगी तो मैं इन राजनीतिज्ञों से लेने नहीं जाऊंगा। उसके लिए भी तो प्रभु का द्वार मेरे लिए सदा खुला है। इसलिए कोई मेरी या मेरी प्रतिष्ठा की चिन्ता न करे। चिन्ता करे

उसकी कि जो मैं कह रहा हूं। क्योंकि समय रहते उसकी चिन्ता करने में देश के भविष्य को व्यर्थ ही गड्ढे में गिरने से बचाया जा सकता है।

एक और मित्र ने पूछा है कि मैं गांधीजी को नतिक पुरुष ही मानता हूं, धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं! धार्मिक और नैतिक में क्या भेद है? फिर मैं गांधी-वादियों को भी नैतिक ही कहता हूं तब गांधीजी और इनके अनुयायियों में क्या कोई भी भेद नही है?

साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि जो नैतिक है, वह धार्मिक है। यह बड़ी भूलभरी दृष्टि है। धार्मिक तो नैतिक होता है, लेकिन नैतिक धार्मिक नहीं! धार्मिक वह है जिसने जीवन के सत्य को जाना। यह अनुभूति विस्फोट (Explosion) की भांति उपलब्ध होती है। उसका क्रमिक (Gradual) विकास नहीं होता। जीवनके तथ्यों के प्रति समग्ररूपेण जागकर जीने से जीवन के सत्य का विस्फोट होता है। उस विस्फोट की भूमिका जागकर जीना है। प्रज्ञा, अमूर्च्छा, या अप्रमाद (Awareness) से वह विस्फोट घटित होता है। योग या ध्यान जागरण की प्रक्रियाएँ हैं। विस्फोट को उपलब्ध चेतना का आमूल जीवन बदल जाता है। असत्य की जगह सत्य, काम की जगह ब्रह्मचर्य, क्रोध की जगह क्षमा, अशांति की जगह शांति, परिग्रह की जगह अपरिग्रह या हिंसा की जगह अहिंसा का आगमन अपने-आप ही हो जाता है। उन्हें लाना नहीं पड़ता है। न साधना ही पड़ता है। उनका फिर कोई अभ्यास नहीं करना होता है। वह रूपांतरण सहज ही फलित है। मूर्च्छा में, निद्रा में, सोये हुए व्यक्तित्व में जो था, वह जागते ही वैसे ही तिरोहित हो जाता है, जैसे कि प्रकाश के जलते ही अंधकार विलीन हो जाता है। इसलिए, धार्मिक व्यक्ति असत्य, या अब्रह्मचर्य या हिंसा को दूर करने या उनसे मुक्त होने की चेष्टा नहीं करता है। उसकी तो समस्त शक्ति जागने की दिशा में ही प्रवाहित होती है। वह अंधकार से नहीं लड़ता है, वह तो आलोक को ही आमंत्रित करता है। लेकिन, नैतिक व्यक्ति अंधकार से लड़ता है। वह हिंसा से लड़ता है, ताकि अहिंसक हो सके, वह काम से लड़ता है ताकि अकाम्य हो सके। लेकिन हिंसा से लड़कर कोई हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता है। न ही वासना से लड़कर कोई ब्रह्मचर्य को ही उपलब्ध होता है। ऐसा संघर्ष दमन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकता है। हिंसा अचेतन (Unconscious) में चली जाती है और चेतन मन अहिंसक प्रतीत होने लगता है। यौन (Sex) अंधेरे चित्त में उतर जाता है और ब्रह्मचर्य ऊपर से आरोपित हो जाता है। इसीलिए ऊपर से देखने और जानने पर धार्मिक व्यक्ति और नैतिक व्यक्ति एक से दिखायी पड़ते हैं। लेकिन वे एक-से नहीं ह। नैतिक व्यक्ति शीर्षा-

सन करता हुआ अनैतिक व्यक्ति ही है, लेकिन सोया हुआ ही। उसके जीवन में कोई क्रांति घटित नहीं हुई है। इसीलिए नीति को क्रमशः साधना होता है। नीति विकास (Evolution) है, धर्म क्रांति (Revolution) है। नीति धर्म नहीं है। वह धर्म का धोखा है। वह मिथ्या-धर्म (Pseudo-Religion) है। और वह धोखा प्रबल है। तभी तो गांधी जैसे भले लोग भी उसमें पड़ जाते हैं। वे धार्मिक ही होना चाहते थे। लेकिन नीति के रास्ते पर भटक गये। और ऐसा नहीं है कि इस भांति वे अकेले ही भटके हों। न मालुम कितने तथा-कथित संत और महात्मा ऐसे ही भटकते रहे हैं। इसीलिए जीवन के अंत तक वे 'सत्य के प्रयोग' ही करते रहे, लेकिन सत्य उन्हें उपलब्ध नहीं हो सका। और उनकी अहिंसा में भी इसीलिए छिपी हुई हिंसा के दर्शन होते हैं। और स्वयं के ब्रह्मचर्य पर भी वे स्वयं ही संदिग्ध थे। और स्वप्न में उन्हें काम-वासना पीड़ित भी करती थी। दमन से ऐसा ही होता है। दमन का यही स्वाभाविक परिणाम है। इसलिए धार्मिक होने की कामना से भरे हुए भी गांधी धार्मिक न हो सके। लेकिन धार्मिक होने की इच्छा तो उनमें थी। और जो उन्हें ठीक लगता था उसे वे निष्ठापूर्वक करते थे। शायद इस जीवन की असफलता उन्हें अगले जीवन में काम आ जाये। आदमी भूल से ही तो सीखता है। पहली भूल है अनीति। फिर दूसरी भूल है नीति। अनीति से आनंद पाने में असफल हुआ व्यक्ति नीति की ओर मुड़ जाता है। और फिर नीति भी जब असफलता ही लाती है तभी धार्मिक यात्रा शुरू होती है। मैं मानता हूँ कि गांधी ने इस जीवन में नैतिकता की असफलता भी भलीभांति देख ली है। लेकिन, उनके शिष्य यह भी नहीं देख पाये हैं। क्योंकि वे नैतिक भी बे-मन से थे। नैतिकता गांधी के लिए साधना थी। उससे वे स्वयं धोखे में पड़े, लेकिन उससे वे किसी और को धोखे में नहीं डालना चाहते थे। उनके अनुयायियों के लिए नैतिकता आवरण थी, जिससे वे केवल दूसरों को धोखे में डालना चाहते थे। इसीलिए जब सत्ता आयी तो गांधी ने सत्ता की बागडोर हाथ में लेने से इनकार कर दिया। क्योंकि उनका दमन हार्दिक था। वे अपने हाथों से अपनी दमित जीवन-व्यवस्था को प्रतिकूल परिस्थितियों में नहीं छोड़ सकते थे। क्योंकि उन प्रतिकूल परिस्थितियों में उस जीवन-भर साधी गयी व्यवस्था के टूट जाने का भय था। इसीलिए गांधी सत्ता से बचे। लेकिन उनके अनुयायी सत्ता की ओर अपने सब आवरणों को छोड़कर भागे। और फिर सत्ता ने उनकी सारी कागजी नैतिकता में आग लगा दी। वे स्पष्ट ही अनैतिक हो गये। यदि गांधी सत्ता में जाते तो उनकी नैतिक व्यवस्था भी टूटती। लेकिन इससे वे अनैतिक नहीं हो जाते वरन् धार्मिक होने की उनकी खोज शुरू होती। तब नैतिकता भी साधी जा सकती है यह उनका

भ्रम टूटता। और वे उस धर्म की ओर बढ़ते जो कि नीति के अभ्यास और अंतःकरण (Conscience) के निर्माण से नहीं, वरन् जागरण (Awareness) और चेतना (Consciousness) को सतत और भी सचेतन करने से उपलब्ध होता है। यही गांधी और गांधीवादियों में भेद था। गांधी को ऐसा बहुत बार लगता भी था कि उनकी अहिंसा में कमी है या उनके ब्रह्मचर्य में या उनकी पवित्रता में। लेकिन तब वे अपने पूर्व अभ्यास में और भी प्रगाढ़ता से लग जाते थे। काश ! उन्हें खयाल आ सकता कि कमी उनमें नहीं, वरन् उस मार्ग में ही थी, जिस पर कि वे चल रहे थे, तो उनका जीवन धार्मिक हो सकता था। उस विस्फोट की संभावना भी उनमें थी। लेकिन नैतिक सफलता से कोई कभी धार्मिक नहीं होता है। नैतिक सफलता तो और भी प्रगाढ़रूप से आचरण में अटका लेती है। वह आस्तिक तक जाने ही नहीं देती है। वह भी बाह्य संपदा है। और वह भी अहंकार का ही सूक्ष्मतम रूप है। इसीलिए आजादी के बाद गांधी की असफलताएँ हो सकता था उन्हें नैतिक साधना की असफलता का बोध करातीं। शायद वह बोध आरंभ भी हो गया था। लेकिन आजादी के पूर्व आजादी के लिए मिलती सफलताओं के धुंएँ में वह बोध मुश्किल था। वैसे जब वे आजादी के पूर्व भी असफल होते थे तो उन्हें अपने में कमी दिखाई पड़ती थी। लेकिन वह कमी स्वयं में दिखाई पड़ती थी। नैतिक जीवन के अनिवार्य उथलेपन में नहीं। यह भी अकारण नहीं है। नैतिक व्यक्तित्व जीता है अहंकार के केन्द्र पर। इसलिए जब जीतता है तो अहंकार जीतता है और जब हारता है तो अहंकार हारता है। इसीलिए गांधी दूसरों के द्वारा किये गये अपराधों को भी अपना मानकर आत्मशुद्धि का उपाय करते थे। यह अहंकार (Ego-centeredness) की अति है। इस अहंकार के कारण ही वे कभी तथ्यगत (objective) विचार नहीं कर पाये। उनकी विचारणा सदा ही अहं-गत (Egoistic) बनी रही। शायद नैतिक-जीवन की पूरी असफलता ही उन्हें जगा पाती। शायद पूरी नाव को टकराकर टूटते देख ही वे गलत नाव पर सत्य की यात्रा कर रहे थे, इसका उन्हें बोध होता। पर उनके इस जीवन में यह नहीं हो सका। जो उन्हें प्रेम करते हैं, वे परमात्मा से, उनके अगले जीवन में यह हो, ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं। वे एक अनूठे व्यक्ति थे। और उनमें धार्मिक व्यक्ति का छिपा बीज था, लेकिन नीति ने उन्हें रास्ते से भटका दिया। शायद उनके अतीत जीवनों की अनैतिकता की ही प्रतिक्रिया (Reaction) था। और उनके चित्त की जड़ों में उतरने से ऐसा ही प्रतीत होता है। जैसे प्रारंभ में वे अति-कामुक थे। उनके पिता मृत्यु-शय्या पर थे। लेकिन उस रात्रि भी वे पत्नी से दूर न रह सके। और पत्नी गर्भवती थी। शायद चार-पांच दिन बाद ही उसे बच्चा हुआ। लेकिन होते ही मर गया।

शायद यह भी उनके संभोग का ही परिणाम था। और जब वे संभोग में थे तभी पिता चल बसे और घर में हाहाकार मच गया। फिर अति कामुकता के लिए वे कभी अपने को क्षमा नहीं कर पाये। और प्रतिक्रिया में जन्मा उनका ब्रह्मचर्य। निश्चय ही ऐसा ब्रह्मचर्य कामुकता का ही उल्टा रूप हो सकता है। क्योंकि प्रतिक्रियाओं से कभी किसी वृत्ति से मुक्ति नहीं मिलती है। वृत्तियों से, वासनाओं से मुक्ति आती है समझ (Understanding) से और जो व्यक्ति प्रतिक्रिया में होता है, विरोध में होता है, शत्रुता में होता है, उसमें समझ कैसे आ सकती है? शायद अंतिम दिनों में, नोआखाली में, एक युवती के साथ सोकर कुछ समझ, कुछ जागरण आया हो तो आया हो। लेकिन जीवन भर जिसे वे संयम की साधना कहते थे, उससे तो कुछ भी नहीं हुआ। हाँ वे उस साधना के कारण यौनाविष्ट (sex-obsceneed) जरूर बने रहे। इस यौन-चिन्ता ने उनकी दृष्टि को व्यर्थ ही विकृत किया। और इसके कारण वे अपने अनुयायियों पर भी अत्यधिक दमन थोपते रहे। इसकी भी पूरी संभावना है कि उनके उपवास, उनका तप आदि आत्म-अपराध (Self-Guilt) की भावना में जन्म हों ! स्वयं को सताने (Self-torture) की प्रवृत्ति भी यौन-दमन से पैदा हुई एक विकृति है। इसी भांति उनके जीवन की और दिशाओं में इस दमन और प्रतिक्रिया का परिणाम हुआ है। उनका समस्त जीवन-दर्शन ही इस विकृत चित्त-दशा से प्रभावित है। उनकी इस चित्त-दशा के कारण उनके पास एकत्रित होनेवाला बड़ा अनुयायी वर्ग—विशेषकर उनके-आश्रमोंके अंतेवासी किसी न किसी भांति के मानसिक विकारों से पीड़ित वर्गों से ही आ सकते थे। इसलिए गांधी के कारण देश यदि मानसिक रोगग्रस्त व्यक्तियों के हाथ में चला गया है तो कोई आश्चर्य नहीं है। गांधी के जीवन का पूर्ण मनो-विश्लेषण (Psycho-analysis) आवश्यक है। उसमें बड़े कीमती तथ्य हाथ लग सकते हैं। उनके प्रारंभिक जीवन में भय (Fear) बहुत गहरा बैठा हुआ प्रतीत होता है। मैंने सुना है कि पहली बार अदालत में बैरिस्टर की भांति बोलते हुए वे इतने भयभीत हो गये थे कि उन्हें मूर्च्छित अवस्था में ही घर लाया गया था। और जो वे उस दिन बोलने को थे, उसकी तैयारी उन्होंने रातभर जागकर की थी। इंग्लैंड जाते समय जहाज के कुछ यात्री किसी बंदरगाह पर उन्हें किसी वेश्यालय में ले गये थे। वे नहीं जाना चाहते थे। लेकिन साथियों को 'नहीं' कहने का साहस नहीं जुटा पाये। वेश्या के समक्ष जाकर उनकी वही स्थिति हो गयी जो कि बाद में अदालत में होने को थी। इंग्लैंड में एक युवती उनके प्रेम में पड़ गयी थी लेकिन उससे वे यह कहना चाहकर भी कि मैं विवाहित हूं, कहने का साहस नहीं जुटा पाये थे। इनका इतना भयभीत चित्त—उनका इतना भीरु व्यक्तित्व बाद में इतना निर्भय कैसे हो गया? क्या यह उस भय की ही प्रतिक्रिया नहीं है? भय की प्रतिक्रिया में व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अभय नहीं। निर्भय उल्टा हो गया भय है।

इसलिए निर्भयता फिर जान-बूझकर भय की स्थितियों को खोजने लगती है। भय की स्थितियों में अपने को ढालने में भी फिर एक विकृत रस की उपलब्धि होने लगती है। और फिर ऐसे मन अपने को विश्वास दिलाता है कि अब मैं भयभीत नहीं हूं। लेकिन यह भी भय ही है। क्या गांधी की निर्भयता भय ही नहीं है? क्या उनकी अहिंसा में भय ही उपस्थित नहीं है? मेरे देखे तो ऐसा ही है। भय ने निर्भयता के वस्त्र पहन लिये हैं। वह अभय (Fearlessness) इसलिए भी नहीं है, क्योंकि गांधी ईश्वर से भलीभांति और सदा भयभीत हैं। उन्होंने अपने समग्र भय को ईश्वर पर आरोपित कर दिया है। वे कहते भी हैं कि वे ईश्वर को छोड़ और किसी से भी नहीं डरते हैं। अभय में ईश्वर का भी भय नहीं होता है। भय भय है। वह किसका है यह अप्रासंगिक है। फिर ईश्वर का भय तो बड़े से बड़ा भय है। अभय निर्भयता की कवायद भी नहीं करता है। अभय में न भय है, न निर्भयता है। इसलिए अभय अत्यंत सहज है। सांप रास्ते पर हो तो वह सहज ही रास्ता छोड़कर हट जाता है, लेकिन इसमें भय नहीं है। और समय आ जाये तो वह पूरे जीवन को दाँव पर लगा देता है, लेकिन इसमें भी कोई निर्भयता नहीं है। अभय में न भय का बोध है, न निर्भयता का ही। अभय तो दोनों से मुक्ति है। पर गांधी की निर्भयता अभय नहीं है। वह भय का ही वेश-परिवर्तन है। उनका जीवन प्रज्ञा से आयी मुक्ति नहीं है। वह केवल प्रतिक्रिया है। वह स्वयं से संघर्ष है, द्वन्द्व है। वह स्वयं को ही खंड-खंड में बांटता है। वह अखंड की उपलब्धि नहीं है। नैतिक चित्त अखंड हो ही नहीं सकता है। वह जीता ही है स्वयं को स्व-विरोधी खंडों में बांटकर! वह विभाजन ही उसका प्राण है। धार्मिक चित्त अखंड का स्वीकार है। 'मैं जैसा हूँ' उस समग्र के प्रति जागना धार्मिक चित्त की भूमिका है। और उस जागने से आता है रूपान्तरण (Transformation)। उस जागने में आती है आमूल क्रांति (Mutation)। वह पुराने की मृत्यु और नये का जन्म है। वह अहंकार की मृत्यु और आत्मा की उपलब्धि है। धार्मिक चित्त स्वयं को तोड़ता नहीं है। धार्मिक चित्त शुभ और अशुभ के बीच चुनाव नहीं करता है। वह कहता है 'जो है' वह है। वह इस होने को उसकी समग्रता में जानना चाहता है। और स्वयं के होने की समग्रता को जान लेना ही क्रांति बन जाती है। अनैतिकता अशुभ का चुनाव करती है। नैतिकता शुभ का। धार्मिकता चुनाव रहित जागरूकता (Choiceless Awareness) है। गांधी में मैं ऐसी चुनावरहितता नहीं देखता हूं, इसलिए उन्हें धार्मिक कहने में असमर्थ हूं। वे नैतिक हैं और परम नैतिक हैं। नैतिक महात्माओं में शायद उन जैसा महात्मा कभी हुआ ही नहीं है। वे अनीति के ठीक दूसरे छोर पर हैं। लेकिन जब तक नैतिक हैं, तब तक अनीति से मुक्त नहीं हैं। अनीति से मुक्त होने को तो नीति से भी मुक्त होना होता है। और दोनों से ही मुक्त होकर चेतना धार्मिक (Religious) हो जाती है। ●

भगवान् श्री रजनीश हिन्दी साहित्य

१	महावीर : मेरी दृष्टि में	३०.००
२	महावीर-वाणी	३०.००
३	जिन खोजा तिन पाइयाँ	२०.००
४	ईशावास्योपनिषद्	१२.००
५	प्रेम है द्वार प्रभु का	८.००
६	समुन्द समाना बुन्द में	७.००
७	घाट भुलाना बाट बिनु	७.००
८	सूली ऊपर सेज पिया की	७.००
९	सत्य की पहली किरण	६.००
१०	संभावनाओ की आहट	६.००
११	अन्तवाणा	६.००
१२	ढाई आखर प्रेम का	६.००
१३	मैं कहता आँखन देखी	६.००
१४	संभोग से समाधि की ओर	६.००
१५	मिट्टी के दिये	५.००
१६	साधना-पथ	५.००
१७	अन्तर्यात्रा	५.००
*१८	अस्वीकृति में उठा हाथ (भारत, गाँधी और मेरी चिंता)	५.००
१९	प्रेम के फूल	५.००
२०	गहरे पानी पैठ	५.००
*२१	क्रांति-बीज	४.००
२२	पथ के प्रदीप	४.००
*२३	प्रभु की पगडंडिया	४.००
२४	समाजवाद से सावधान	४.००
२५	ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया	५.००
२६	मैं कौन हूँ ?	३.००
२७	शून्य की नाव	३.००
*२८	अज्ञात की ओर	२.००
*२९	नये संकेत	२.००
३०	सिंहनाद नया संशोधित संस्करण नया नाम : "पथ की खोज"	२.००
३१	प्रेम और विवाह	१.५०
३२	प्रगतिशील कौन ?	१.५०
३३	विद्रोह क्या है ?	१.५०
३४	ज्योतिष : अद्वैत का विज्ञान	१.५०
३५	ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म	१.५०
*३६	जन-संख्या विस्फोट : समस्या और समाधान (परिवार नियोजन का परिवर्धित संस्करण)	१.५०
*३७	सत्य के अज्ञान सागर का आमंत्रण	१.५०
*३८	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१.००
*३९	सूर्य की ओर उड़ान	१.००
*४०	मन के पार	१.००
४१	युवक और यौन	१.००
*४२	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०.७५
*४३	प्रेम के पंख	०.७५
४४	अमृत-कण	१.००
४५	अहिंसा-दर्शन	१.००
*४६	पूर्व का धर्म : पश्चिम का विज्ञान	०.५०
४७	सारे फासले मिट गये	१.२५

४८ बिखरे फूल १.००
४९ संस्कृति के निर्माण में सहयोग (जीवन जागृति केन्द्र : क्या, क्यों, कैसे ?) ०.३०
५० अवधिगत संन्यास ०.३०
५१ क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया १.५०
५२ धर्म और राजनीति १.००
५३ ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि १.००

प्रेस के लिए बड़ी पुस्तकें

५४ मैं मृत्यु सिखाता हूँ
५५ निर्वाण उपनिषद् १५.००
५६ ताओ उपनिषद् ४०.००
५७ कृष्ण : मेरी दृष्टि में २०.००
५८ गीता-दर्शन
(४ खंडों में प्रथम दस अध्याय)
५९ मुल्ला नसरुद्दीन ५.००
६० शून्य के पार
६१ बूंद-बूंद से घट भरे
(२०० अंग्रेजी पत्रों का अनुवाद)
६२ पाथेय (६ अंग्रेजी भेंट वार्ताओं का अनवाद)
६३ ध्यान : नये आयाम १.५०
(सक्रिय ध्यान और कीर्तन ध्यान)

सूचना—* चिन्ह अंकित पुस्तकें पुनर्मुद्रण के लिए प्रेस में लंबित हैं ।

गुजराती में अनुवादित साहित्य

१ अन्तर्यात्रा ५.००
२ संभोगथी समाधि तरफ ४.००
३ साधना-पथ ३.००
४ पन्थना प्रदीप ३.००
५ माटीना दिवा ३.५०
६ हूँ कोण छूं ? ३.००
७ क्रान्ति-बीज २.५०
८ अज्ञात प्रति २.००
९ नवाँ संकेत १.७५
१० सत्यना अज्ञात सागरनुं आमत्रण १.५०
११ मननी पार १.५०
१२ सूर्य तरफनुं उड्डयन १.००
१३ जीवन अने मृत्यु १.००
१४ केटलीक ज्योतिर्मय क्षण ०.७५
१५ नवाँ मनुष्यना जन्मनी दिशा ०.७५
१६ प्रेमनी पांखे ०.७५
१७ अमृत-कण ०.५०
१८ अहिन्सा-दर्शन ०.५०
१९ तरुण-विद्रोह ०.५०
२० भ्रान्त समाजवाद ०.३०
२१ अतीतनी आलोचना, भावीनु चिन्तन ०.३५

२२ अभिनव संन्यास १.००
२३ ध्यान ०.७५
२४ प्रेम ०.७५
२५ परिवार ०.७५
२६ संकल्प ०.७५
२७ परिवार नियोजन ०.७५
२८ तीर्थ ०.७५
२९ सहज योग १.००
३० अकाम ०.७५
३१ संन्यास अने संसार ०.८०
३२ प्रेमनां फूलो ५.००
३३ धर्म–विचार नहि उपचार ०.६०
३४ क्रान्तिनी वैज्ञानिक प्रक्रिया ०.६०
३५ उठ जाग जुवान ०.५०
३६ प्रेम, परमात्मा अने परिवार ०.७५
३७ परमात्मां क्या छे ? ०.७५
३८ गाँधीवाद वैज्ञानिक दृष्टिअे ०.५०
३९ गाँधीजीनी अहिन्सा ०.५०
४० धर्म अने राजकारण ०.४०
४१ समाजवादथी सावधान ०.७५
४२ सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् ०.६०
४३ सन्त, ईश्वर अने अनुभूति ०.७५
४४ बन्धन अने मुक्ति ०.७५
४५ ताओ ०.६०
४६ पूर्णावतार कृष्ण ०.६०
४७ गाँधीवादी क्यां छे ? ०.५०
४८ मृत्यु पर विजय १.५०
४९ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जी (जीवन चरित्र) ०.७५
५० अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जी (जीवन प्रसंगी) ०.८०
५१ अन्तर्द्रष्टा आचार्य रजनीश जीनी ज्ञानवाणी १.५०
५२ जीवनना मंदिरमां द्वार छे मृत्युनुं ०.६०
५३ दिव्य लोकनी चाबी (महावीर-वाणी-१) १.००
५४ भाव जगतना रहस्य (महावीर-वाणी-२) १.००
५५ शरण स्वीकारूँ छूं हुँ तमारू (महावीर-वाणी-३) १.००
५६ ज्योतिष : अद्वैतनुं विज्ञान २.००
५७ स्वानुभवनी कसौटीअे १.००
५८ सत्यनी शोध ४.२५

मराठी में अनुवादित साहित्य

१ पथ-प्रदीप ८.००
२ संभोगातून समाधिकडे ४.००
३ प्रेम-पुष्प ३.४०
४ साधना-पथ ३.००
५ क्रांति-बीज २.५०
६ सिंहनाद २.००
७ अभिवस सक्रिय ध्यान १.००
८ प्रेमाचे पंख ०.७५
९ अहिंसा-दर्शन ०.५०
१० अमृत-कण ०.५०
११ समाजवाद पासून सावध रहा ०.५०
१२ पाण्यात बुडी घे खोल २.००
१३ गीता दर्शन (अध्याय-२, भाग-१) ३.५०

गुरुमुखी (पंजाबी साहित्य)

१ साधना-पथ ३.००
२ अहिंसा दर्शन ०.४०
*३ जीवन जो राज (सिंधी भाषा में) ०.५०

ग्रीक भाषा में साहित्य

१ एरन एपो टु एपेरपेरन (बियोन्ड एण्ड बियोन्ड)
२ योग सान एना अपथ्रोमितो सिमवान (योग : एज स्पॉन्टे-नियस हेपनिंग)

पत्रिकाओं के वार्षिक शुल्क

१ ज्योति-शिखा (हिन्दी त्रैमासिक) ८.००
२ युक्रान्द (हिन्दी मासिक) १२.००
३ योग-दीप (मराठी पाक्षिक) ९.००
४ संन्यास (अंग्रेजी द्वैमासिक) १८.००

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

जीवन जागृति केन्द्र

● ३१, इजरायल मोहल्ला
भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बम्बई-९
●
फोन : ३२७६१८
३२१०८५

● ए–१, वुडलेण्डस्,
पेडर रोड, (कैम्प्स कॉर्नर के पास)
बम्बई –२६
●
फोन : ३८११५९

AVAILABLE ENGLISH BOOKS OF

BHAGWAN SHREE RAJNEESH

I. Translated from the Original Hindi version :

		Pages	Price in India (Postage extra)
1.	Path to Self-Realization	151	5·00
2.	Seeds of Revolution	227	8·00
3.	Philosophy of Non-Violence	34	0·80
4.	Who Am I ?	145	3·00
5.	Earthen Lamps	247	4·50
6.	Wings of Love and Random Thoughts	166	3·50
7.	Towards the Unknown	54	1·50
8.	From Sex to Superconsciousness	180	6·00
9.	The Mysteries of Life and Death	70	4·00
10.	Lead Kindly Light	36	1·50
*11.	What is Rebellion !	35	2.00

II. Original English Books :

		Pages	Price in India
12.	Meditation : A New Dimension	36	2.0
13.	Beyond and Beyond	32	3·00
14.	Flight of the Alone to the Alone	36	2·50
15.	LSD : A Shortcut to False Samadhi	25	2·00
16.	Yoga : A Spontaneous Happening	27	2·00
17.	The Vital Balance	26	1·50
18.	The Gateless Gate	48	2·00
19.	The Silent Music	41	2·00
20.	Turning In	36	2·00
21.	The Eternal Message	41	2·00
22.	What is Meditation ?	58	3·00
*23.	The Dimensionless Dimension	47	2·00

24.	Wisdom of Folly	213 (New Mulla jokes)	6·00
*25.	Two Hundred Two		
*26.	Meet Mulla Nasrudin		
*27.	Thus Spake Mulla Nasrudin		
*29.	Beyond Laughter		
30.	One Hundred One		
*31.	The Inward Revolution	250	10.00
*32.	I Am the Gate	250	10.00
33.	Seriousness	41	2·00
34.	Secrets of Discipleship	42	3·00
*35.	Dynamics of Meditation	250	10.00
*36.	The Ultimate Alchemy (2 vols)	600	30.00

III. Critical Studies on Bhagwan Shree Rajneesh :

37.	Acharya Rajneesh : a Glimpse	24	1·25
38.	Acharya Rajneesh : The Mystic of Feeling	240	20·00
39.	Lifting the Veil	110	10·00

Note : Star (*) marked books are in press.

For enquiries and books please contact :

JEEVAN JAGRITI KENDRA

(Life Awakening Centre)

Israil Mohalla
31, Bhagwan Bhuvan
Masjid Bunder Road
BOMBAY-9
Phones : **327618,/321085**

A-1, Woodlands
Peddar Road
BOMBAY-26
Tel. 381159
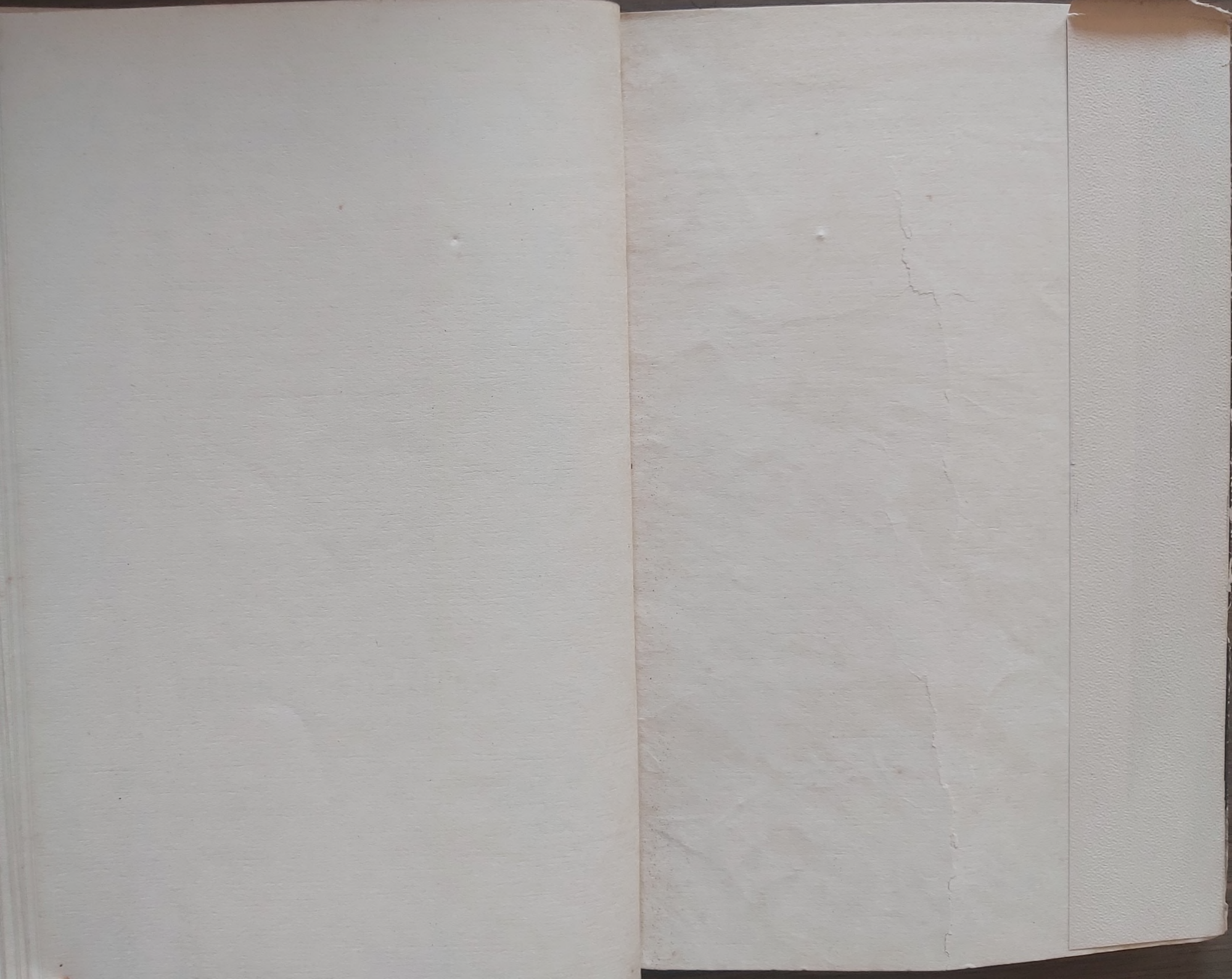
भगवान श्री रजनीश
वर्तमान युग के ४२ वर्षीय युवा-द्रष्टा,
क्रांतिकारी विचारक, आधुनिक सन्त और जीवन-सर्जक हैं।
वैसे तो धर्म, अध्यात्म व साधना में ही उनका जीवन-प्रवाह है
लेकिन, कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, आधुनिक विज्ञान में भी वे
अद्भुत व अद्वितीय हैं।
जो भी वे बोलते हैं, करते हैं वह सब जीवन की आत्यंतिक
गहराइयों व अनुभूतियों से उद्भूत होता है। वे हमेशा
जीवन-समस्याओं की गहनतम जड़ों को स्पर्श
करते हैं। जीवन को उसकी समग्रता
में जानने, जीने व प्रयोग करने
के वे जीवन्त प्रतीक हैं।